शिष्टाचार

चौधरी चरण सिंह

शिष्टाचार

ভারতবাণী

शिष्टाचार

चौधरी चरण सिंह

किसान ट्रस्ट

प्रथम संस्करण : १९८४
द्वितीय संस्करण : १९९४

© अजित सिंह

मूल्य : ३० रुपये

प्रकाशक :
ए० वी० सेतुमाधवन
किसान ट्रस्ट, एम-1, मैग्नम हाउस-II,
कम्युनिटी सेन्टर, कर्मपुरा,
नई दिल्ली-११००१५

मुद्रक :
पवन प्रिंटर्स
नवीन शाहदरा,
दिल्ली-११००३२

प्रकाशक की ओर से

मानव जीवन में शिष्टाचार का विशेष महत्व है। यही नहीं घरेलू, सामाजिक और व्यावहारिक जीवन में भी कदम-कदम पर इसके प्रभाव और महत्व को नकारा नहीं जा सकता। यह बेहद सहज ही नहीं बल्कि गूढ़ विषय भी है। सन् 1941 में चौधरी चरण सिंह जी व्यक्तिगत सत्याग्रह आंदोलन के दौरान एक राजनैतिक बंदी के तौर पर बरेली सैंट्रल जेल में थे। उस समय चौधरी साहब ने अपने छोटे-छोटे बच्चों को शिष्टाचार की शिक्षा देते हुए कुछ पत्र लिखे थे। उन पत्रों को सन् 1984 में 'शिष्टाचार' शीर्षक के अन्तर्गत पुस्तक के रूप में प्रकाशित किया गया था। इस पुस्तक में चौधरी साहब ने शिष्टाचार के विभिन्न पहलुओं-विषयों का विश्लेषण भारतीय धर्म ग्रंथों, विश्व प्रसिद्ध विद्वानों-महापुरुषों की युक्तियों तथा समाज में प्रचलित नियमों-व्यवहारों के आधार पर किया है। पुस्तक की लोकप्रियता और सभी वर्गों से मिली प्रशंसा-समर्थन को दृष्टिगत रखते हुए किसान ट्रस्ट इसका द्वितीय संस्करण प्रस्तुत कर रहा है। किसान ट्रस्ट का विश्वास है कि मानव जीवन में आदर्श स्थापित करने तथा समाज में व्यक्ति को सम्मानजनक स्थान दिला पाने की दिशा में यह पुस्तक सहायक सिद्ध होगी।

—ए० वी० सेतुमाधवन

भूमिका

सदाचार का शिष्टाचार से घनिष्ठ संबंध है। सदाचार सौजन्य की पूंजी है। सदाचार के बिना मनुष्य का जीवन निराधार होता है और शिष्टाचार के बिना सदाचारी पुरुष भी जीवन के माधुर्य से वंचित रह जाता है। प्राचीन देशों में शिष्टाचार को उच्च स्थान दिया गया है। चीन में अर्वाचीन काल से शिष्टाचार के बड़ी उच्च कोटि के नियम रहे है और उन्हीं के अनुसार बर्ताव होता रहा है। हमारे देश में भी सदैव पारस्परिक व्यवहार में स्नेह और सद्भाव की झलक दीखती रही है। दूसरे की भावनाओं का ध्यान रखना और यथासंभव ऐसी बात न करना जिससे दूसरे को ठेस पहुंचे, यह नियम हमारे समाज में हमेशा व्यापक रहा है।

सत्य को सदाचार का सर्वश्रेष्ठ आधार ही मानते हैं। सत्य को भी अप्रिय शब्दों में व्यक्त करना उचित नहीं समझा गया है। कुछ दिनों से पराधीनता के फलस्वरूप हमारी सभी बातों में कुछ न कुछ विकार आ गया है जिससे हमारे शिष्टाचार पर धुंधलापन छा गया। अन्यथा हमारे देश के सभी संप्रदाय और वर्गों में सुंदर शिष्टता और तहजीब बरती जाती रही है। जो कुछ भी हमारी मर्यादा विदेशियों के शासन काल में ढीली हो गई थी, उसे अब हमें ठीक करना चाहिए जिससे हमारा सामाजिक जीवन सर्वथा सुथरा और सरस हो जाये। जीवन के सुख और शांति के लिए शिष्टाचार की उपयोगिता सदाचार से कम नहीं है। शिष्टाचार और अनुशासन के द्वारा वैयक्तिक और सामाजिक जीवन स्वस्थ और सुंदर बन सकेगा, इसी विचार से मेरे सहयोगी मित्र श्री चरण सिंह जी ने इस पुस्तक के लिखने का प्रयास किया है। मुझे आशा है कि इससे हमारे समाज का हित होगा और विशेषकर नवयुवक वर्ग इससे पूरा लाभ उठावेगा।

लखनऊ

सितंबर ४, १९५३

—गोविंद बल्लभ पंत

निवेदन

लगभग २० बरस की बात है कि मुझको अपने छोटे-छोटे बच्चों को शिष्ट व्यवहार के नियमों का ज्ञान कराने की आवश्यकता महसूस हुई। खोज करने पर कुछ पुस्तिकाएं देखने को मिलीं। परंतु, किसी भी पुस्तिका से मुझको संतोष नहीं हुआ। अतएव, मैंने केवल अपने बच्चों के लाभार्थ कुछ नियम लिपि-बद्ध कर लिये। धीरे-धीरे इन नियमों की संख्या बढ़ती गई।

सन् १९४१ में व्यक्तिगत-सत्याग्रह के आंदोलन में एक बंदी की हैसियत से मुझको बरेली सेंट्रल जेल में रहना पड़ा। वहां अवकाश की कमी नहीं थी। अपने मित्रों के साथ जेल के एक पेड़ के नीचे कुछ दिन बैठकर, इन नियमों का पुनरीक्षण हुआ और उनको एक पुस्तक का रूप दे दिया गया। तब से पांडुलिपि यों ही रखी रही। जब कभी उसको प्रकाशित करने की बात मन में आती, तो यह सोचकर कि यह मेरे लिए अनाधिकार चेष्टा होगी और कदाचित् कोई विद्वान् इस विषय पर शीघ्र ही लेखनी उठाये, इस विचार को छोड़ देता।

कुछ दिन हुए, श्री भगवती चरण वर्मा ने इस पाण्डुलिपि को देखा। उनके परामर्श से आज यह प्रकाशित हो रही है। इसमें कदाचित् एक भी विचार नया नहीं हैं। जो नियम या बर्ताव सभ्य समाज में प्रचलित हैं अथवा जिनका कहीं न कहीं उल्लेख है, उन्हीं का इस पुस्तक में समावेश किया गया है।

थोड़े अंश में भी शिष्ट आचार के नियमों का प्रसार इस पुस्तक द्वारा हो सका, तो मैं अपने इस प्रयास को सफल मानूंगा।

—चरण सिंह

लखनऊ
जनवरी २२, १९५४

पुनश्च:

वैसे तो इस पुस्तक की पाण्डुलिपि १९५४ में ही तैयार हो गई थी, लेकिन सार्वजनिक जीवन की व्यस्तता ने इसके प्रकाशन की ओर ध्यान ही नहीं देने दिया। यह तो मेरे साथियों के बार-बार आग्रह का ही सुपरिणाम है कि यह पुस्तकाकार में प्रकाशित हो सकी है।

अगर भारत की नयी युवा पीढ़ी इसे पढ़कर अपने जीवन में आदर्श स्थापित कर सकी, तो मुझे संतोष होगा।

नयी दिल्ली —चरण सिंह

अक्टूबर २, १९८३

अनुक्रम

पहला भाग
शिष्टाचार

१. प्रारंभिक ३
२. अभिवादन १०
३. भेंट १३
४. अतिथि और गृहमेधी २४
५. मातमपुरसी २७
६. सहभोज २६
७. जन-समवाय ३४
८. वेशभूषा ४३
९. पथ और यात्रा ४६
१०. पत्र-व्यवहार ५७
११. बातचीत ६०
१२. विशिष्ट व्यवहार ७३
१३. परायी संपत्ति का उपभोग ८२
१४. विविध ८४

दूसरा भाग
स्वास्थ्य और शिष्टाचार

१५. स्वास्थ्य ८६
१६. प्रातःकाल उठना ९३
१७. नित्य कर्म अथवा शारीरिक सफाई ९४
१८. व्यायाम और खेल १०६
१९. लिखना-पढ़ना और नेत्र-रक्षा ११४

२०. घर की सफाई ११६
२१. वायु १२३
२२. प्रकाश १२६
२३. पानी १३१
२४. भोजन १३६
२५. सोना १५४
२६. मन और शरीर १५६
२७. औषधि और रोगी की सेवा १६३

तीसरा भाग

नीति और शिष्टाचार

२८. व्यावहारिक नीति १६६

पहला भाग

शिष्टाचार

१

प्रारंभिक

'शिष्टाचार' एक सामासिक पद है, जो 'शिष्ट' और 'आचार' पदों के योग से बना है। 'शिष्ट' (शास + क्त) शब्द का अर्थ 'सभ्य' या 'सज्जन' है और 'आचार' (आ + चर् भावे घञ्) का अर्थ है 'आचरण' अथवा 'व्यवहार'। अतः शिष्टाचार शब्द का अर्थ शिष्टों का आचार अथवा सभ्य लोगों का व्यवहार अथवा सज्जन व्यक्तियों का आचरण है। शिष्टाचार के अंतर्गत मनुष्य के संपूर्ण जीवन के प्रत्येक कार्य—उदाहरणार्थ उसका रहना-सहना, उठना-बैठना, चलना-फिरना, बोलना-चालना, सोना-जागना, नहाना-धोना आदि सभी आ जाते हैं। महर्षि दयानन्द ने शिष्टाचार की परिभाषा इस प्रकार की है :

> "जो धर्माचरणपूर्वक ब्रह्मचर्य से विद्या ग्रहण कर, प्रत्यक्षादि प्रमाणों द्वारा सत्यासत्य का निर्णय करके सत्य का ग्रहण कर, असत्य का परित्याग करता है, 'वही 'शिष्टाचार' और जो इसको करता है, वह 'शिष्ट' कहलाता है।"

इस परिभाषा के अनुसार, 'सदाचार' और 'शिष्टाचार' में कोई अंतर दिखाई नहीं पड़ता। परंतु आजकल सामान्य बोल-चाल में 'शिष्टाचार' का तात्पर्य केवल उस व्यवहार से है जिसका प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष संबंध दूसरों के मान-सम्मान, सुख-सुविधा और संतोष से हो तथा जो व्यक्तियों के लिए यथायोग्य स्नेह, प्रेम तथा श्रद्धा का परिचायक हो। शिष्टाचार का मूलाधार घर या बाहर कोई भी ऐसा काम न करना है जिससे न तो किसी की भावनाओं को ठेस पहुंचे, न किसी को कोई दुःख अथवा क्लेश हो। दूसरे शब्दों में, हर भले आदमी को सामाजिक प्राणी होने के नाते दूसरों के साथ व्यवहार करते समय जिन नियमों का पालन करना आवश्यक है, उनका नाम शिष्टाचार है।

प्रत्येक मनुष्य को अपने जन्म-काल से ही अपने प्रत्येक कार्य अथवा आवश्यकता की पूर्ति के लिए दूसरों का आश्रय लेना पड़ता है। बिना सहायक के कोई व्यक्ति

एक दिन भी सुख तथा सुविधा से नहीं रह सकता। बाल्यावस्था में मां-बाप लाड़-प्यार से बच्चे को पालते-पोसते हैं। तदनंतर ज्यों-ज्यों उसकी आयु बढ़ती जाती है, त्यों-त्यों उसे दूसरे व्यक्तियों की सहायता अपेक्षित होती है। हम लोग जो कपड़े पहनते हैं, वे दूसरे ही ने बनाये है, जिस घर में हम रहते हैं, उसे भी औरों ने ही बनाया है। अन्य व्यक्ति ही हमारे भोजन के पदार्थ संग्रह करके रखते है। दूसरों का काम करके जैसे हम लोग जीविका प्राप्त करते है, वैसे ही दूसरे व्यक्ति भी हम लोगों का काम करके जीवन-निर्वाह करते हैं। शिक्षा के लिए शिक्षक और पाठशाला का आयोजन किया जाता है। इसी प्रकार वाणिज्य-व्यवसाय में विविध देशवासियों के साथ व्यवहार करना पड़ता है, दैनिक जीवन में अपने धर्म, समाज और राजनियमों के अनुकूल चलना होता है, सुख-दुख में स्वजन बंधुगण के साथ हर्ष या शोक मनाने की आवश्यकता पड़ती है। इन्हीं सब कारणों से हम लोग हमेशा ही एक-दूसरे का मुंह ताका करते हैं और परस्पर सहायता पाने की आशा रखते हैं। परिचित हों चाहे अपरिचित, शत्रु हों अथवा मित्र, धनी हों या दरिद्र, पंडित हों या मूर्ख, हम लोग समाज के सदस्य होने के नाते एक-दूसरे के प्रति समभाव से ऋणी हैं। इस ऋण को समुचित रूप से चुकाने की क्रिया का नाम ही 'शिष्टाचार' है। देश, काल और पात्र के भेद से इस बाध्य-बाधक, अन्योन्याश्रय भाव की ह्रास अथवा वृद्धि होती रहती है। कोई व्यक्ति जब किसी विशेष कारण से किसी के द्वारा विशेष उपकृत होता है, तब वह व्यक्ति अपने उस उपकारी के निकट अपेक्षाकृत अधिक कृतज्ञ या ऋणी होता है; उदाहरणार्थ माता, पिता व आचार्य का ऋण, दूसरों के प्रति जो हमारा कर्तव्य है, उससे कहीं और अधिक महान है। निष्कर्ष यह है कि दूसरों की भावनाओं और अधिकारों का मान व आदर करना केवल सामाजिक व्यवहार का ही एक नियम नहीं है, प्रत्युत वह वह आधारशिला हैं जिस पर समाज सदैव से स्थिर रहा है।

अब प्रश्न यह उठता है कि शिष्ट आचार की कसौटी क्या है। अर्थात् हम यह कैसे समझें कि हमें अमुक काम करना चाहिए अथवा नहीं। इस प्रश्न के समाधान के लिए 'हितोपदेश' में एक बड़ा ही उपयुक्त श्लोक आया है :

प्रत्याख्याने च दाने च सुख-दुःखे प्रियाप्रिये।
आत्मौपम्येन पुरुषः प्रमाणमधिगच्छति॥

अर्थात् "दान देने में और न देने में, सुख में और दुःख में तथा प्रिय और अप्रिय कार्यों में पुरुष स्वयं अपनी उपमा से ही प्रमाण को जानता है।" अर्थात् शिष्टाचार का आधारभूत नियम केवल यही है कि :

आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्।

मनुष्य कभी ऐसा काम न करे जो उसकी आत्मा के प्रतिकूल हो, अर्थात् वह अन्य के साथ ऐसा व्यवहार न करे कि वैसा ही व्यवहार यदि कोई उसके साथ करे तो उसे बुरा लगे। शिष्टाचार-संबंधी अनेक अन्य उपनियम इस प्रधान नियम के निर्वाह के लिए ही बने हैं।

महान चीनी तत्त्ववेत्ता, कन्फ्यूशस ने भी यही बात लगभग ढाई हजार वर्ष पहले दुहरायी थी : "दूसरों के साथ वैसा ही बर्ताव करो जैसाकि तुम दूसरे से अपने लिए चाहते हो।" आचार्य चाणक्य की "आत्मवत् सर्वभूतेषु य पश्यति स पण्डित:" नामक उक्ति से भी यही भाव प्रकट होता है।

अत: यदि आप दूसरों से सम्मान, सत्कार, उपकार, सेवा और सहायता की अभिलाषा रखते हैं तो पहले दूसरों के प्रति आप वैसा ही व्यवहार करें। किसी से मीठी बात सुनना चाहते हैं तो मीठी बाणी बोलें और यदि किसी की गाली नहीं सुनना चाहते हैं तो किसी को गाली न दें। यदि सभा में बैठकर दूसरों की बातचीत से आपके व्याख्यान सुनने में विघ्न पड़ता है तो स्वयं भी बातचीत न करें जिससे दूसरों के सुनने में भी विघ्न न पड़े। इसी प्रकार किसी के घर जाकर यदि आप गृहस्वामी से आदर-सत्कार की आशा रखते हैं तो जो आपसे भेंट करने आये, उसका आदर-सत्कार करें।

शिष्टाचार की आवश्यकता स्वयंसिद्ध है। जो लोग अशिष्ट हैं उनके साथ रहना बड़ा ही दुःखद होता है। इसके विपरीत शिष्ट आचरण से सारा संसार अपना मित्र बन सकता है। मनुष्य-समाज को सुखी बनाने की कितनी ही विधियां हैं : शिष्ट व्यवहार उन विधियों में एक विशेष स्थान रखता है। शिष्ट व्यवहार से समाज अथवा व्यक्ति को अपना कामकाज करने का सुभीता रहता है। इससे समाज को व्यवस्था और शांति तथा व्यक्ति के मन को संतोष और आनंद प्राप्त होता है। नियम ही संगठन का प्राण है। नियमहीनता और स्वेच्छाचारिता का यदि बोलबोला हो जाय तो मनुष्य का व्यवस्थित सामाजिक जीवन कदाचित् एक दिन भी स्थिर न रहे।

अनेक भद्र व्यक्तियों की, जिनकी विद्वता और योग्यता निर्विवाद हैं, यह धारणा है कि शिष्टाचार अनावश्यक, विधि-निषेधात्मक नियमों का एक संग्रह मात्र है, जिनका पालन एक व्यर्थ का बंधन है। उनका विचार हैं कि यदि मनुष्य के उद्देश्य कल्याणमय, संकल्प शुभ और मनोभाव भले हों तो वे स्वयं ही उसके व्यवहार से प्रकट हो जायेंगे। ऐसे मनुष्य अपने आचरण के फूहड़पन, स्वर की कर्कशता, अशुद्ध भाषा, भद्दी चाल-ढाल, अहंकार अथवा आडंबर से शिष्टाचार की अर्थात् उन सब नियमों, आदेशों ओर संकेतों की अवहेलना करते हैं जिन पर युग-युगांतर से समाज का ढांचा आधारित है। ऐसे व्यक्ति यह भूल जाते हैं कि उनका आचार-व्यवहार उनके मन और हृदय का प्रतिबिंब होना चाहिए। मनुष्य की

विद्या और चरित्र की परीक्षा सभी काल में नहीं होती, परंतु उसका स्वभाव सभी काल में परखा जाता है। इस व्यस्त और व्यग्रतापूर्ण संसार में ऐसे मनुष्य बहुत कम हैं जो मनुष्यों के बाह्य व्यक्तित्व के धरातल के नीचे गोता लगाकर उसकी आंतरिक स्थिति का ज्ञान प्राप्त कर सकें। बहुधा लोग तो भौतिक वस्तुओं की भांति व्यक्तियों के संबंध में भी उनके बाह्य क्रिया-कलाप के आधार पर ही अपना मत निश्चित करते हैं। किसी के चरित्र की आंतरिक विशिष्टताएं तो कुछ समय बाद ही जानी जा सकती हैं। किंतु जीवन में, घनिष्ठ संपर्क के लिए साधारणतया इतना समय मिलता ही कहां है ! अधिकतर तो केवल शिष्टाचार मात्र में ही संपर्क समाप्त हो जाता है। वास्तव में, हमारा आचार-व्यवहार ही वह प्रमाणपत्र है जिसको हम अपने जीवनपथ में, अनजाने दूसरों के सामने प्रस्तुत करते हैं और जिसके द्वारा दूसरे व्यक्ति हमारे संबंध में प्रायः प्रारंभिक मत स्थिर करते हैं और किसी निर्णय पर पहुंचते हैं।

शिष्टाचार एक महान गुण है तथा मनुष्यत्व का विशेष परिचायक है। इस गुण के प्रकाश से ही मनुष्य की शिक्षा, रुचि और संस्कृति का परिचय प्राप्त होता है। मनुष्य का आचार-व्यवहार एक प्रकार से उसकी कुलीनता का पैमाना है। सत्कुल में उत्पन्न व्यक्ति प्रायः शिष्टाचारी होते हैं। व्यक्ति-विशेष के संस्कार और उसकी आदतें छोटे-छोटे कामों और उसके रहने-सहने के ढंग से ही मालूम होती हैं। दूसरे आदमी उसके व्यवहार से ही यह जांचते हैं कि उसने घर पर क्या सीखा है और उसके कुटुंब के आदमी कितने सभ्य हैं। निष्कपटता, खरापन सरलता, सादगी, विनय और सेवाभाव शिष्ट शिक्षा-दीक्षा के द्योतक हैं तथा राजा और रंक सब में अपना समान चमत्कार दिखलाते हैं। प्रत्येक ऐसा कार्य अथवा व्यवहार जिसमें बनावट व घमंड की गंध आती हो, असभ्यता तथा असंस्कृति का द्योतक है। निस्संदेह वह मनुष्य, जो दूसरों के भावों का सर्वथा आदर करता है, एक दंभी व्यक्ति की अपेक्षा, चाहे वह कितना ही चतुर और विद्वान् क्यों न हो, कहीं अधिक सांसारिक अभ्युदय को प्राप्त होगा।

शिष्टाचारी व्यक्ति केवल अपने लिए ही अच्छा नहीं होता वरन् वह अपने कुल, जाति और देश की शोभा बनता है। ऐसे व्यक्ति के प्रति लोगों की श्रद्धा, विश्वास और आदर स्वाभावतः ही उत्पन्न हो जाते हैं। शिष्टाचारी व्यक्ति अपने उदाहरण से दूसरे आदमियों को भी शिष्टाचारी बनाने की क्षमता रखता है। वह अपने पास उठने-बैठने वालों पर अप्रत्यक्ष रूप से अच्छा प्रभाव डालता है और इस प्रकार देश व समाज की उन्नति का कारण बनता है। भगवान कृष्ण ने भी अर्जुन से गीता में कहा है :

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः ।
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते ॥ अ० ३, श्लोक २१ ।

अर्थात् श्रेष्ठ व्यक्ति जो आचरण करता है उसे ही अन्य जन भी करते हैं, उसके किये हुए को प्रमाण मानकर लोग उसका अनुसरण करते हैं।

शिष्टाचार के नियमों का पालन तमाम सभ्य देशों में होता है। यही सभ्य और असभ्य व्यक्तियों के भेद का द्योतक होता है। बहुत से रीति-रिवाजों तथा व्यवहारों को, जिनका आज मान होता है, आने वाली पीढ़ियां भूल सकती हैं, परंतु विनय, शिष्टता व सौजन्य के गुण न कभी भुलाए जा सकते हैं और न व्यर्थ ही माने जा सकते हैं। विभिन्न समाजों में इन नियमों के आकार, प्रकार तथा ब्योरे में अंतर हो सकता है और समय की प्रगति के साथ वे बदलते भी रह सकते हैं, परंतु शिष्टाचार की नींव अपरिवर्तनशील, सदा दृढ़, समरस तथा स्थायी बनी रहती है। उसके अधीन कुछ मौलिक नियमों का पालन अनंतकाल से होता आया है और भविष्य में भी होता रहेगा।

मनुष्य मात्र से संपर्क में आने के जितने भी प्रकार, अवस्थाएं और अवसर हैं, शिष्टाचार का ज्ञान उन सबके लिए अनिवार्य और उपयोगी है। अध्यापक हो या विद्यार्थी, दुकानदार हो या ग्राहक, जनता का सेवक हो या सभ्य साधारण, स्वामी हो या सेवक, गुरुजन हो या छोटा, नगर-निवासी हो अथवा ग्राम-निवासी, संन्यासी हो या गृहस्थ—प्रत्येक स्थिति में मनुष्य को दूसरों के साथ बर्ताव करना होता है। अतएव शिष्टाचार का विषय बहुत व्यापक है। इस गुण के प्रयोग करने के स्थल और अवसर इतने अधिक हैं कि सभी अवस्थाओं के लिए पूरे-पूरे नियम बताना बहुत कठिन है। शिष्टाचार एक प्रकार की ललित कला है, जिसका अभ्यास शिष्ट व्यक्तियों की संगति में बैठने से होता है और जो किसी व्यक्ति के बचपन से लेकर आज तक के संस्कारों का केवल बाह्य रूप है।

शिष्टाचार को केवल विशेष अवसरों पर प्रयत्नपूर्वक प्रदर्शन की चीज न रहकर हमारे स्वभाव का अंग बन जाना चाहिए और यह तभी संभव है कि जब शिष्टाचार के नियमों का पालन मनुष्य को बचपन से ही कराया जाय। अंग्रेजी में एक कहावत है : "चाइल्ड इज द फादर ऑव मैन" (बालक मनुष्य का जनक है) इसका वास्तविक अर्थ यही है कि जिस प्रकार पिता पुत्र को अपने आचरणों से प्रभावित करता है और पुत्र स्वतः पिता के गुण-दोषों को ग्रहण कर लेता है, उसी प्रकार 'बचपन' प्रौढ़ आयु की आधारशिला है। जिन अच्छी या बुरी आदतों का हम बचपन में अभ्यास कर लेते हैं, वे हमारे जीवन का अंग बन जाती हैं। अतः प्रत्येक माता-पिता का कर्तव्य है कि वह घर में पग-पग पर बच्चों से ऐसा आचरण करायें जैसे आचरण की वे सभ्य समाज में उनसे आशा रखते हैं। वे स्वयं भी

उनके साथ ऐसा बर्ताव करें तथा ऐसा शिष्टाचार बरतें जैसा कि वे अन्य सभ्य व्यक्तियों के साथ बरतते हैं। यदि बच्चे गुरुजनों को आये-दिन आपे से बाहर देखते हैं, उनके मुख से पराई निन्दा सुनते हैं अथवा उनको दूसरों के साथ अशिष्ट व्यवहार करते देखते हैं, तो वे भी अपनी जीभ पर काबू न रख सकेंगे और न ही वे शांत स्वभाव वाले, क्रोधहीन एवं शिष्ट बन सकेंगे। जैसा आदर्श उनके सामने उपस्थित होगा, वे उसी में ढल जाएंगे। अशिष्ट माता-पिता का अपनी संतान को शिष्टोपदेश करना समय नष्ट करने के बराबर होगा, क्योंकि कोई बच्चा कभी ऐसे उपदेश को ग्रहण नहीं करेगा जिसके अनुकूल वह स्वयं उपदेष्टा को आचरण करते नहीं देखता। अतएव यह परमावश्यक है कि बालकों के सामने मां-बाप, अध्यापकगण और समाज के प्रमुख व्यक्ति अपने-आपको उन गुणों का नमूना बनकर दिखायें, जिन गुणों को वे बालकों में उत्पन्न कराना चाहते हैं।

सदाचार और शिष्टाचार

पाठक पूछ सकते हैं—सदाचार और शिष्टाचार में क्या अंतर है ? शाब्दिक अर्थ तो दोनों का प्रायः एक ही है, परंतु जैसा ऊपर संकेत किया जा चुका है, आम बोल-चाल में दोनों के भाव में बहुत अंतर है। सदाचार सर्वत्र और सर्वदा सबके लिए अटल आदर्श है, परंतु शिष्टाचार में देश, काल और पात्र के अनुसार परिवर्तन हो सकता है। उसका थोड़ा-बहुत उल्लंघन भी हो सकता है। सदाचार की अवहेलना से भयंकर आत्मिक परिणाम निकल सकते हैं, पर शिष्टाचार के अभाव में सहसा वैसा नहीं हो सकता। सदाचार में मन, वचन और कर्म की एकता आवश्यक है, परतु शिष्टाचार का पालन मन में बिना अर्थात् केवल वचन और क्रिया से भी हो सकता हैं। उदाहरणार्थ, सदा सत्य बोलना सदाचार है। यह नियम त्रिकाल में एक-सा ही महत्त्व रखता है तथा देश, काल या पात्र के भेद से इसमें कोई परिवर्तन नहीं आ सकता। किसी से कटु सत्य भी न कहो, यह शिष्टाचार का नियम है, परंतु गुरुजन छोटों को कटु उपदेश भी देते हैं। जो मनुष्य असत्य आचरण करेगा उसकी आत्मा मलिन और अपवित्र हो जायगी और उसको कभी सच्चा आनंद नहीं मिल सकता। परंतु जो कड़वा सत्य बोलेगा, उससे लोग सहज में अप्रसन्न तो हो सकते हैं, लेकिन उससे उसकी अधिक हानि नहीं होगी। जो मनुष्य सत्यवादी नहीं है, पर सत्यवादी और सदाचारी बनने का दिखावा मात्र करता है, वह न तो सदाचारी हो सकता है और न कहा जा सकता है, परंतु ऐसे व्यक्ति के शिष्टाचारी होने में कोई बाधा नहीं है।

यह लिखने की आवश्यकता नहीं कि यद्यपि शिष्टाचार का पालन सभ्य जीवन का एक आधार है और उसमें तथा सदाचार में कोई विरोध नहीं है परंतु

सदाचार का स्थान शिष्टाचार से ऊपर है। शिष्टाचार का व्यतिक्रम तो क्षम्य हो सकता है, लेकिन सदाचारहीनता अथवा दुराचार की अपेक्षा नहीं की जा सकती है। शिष्टाचार के अभाव में मनुष्य केवल सभ्य कहलाता है, लेकिन सदाचार के अभाव में तो वह मनुष्य कहलाने का अधिकारी नहीं रहता। अतएव स्पष्ट है कि अशिष्ट सदाचारी व्यक्ति दुराचारी शिष्ट की अपेक्षा कहीं अधिक अच्छा है।

साथ ही, यह भी निर्विवाद है कि शिष्टाचार वस्तुतः सदाचार का पूरक है। सदाचारी व्यक्ति यदि शिष्टाचारी भी हो तो सोने के साथ सुहागे का मेल हो जाता है। अंग्रेज लेखक स्टार्क ने इस संबंध में कितना ठीक कहा है—

> "Manners are like the cipher in arithmetic; they may not be much in themselves, but they ary capable of adding a great deal to the value of everything else."
>
> —Freya Stark in The Journey's Ecbo.

अर्थात् "शिष्टाचार अंकगणित के शून्य के समान है, चाहे वह स्वतः अधिक मूल्य न रखता हो, किन्तु वह प्रत्येक अन्य गुण के मूल्य को कई गुणा बढ़ाने की सामर्थ्य रखता है।"

२

अभिवादन

हम में जब एक की दूसरे से भेंट अथवा जुदाई होती है तो प्रत्येक व्यक्ति अपनी प्रसन्नता का प्रकाश अथवा दूसरे के लिए शुभकामना करता है। अपने से बड़े के लिए हृदय में श्रद्धा, बराबर वाले के लिए प्रेम और छोटे के लिए स्नेह का उदय होता है। उपर्युक्त भाव या भावों के प्रकाशनार्थ जिस शब्द या वाक्य का प्रयोग अथवा जो क्रिया या संकेत किया जाता है, उसी का नाम 'अभिवादन' है।

भिन्न-भिन्न देशों में अभिवादन की भिन्न-भिन्न रीतियां प्रचलित हैं, परंतु सबका मुख्य आशय एक ही है। अभिवादन की प्रथा इतनी सर्वमान्य और स्वाभाविक है कि असभ्य कहलाने वाली जातियों तक में यह पायी जाती है। कहना अनावश्यक है कि भारतवर्ष (जो प्राचीन काल में समस्त संसार का गुरु रहा है) का साहित्य पग-पग पर अभिवादन का उल्लेख करता है। 'प्रणाम', 'नमस्ते', 'अस्सलामुनअलैकुम', 'राम-राम' आदि हमारी संस्कृति में एक विशेष स्थान रखते हैं और उनमें हमारे कानों के लिए एक अद्‌भुत तथा अनिर्वचनीय माधुर्य भरा हुआ है। हिन्दुस्तान की विभिन्न जातियों, वर्गों, संप्रदायों तथा विभिन्न धर्मावलम्बियों में अभिवादन के लिए विभिन्न शब्दों का प्रयोग किया जाता है और एक-दूसरे के ढंग में कुछ थोड़ा-सा अन्तर भी है। नीचे हम अभिवादन के कुछ सामान्य तथा सर्वग्राह्य नियम लिखते है। बड़ों को सवेरे उठते ही, जब पहले-पहल उनका सामना हो जाय अथवा उनसे अलग होते समय श्रद्धापूर्वक 'नमस्ते', 'प्रणाम' आदि करना चाहिए।

बाल-बच्चों व छोटों को चाहिए कि पाठशाला आदि से अथवा अपने ग्राम या नगर के बाहर से घर में आने पर भी माता-पिता आदि को नमस्कार करें।

मार्ग में जाने वाले को बैठने वाले से और सवारी पर जाते हुए को पैदल चलने वाले से नमस्कार करना चाहिए।

मजलिस अर्थात् मित्र-मंडली से उठकर जाते समय नमस्कार करना चाहिए।

जहां किन्हीं दो स्त्री-पुरुष में अभिवादन का व्यवहार प्रचलित हो और वह समान स्थिति में हों तो पुरुष को चाहिए कि वह स्त्री से पहले 'नमस्ते' करे।

अगर आप किसी विद्वान तथा परोपकारी संन्यासी अथवा महात्मा से भेंट करने जायें या वे आपके मकान पर पधारें तो उनके चरण स्पर्श करके नमस्कार करना चाहिए; उनसे हाथ मिलाने का नियम नहीं है। अगर रास्ता चलते उनके दर्शन हो जायें तो केवल हाथ जोड़कर 'नमस्ते' आदि करना पर्याप्त है। परंतु प्रत्येक नामधारी संन्यासी या महात्मा चरण स्पर्श का पात्र नहीं है।

जो व्यक्ति आयु, पद, प्रतिष्ठा, बुद्धि या कार्य में आपके समान हो और आपस में प्रणाम का व्यवहार चालू हो तो सदा उनके द्वारा पहले प्रणाम किए जाने की आशा न करें, बल्कि सभ्यता इसी में है कि पहले आप ही उनसे अभिवादन कर लें। कहा है :

पेश दस्ती सलाम में अच्छी।
खुश कलामी कलाम में अच्छी॥

परंतु यदि दिन में कई बार थोड़ी-थोड़ी देर बाद मुलाकात होती हो तो हर बार अभिवादन करना आवश्यक नहीं।

अगर आप किसी आदमी को देखकर यह निश्चय न कर सकें कि वह कौन है, परंतु आपको उसका चेहरा परिचित-सा जान पड़े तो उसको अभिवादन कर लेना ही उचित है, क्योंकि किसी अपरिचित व्यक्ति को भूल से अभिवादन कर लेना किसी परिचित व्यक्ति के प्रति उदासीनता प्रकट करने का दोषी बनने की अपेक्षा कहीं अधिक अच्छा है।

हिंदुओं में बिना किसी धार्मिक भेदभाव के, सबके अभिवादन के लिए दोनों हथेलियों को जोड़, अपने चेहरे पर माथे के सामने ले जाकर 'नमस्ते', 'नमस्कार', 'प्रणाम', 'जय राम जी', 'राम-राम' आदि कहने का रिवाज है। अभिवादन के उत्तर में भी 'नमस्ते' आदि ही कहा जाता है, परंतु छोटे बच्चों को 'आयुष्मान् हो', 'जीते रहो' आदि स्नेह-भरे वाक्य द्वारा आशीर्वाद देने की भी प्रथा है। जहां तक प्रणाम, नमस्कार, नमस्ते आदि शब्दों का संबंध है, इनके अर्थ में कोई विशेष भेद नहीं है, किंतु प्रचलन के अनुसार, प्रणाम अपने पूज्य को और नमस्कार बराबर वाले को किया जाता है। नमस्ते बड़े-छोटे, बराबर वाले सभी को किया जा सकता है। मुसलमानों में केवल दाहिने हाथ से ही अभिवादन किया जाता है और यदि दूसरा व्यक्ति मुसलमान हो तो 'अस्सलामुनअलैकुम्' और यदि वह गैर मुसलिम हो तो 'आदाब अर्ज़' या केवल सलाम करने का नियम है। जिस व्यक्ति से 'अस्सलामुनअलैकुम' किया जाता है वह 'व अलैकुमुस्सलाम' कहकर जवाब देता है, और जिससे 'आदाब अर्ज़' किया जाता है वह 'तसलीमात अर्ज़' या 'आदाब अर्ज़'

कहता है। सिख लोग परस्पर 'सत श्री अकाल' कहते हैं।

हिंदुओं में हाथ खाली होने पर अभिवादन के लिए हाथ न उठाना और केवल मुंह से बोलकर ही 'प्रणाम' या 'नमस्ते' आदि करना अनुचित समझा जाता है, परंतु मुसलमानों में नहीं।

यदि छड़ी, डंडा या बेंत हाथ में लिए प्रणाम करना हो, तो इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि वह नीचे की ओर लटकता रहे; प्रहार करने के लिए उठाए जाने वाले डंडे की तरह न हो।

कभी किसी को भूलकर भी बायें हाथ से अभिवादन न करना चाहिए और न बायें हाथ से किसी का नमस्कार स्वीकार ही करना चाहिए। प्रणामसूचक वाक्य-विशेष का उत्तर मुंह से बोलकर ही देना चाहिए अर्थात् गूंगे बनकर खाली सिर ही न हिलाया जाय, चाहे प्रणाम करने वाला पद में कम ही क्यों न हो।

किसी के अभिवादन को बिल्कुल ही स्वीकार न करना, चाहे वह आपका परिचित हो या न हो और उसकी ओर घूरकर रह जाना तो बड़ी भारी गलती है।

यदि आप अपने पूज्य पुरुष के साथ हों और उनको कोई नमस्कार करे तो आपको उसके नमस्कार का उत्तर देने की असभ्यता न करनी चाहिए।

दूर से ही चिल्लाकर प्रणामसूचक वाक्य बोलना अशिष्टता है।

३

भेंट

किसी नगर व ग्राम में किसी अजनबी व्यक्ति के बसने अर्थात् प्रथम बार आने पर वहां पहले से बसें निवासियों का कर्तव्य है कि वे उसके मकान पर जाकर उससे भेंट करें। इसके बदले में उसके लिए भी यह उचित है कि वह एक-दो दिन के अनंतर भेंट करने वालों के यहां उपस्थित हो। परंतु किसी भी सूरत में नया बसने वाला अपनी ओर से पहले भेंट न करे। बहुत बड़े शहरों के लिए जहां पुराने पड़ोसियों का भी परस्पर मिलना-जुलना बहुत कम होता है, यह नियम लागू नहीं होता।

मित्रों और पड़ोसियों का कर्तव्य है कि वे किसी व्यक्ति की लंबी व भयावह सैर, विदेशगमन अथवा बहुत अरसे के लिए अपने स्थान से बाहर जाने के और उसके वापस आने के अवसर पर उससे भेंट करने के लिए जायें।

अगर कोई आपसे पहली बार भेंट करने के लिए आयें तो आपको चाहिए कि आप भी बदले में उससे मिलने के लिए जायें, चाहे आपका उससे मेल बढ़ाना अभीष्ट हो या नहीं। पहली भेंट के बदले में न आना उस व्यक्ति का अपमान करना है। अगर आप उससे संबंध स्थापित नहीं करना चाहते, तो आपके लिए यह जरूरी नहीं कि उससे दुबारा मिलने जायें।

यदि कोई कार्य न हो तो किसी ऐसे व्यक्ति से भेंट के लिए नहीं जाना चाहिए जो आपको देखकर प्रसन्न न हो। तुलसीदास जी ने कहा :

आवत ही हर्ष नहीं, नयनन नहीं सनेह।
तुलसी तहां न जाइये, कंचन बरसे मेह ॥

पड़ोसी, मित्र अथवा रिश्तेदार के यहां स्वयं उनके या उनके किसी स्नेहपात्र के किसी परीक्षा में उत्तीर्ण होने पर पद, पदवी उन्नति या सम्मान प्राप्त करने पर अथवा पुत्रजन्म आदि की शुभ सूचना सुनने पर यथाशीघ्र, बिना बुलाए ही,

अवश्यमेव जाना चाहिए और अपने संतोष व प्रसन्नता का प्रकाश करते हुए उनको बधाई देनी चाहिए। बीमारी या अन्य शोक-संवाद सुनने पर बिना बुलाये ही जाकर सहानुभूति का परिचय देना भी आवश्यक है। अगर स्थान दूर होने के कारण जाना न हो सके तो पत्र या तार द्वारा ही यथास्थिति अपने हर्ष अथवा शोक को प्रकट कर देना चाहिए। मित्र आदि के यहां पुत्रजन्म के अवसर पर अपनी प्रसन्नता प्रकट करने के लिए कुछ भेंट अथवा उपहार देने की रीति है। यह रिवाज अच्छा है, परन्तु ऐसे मित्रों की संख्या सीमित होनी चाहिए और उपहार पर अपनी सामर्थ्य में अधिक व्यय नहीं करना चाहिए। जहां यह ध्यान हो कि हमारे उपहार का बदला मिलेगा, वहां उपहार देते समय दूसरे की सामर्थ्य का भी ध्यान रखना चाहिए। जिससे भेंट करने के लिए आप जायं उसके सुभीते का ध्यान रखना जरूरी है। इसलिए बिना किसी विशेष कारण के किसी के घर बहुत सवेरे या बहुत रात बीते या उसके भोजन व विश्राम आदि के समय नहीं जाना चाहिए। ऐसे समय भी जाना उचित नहीं है जबकि वह अपने कामकाज में संलग्न रहता हो। अच्छा यह है कि आप जिससे भेंट करना चाहते हैं यदि उसके रहन-सहन व दिनचर्या से परिचित नहीं हैं तो उसके मकान पर जाने से पूर्व उसके अवकाश अथवा भेंट का समय मालूम कर लें।

जब आप कार्यवश किसी से मिलने जायें तो निम्न बातों का ध्यान रखना चाहिए—

(क) वह आदमी कहीं जाने के लिए जल्दी में तो नहीं है;

(ख) वह कोई ऐसी बातचीत या काम तो नहीं कर रहा है जिसके बीच में बोलना उसे बुरा लगे;

(ग) वह अप्रसन्न अथवा शोकग्रस्त या चिंतित तो नहीं है; और

(घ) वह भूखा, प्यासा या थका-मांदा तो नहीं है।

यदि इनमें से कोई भी बात हो तो आपको ठहर जाना चाहिए अथवा लौट आना चाहिए और अच्छा अवसर देखकर अपनी बात कहनी या भेंट करनी चाहिए, क्योंकि ऐसे समय उस व्यक्ति का आपसे बातचीत करने में मन नहीं लगेगा और संभव है कि लाभ के बदले उल्टी हानि हो जाय। अगर उपर्युक्त किसी कारण से गृहस्वामी आपसे उस समय भेंट न कर सकने के लिए नम्रता के साथ अपनी विवशता प्रकट करे तो उसकी स्पष्टवादिता पर आपको बुरा मानना उचित नहीं। अगर गृहस्वामी पर सार्वजनिक कार्यों का भार रहता हो तो आपको इस विषय में साधारण से अधिक उदार होना चाहिए।

भेंट के लिए अनुमति

भेंट के लिए किसी के कार्यालय, बैठक आदि में प्रवेश करने से पूर्व भृत्य आदि के द्वारा गृहस्वामी से अनुमति ले लेनी चाहिए। अनुमति लेने का एक उद्देश्य तो यह है कि गृहस्वामी को असुविधा न हो क्योंकि वह कभी-कभी ऐसी स्थिति में भी हो सकता है कि वह यह उचित न समझे कि दूसरों की दृष्टि उस समय उस पर पड़े; दूसरा यह है कि यदि वह किसी कार्य में व्यस्त हो भी तो उसका ध्यान आगंतुक की ओर आकृष्ट हो सके। अनुमति मिलने से पूर्व दरवाजे के दायें-बायें खड़ा होना चाहिए सामने नहीं, जिससे अंदर की वस्तुओं पर दृष्टि न पड़े। अगर चपरासी या नौकर आदि न हो तो स्वयं दरवाजे पर रुककर अनुमति ले लेनी चाहिए। अनुमति लेने का प्रकार यह हैं कि नमस्कार करके यह कहें कि "क्या मैं अन्दर आ सकता हूं?" आज्ञा न मिले तो वापस चले आना चाहिए। अगर गृहस्वामी घर के बाहर दालान में बैठा हुआ हो और उसके साथ कोई दूसरा व्यक्ति न हो तो उस समय आज्ञा लेना आवश्यक है।

यदि आप किसी मित्र या परिचित व्यक्ति के घर पर जायें और वहां नौकर आदि न हो तथा दरवाजा बंद हो तो पहले दरवाजा खटखटायें, निधड़क भीतर प्रवेश मत करें। उत्तर मिलने पर पूछकर भीतर जायें। परंतु जोर-जोर से दरवाजा खटखटाना या लगातार आवाज लगाना अशोभनीय है।

वर्तमान युग में, किसी अजनबी या अफसर आदि से अथवा किसी व्यक्ति से कार्यवश भेंट करने के अवसर पर विजिटिंग कार्ड (Visiting Card) अर्थात् भेंट-पत्र का उपयोग किया जाता हैं। भेंटपत्र भेजने का अर्थ है कि आप उस व्यक्ति से भेंट करने के इच्छुक हैं। पत्र मिलने पर गृहस्वामी का कर्तव्य है कि यथाशीघ्र आगंतुक को भेंट के लिए अन्दर बुलाए और देर की संभावना हो तो भेंट करने वाले को उसकी सूचना दे दे।

भेंटपत्र पर केवल नाम होना चाहिए। अगर अपने नगर के बाहर कार्ड का प्रयोग करना हो तो अपने नगर और अपनी पदवी आदि का भी उल्लेख होना चाहिए। अगर व्यवसाय-संबंधी भेंट हो तो पैंसिल या कलम से कार्ड पर अपना पेशा लिख देना चाहिए।

दर्शनाभिलाषी का कर्तव्य

यदि आप दूर से पैदल आये हैं तो भेंट के लिए किसी की बैठक में प्रवेश करने से पूर्व, अपने जूते, और अगर नंगे पैर हैं तो अपने पैर साफ करना कभी न भूलें, यदि पायदान हो तो उससे भी लाभ उठायें।

किसी के यहां पहुंचकर बिना मालिक के आग्रह के किसी उच्च या अपेक्षतया

बेहतर स्थान अथवा आसन पर न बैठें। छड़ी, छाता आदि जहां बैठें अपने हाथ में न लिये रहें, किसी निर्धारित स्थान या कोने में रख दें।

किसी के घर आकर बिना गृहस्वामी की अनुमति के उसकी चीज और कागज़-पत्रों को न छुएं और न उलट-पलट करें। अनुमति मिलने पर यदि देखें अथवा उठायें भी तो उन्हें उसी तरह रख दें जिस तरह वे पहले थीं। उस कमरे में लगे हुए चित्रों की ओर तथा अन्य चीजों की ओर लगातार टकटकी बांधकर देखना भी उचित नहीं है।

यदि किसी द्वार पर पर्दा आदि लटक रहा हो तो उस ओर घूरकर न देखें। यदि उस ओर दृष्टि साधारणतया चली भी जाय तो तत्काल हटा लें। पर्दे और चिक आदि प्रायः घरों के अन्दर वहां लगाए जाते है जहां स्त्रियों का रहना-सहना या आना-जाना रहता है।

किसी मित्र या रिश्तेदार के घर जायें तो बच्चों में दोष न निकालें बल्कि उन्हें अपने प्यार का परिचय दें; उनसे प्रेम करना आपको गृहस्वामी के और निकट लाता है। बच्चों की आलोचना करना मां-बाप को अच्छा नहीं लगता। यदि माता-पिता बच्चे की शिकायत करें तो भी बच्चे को डांटने की धृष्टता न करें। स्नेह-युक्त शब्दों में उसे समझा दें और आवश्यक हो तो माता-पिता को कोई सुझाव दे दें।

अपने मित्र अथवा गृहस्वामी की किसी वस्तु को देखकर बिना पूछे ही उसकी कीमत आंकने लगना अनुचित है। न तो उससे यह कहना चाहिए कि आपने अमुक स्थान में उससे अच्छी चीज़ देखी है और न उसमें कोई त्रुटि ही निकालनी चाहिए।

यदि सत्कार के लिए पान, इलायची आदि आपके सामने पेश की जाय तो उसमें से आवश्यकतानुसार लेकर गृहस्वामी को धन्यवाद देना चाहिए।

यदि आप किसी के घर काम से जायें तो साधारण शिष्टाचार अर्थात् प्रणाम आदि के बाद मतलब की बात करना आरम्भ कर दें और उतनी ही देर बैठें जितना आवश्यक हो। अर्थात् यह नौबत न आने दें कि वह आपसे उठ जाने के लिए संकेत करे। परन्तु आपकी बातचीत या रंग-ढंग से उतावलापन और जल्दबाज़ी भी प्रकट न हो जिससे दूसरा व्यक्ति आपको कोरा स्वार्थी न समझे।

किसी भी मित्र के घर व्यर्थ पहुंचकर उसका समय बरबाद न करें। आपको अवकाश है तो इसका यह अर्थ नहीं है कि सभी लोगों को अवकाश होगा। जिस समय उसकी बातचीत में उदासीनता अथवा शिथिलता दीख पड़े, उस समय समझ लेना चाहिए कि उसे मिलने का अधिक सुभीता नहीं है। इसलिए ऐसे संकेत की सूचना (अथवा निवेदन) समझकर वहां से चले आने का उपक्रम करना चाहिए।

अगर भेंट के समय कोई अन्य सज्जन गृहस्वामी से मिलने के लिए आये और गृहस्वामी उसके स्वागत के लिए खड़ा हो तो स्वयं भी खड़े हो जाओ। तदनंतर कुछ मिनट बाद वहां से चलने की चिन्ता करनी चाहिए, परंतु एकदम नहीं। नवागंतुक से बातचीत के दौरान में जैसे ही गृहस्वामी को पहला विराम मिले, वैसे ही शांतिपूर्वक उससे विदा लेनी चाहिए। यदि नवागंतुक से जान-पहचान है तो विदा होने से पूर्व उससे दो-चार मैत्रीसूचक बातें कर लेनी उचित हैं। अगर वह दोनों का मित्र है तो इस नियम का पालन जरूरी नहीं।

किसी से पृथक् होते समय 'आज्ञा हो', 'इजाजत दी जाय' आदि वाक्य बोलकर वहां से अलग होना चाहिए। यह कहना कि "मुझे खेद है कि मैंने आपका बहुत समय ले लिया" या "आपका बहुत अमूल्य समय नष्ट किया", अनावश्यक है।

भेंट के बाद विदा होने के लिए खड़े हो जायं तो फौरन चल दें। स्वयं खड़े रहकर और अंतिम बात को आधा घंटा लम्बी करके अपने मित्र अथवा गृहस्वामी को खड़ा रहने के लिए विवश न करें।

गृहस्वामी का कर्तव्य

यदि कोई व्यक्ति आपसे भेंट करने की इच्छा रखता हो तो बिना विलंब किये, कुछ असुविधा सहकर भी आगंतुक से मिलने का समय निकालें।

अगर कोई आपसे मिलने आये जिसको आपने भेंट के लिए पहले से समय दे दिया हो तो उस समय आपको तैयार रहना चाहिए, बिना विशेष कारण के किसी ऐसे सज्जन को इंतजार कराना या उससे मुलाकात न करना बड़ी असभ्यता है। अगर आपको थोड़ी-बहुत देर हो जाय तो इसके लिए आपको उससे क्षमा मांगनी चाहिए।

किसी दर्शनार्थी से भेंट करने के लिए अर्धनग्न अवस्था में, केवल धोती या पाजामा आदि पहने हुए और निद्रा से उठने अथवा भोजन करने के बाद बिना हाथ-मुंह धोये ही, अन्तःपुर से बाहर निकलना उचित नहीं है।

अगर कोई महिला या मान्य व्यक्ति या मित्र भेंट के लिए आये तो यथोचित प्रणाम या नमस्कार के साथ खड़े होकर अथवा कुछ आगे बढ़कर उसका स्वागत करें और जब तक उसे कुरसी आदि किसी यथायोग्य आसन पर बिठा न दें, तब तक स्वयं न बैठें। बिठाने के लिए 'विराजिए', 'पधारिए', तशरीफ रखिए' आदि शब्दों का प्रयोग करना चाहिए। मुलाकाती से लेटकर बातचीत करना पहले दरजे की असभ्यता है। परंतु बीमारी में तथा गहरे संबंध वालों में यह क्षम्य है। महाभारत में आया है :

चक्षुर्दद्यान्मनो दद्याद्वाचं दद्यात्सुभाषिणीम्।
उत्थाय चासनं दद्यादेष धर्मः सनातनः॥ वन० २।५७।५५

अर्थात् दर्शनोत्सुक के अपने घर में आने पर आंख मिलाकर, बड़ी तन्मयता के साथ मधुर बात करना तथा उठकर आसन देना, यह सनातन धर्म है।

भेंट के लिए जो व्यक्ति आया है उससे वार्तालाप न करना और उसके सामने चुप बैठ जाना असभ्यता है। यदि वह कार्यवश आया हो तो यथायोग्य आसन देने के उपरांत आगंतुक से कुशलमंगल पूछना चाहिए। फिर उससे कुछ ऐसी बातें करनी चाहिए जो उसकी रुचि के अनुकूल हों अथवा उसके कामकाज से संबंध रखती हों। उसके आने का कारण पूछने की उतावली न करनी चाहिए। वह बातचीत में बहुधा आप ही प्रकट हो जाता है अथवा कुछ समय के पश्चात् "कैसे कृपा की ?" "कैसे कष्ट किया ?" "क्या आज्ञा है ?" आदि प्रेमपूर्वक शिष्ट वाक्यों द्वारा चतुराई से पूछा जा सकता है। यदि आपके पास अधिक समय न हो और बैठने वाले के कारण आपके किसी आवश्यक कार्य में हानि होने की संभावना हो, तो आपको अपनी कठिनाई नम्रतापूर्वक जता देनी चाहिए। ऐसे अवसर पर संकोच करने से लाभ के बदले हानि अधिक होती है। परंतु घड़ी देखने लगना, जम्हाई लेना अथवा अन्य प्रकार से उदासीनता प्रकट करना अशिष्ट समझा जाता है। अपनी विवशता स्पष्ट कह देनी चाहिए। अगर किसी विशेष कारणवश भेंट के बीच में से आपको दो-चार मिनट के लिए जाना पड़े अथवा कोई असाधारण आवश्यक पत्र व संदेश आदि पढ़ना हो तो इसके लिए भेंट करने वाले महोदय से क्षमा मांग लेनी चाहिए।

दर्शनार्थी सज्जन का जलपान, इलायची आदि से यथायोग्य सत्कार करना उचित है, चाहे वह आपका शत्रु और पद में आपसे कितना ही छोटा क्यों न हो। यदि वह आपका मित्र अथवा कोई प्रतिष्ठित व्यक्ति हो तो यथावसर दूध, फल आदि से उसकी आव-भगत करनी चाहिए। सत्कार के लिए दी जाने वाली वस्तु खुद अपने हाथ से उठाकर किसी को मत दें, बल्कि उसके आगे कर दें। वह स्वयं ले लेगा।

भेंट करने के अनंतर जिस समय दर्शनाभिलाषी जाने लगे तो यथायोग्य खड़े होकर या द्वार तक जाकर अथवा दस कदम बाहर चलकर उसे अभिवादन सहित विदा देनी चाहिए।

गृहस्वामी के अन्य जनों का कर्तव्य

यदि कोई सज्जन आपके किसी बड़े अर्थात् पिता आदि से भेंट करने आयें और उस समय वह बैठक में न हों तो तुरंत ही इसकी सूचना उनको दे दें। यदि वह

शीघ्र ही आ जायें तब तो ठीक ही है, परंतु अगर किसी कारणवश उनके आने में देर हो तो आपको चाहिए कि आप स्वयं ही आगंतुक के पास बैठ जायें और जब तक आपके पिता आदि न आयें, उनसे बातें करते रहें। अपने यहां मिलने आने वाले को अकेला बैठा छोड़ देना अशिष्टता है। अगर आपके पास भी समय न हो तो दिल बहलाने के लिए दर्शनोत्सुक को अखबार या कोई पुस्तक दे दें।

अगर आपके पिता, भाई, पति, पुत्र आदि से कोई व्यक्ति मिलने आये और वे घर पर न हों तो स्वयं आगंतुक का यथोचित आदर-सत्कार करें। किसी प्रकार की उनकी अवहेलना न हो। अगर वह आपके पिता आदि के आने का इंतजार न करें तो उनका नाम, पता, कार्य आदि पूछ लें। अगर घर पर उस समय पुरुष न हों तो इस नियम की पाबंदी स्त्रियों के लिए आवश्यक हो जाती है। यह अत्यंत बुरा है कि कोई व्यक्ति आपके घर आये और झूठी लज्जावश आपकी ओर से संतोषजनक उत्तर न मिले अथवा अपने पति आदि के लौटने पर उनको उस व्यक्ति का पता या भेंट का उद्देश्य तक न बतलाया जा सके।

यदि अपना कोई गुरुजन, पूज्य या बड़ा किसी के आदर-प्रदर्शनार्थ खड़ा हो और आप भी वहां उपस्थित हों, तो आपको भी खड़ा हो जाना चाहिए और उसके व अपने गुरुजन के बैठ जाने पर ही बैठना चाहिए। अगर कोई सज्जन भेंट करने आया हो तो गृहस्वामी के कुटुंबियों अर्थात् बच्चों आदि को इधर-उधर से उसकी ओर झांकना नहीं चाहिए। इससे उस सज्जन के मन में अशांति पैदा होती है और उस कुटुंब के आदमियों की असभ्यता प्रकट होती है।

परिचय

यह प्रश्न कि परिचय कब कराया जाय और कब नहीं कराया जाय, बहुत टेढ़ा है। इसके लिए कोई सीधा या सरल नियम नहीं हो सकता। इतना स्पष्ट है कि अनावश्यक तौर पर परिचय कभी नहीं कराना चाहिए। यदि जिससे परिचय कराया जाय उसको भार मालूम हो तो परिचय कराना ठीक नहीं। इसके साथ ही किसी अपने मित्र को ऐसी स्थिति में छोड़ देना कि उसके लिए सब अजनबी हों और वह किसी से बातचीत न कर सके, एक बड़ी गलती है।

ऐसे अवसरों पर जहां अधिक संख्या में लोग उपस्थित हों, बहुधा कोई परिचय नहीं कराया जाता; परंतु जल-पान आदि छोटी पार्टी और मंडलियों में आये हुए यथासम्भव सब मित्रों का गृहस्वामी परस्पर परिचय कराता है। अगर सबका एक-दूसरे से परिचय न भी हो सके तो उन व्यक्तियों का जो आपस में एक-दूसरे के निकट बैठें और यदि किसी प्रतिष्ठित व्यक्ति के आने के उपलक्ष्य में पार्टी दी गयी हो, तो उसका सब उपस्थित सज्जनों से परिचय अवश्य करा देना चाहिए।

आपसे भेंट करने के बाद जब एक सज्जन विदा ले रहा हो और दूसरा मिलने के लिए आया हो तो उनका परस्पर परिचय कराना आवश्यक नहीं है और न ही अगर दो आदमी बातचीत करने में पूरी तरह संलग्न हों तो बीच में ही किसी तीसरे का उनसे परिचय कराना चाहिए। अगर आप अपने किसी मित्र के साथ रास्ते में पैदल जा रहे हों और किसी अन्य मित्र से भेंट हो जाय, तो उस समय भी यह आवश्यक नहीं कि आप उन दोनों का परस्पर परिचय करायें। लेकिन यदि अवसर अनुकूल जान पड़े और आप यह समझते हों कि इससे दोनों को प्रसन्नता होगी तो परिचय करा देने में कोई हानि नहीं है।

सार्वजनिक स्थानों में अथवा जहां दस आदमी बैठे हों कभी एक का दूसरे से परिचय नहीं कराना चाहिए, जब तक कि आपको पूरा यकीन न हो कि परिचय को दोनों सज्जन पसन्द करेंगे।

सभ्य समाज में लोग स्वयं ही परस्पर परिचय करने-कराने को अच्छा नहीं समझते; किंतु यदि कोई उपयुक्त कारण हो, उदाहरणार्थ दूसरा सज्जन आपके भाई का मित्र हो तो आप अपना परिचय दे सकते हैं। यदि दूसरा व्यक्ति आपके भाई को नाममात्र को ही जानता हो तो उसको बिना उसकी इच्छा से अपना परिचय देना उचित न होगा।

भोज व जलपान आदि सामाजिक कृत्यों के अवसर पर यदि गृहस्वामी परिचय न करा सके तो परस्पर निकट बैठने वालों को स्वयं एक-दूसरे का परिचय प्राप्त कर लेना चाहिए। स्वयं परिचय हासिल करते समय "आपका नाम क्या है ?" इस तरह पूछना असभ्यता है। नाम पूछने के लिए "श्रीमान जी का शुभ नाम" "जनाब का इस्म मुबारिक" आदि आदरसूचक शब्दों का प्रयोग करना चाहिए।

सदैव छोटे का बड़े अथवा प्रतिष्ठित से परिचय कराया जाता है। जिसका किसी से परिचय कराना हो उसको दूसरे के पास तक ले जायें और जैसे ही एक-दूसरे का सामना हो जाय तो परस्पर परिचय करायें।

परिचय कराते समय परिचायक को, जिससे परिचय कराया जाता है उसका नाम पहले लेकर कहना चाहिए कि "क्या मैं अमुक सज्जन का परिचय करा सकता हूं ?" अथवा "पेश कर सकता हूं ?" या "आप हैं अमुक सज्जन।" इसके अतिरिक्त फतहसिंह का रामेश्वर से परिचय कराते समय यह भी कह सकते हैं, "रामेश्वर जी, क्या आप फतहसिंह जी को जानते हैं ?" अथवा "क्या आपकी फतहसिंह जी से भेंट हुई है ?" इसके बाद एक-दो वाक्यों में उसके संबंध में मोटी-मोटी बातों की सूचना दे देनी चाहिए।

जब एक मनुष्य का परिचय पांच-सात उपस्थित मित्रों से कराना हो तो पहले सबको उस व्यक्ति का परिचय देना उचित है; इसके पश्चात् ही गृहस्वामी को

एक-एक करके उन मित्रों का परिचय उसे देना चाहिए।

परिचय कराने में इस बात का ध्यान रखें कि किसी व्यक्ति की पदवी व शिक्षा-संबंधी योग्यता आदि की सूचना देने में कोई कमी न रह जाय। ऐसे अवसर पर अगर कुछ अतिशयोक्ति भी हो जाय तो कुछ हानि नहीं है, परंतु किसी एम० ए० तक शिक्षित सज्जन को बी० ए० पास कहना एक बड़ी गलती है। इसलिए परिचय उसी को कराना उचित है जो दोनों व्यक्तियों के संबंध में ज्ञातव्य बातें जानता हो।

यदि किसी सभ्य पुरुष से कोई परिचय कराये तो जिससे परिचय कराया जाये, उससे नमस्कार करना चाहिए और इच्छा हो तो, परस्पर हाथ भी मिलाना चाहिए।

किसी डाक्टर, शास्त्री अथवा आचार्य आदि को केवल उपाधि बोलकर ही संबोधन किया जाता है, न कि नाम लेकर। अतएव परिचय कराते समय यदि परिचायक उसका नाम न बतलाये तो उस समय उसका नाम न पूछना चाहिए; बाद में किसी अन्य सज्जन से मालूम किया जा सकता है।

परिचय कराये जाने पर बिल्कुल चुप रह जाना अशिष्टता है। परिचय की स्वीकृति में जिससे परिचय कराया जाय, पहले उसको और फिर नव परिचित को, चाहिए कि "आपका चित्त कैसा है?" या इसी प्रकार के अन्य शब्दों द्वारा दूसरे का कुशल-मंगल पूछें। इसके बाद अगर दोनों व्यक्तियों ने पहले से किसी मित्र के द्वारा एक-दूसरे का नाम सुन रखा हो और जिसका परिचय कराया गया है, वह यह समझता है कि दूसरे को भी उससे मिलकर खुशी हुई है तो वह "मुझे आपसे मिलकर अत्यंत प्रसन्नता हुई है" आदि वाक्य कह सकता है। वरन् सीधे किसी तात्कालिक समाचार अथवा सामयिक प्रश्न या समस्या पर या मौसम आदि किसी उपयुक्त विषय के संबंध में कोई असाधारण वाक्य कहकर कुछ बात छेड़ देनी चाहिए।

नये सज्जनों की मंडली से पृथक होते समय, चाहे आपका उनसे परिचय कराया गया हो अथवा आप उनकी बातचीत में बिना परिचय कराये सम्मिलित कर लिये गये हों, उनमें से जो भी उस समय आपकी ओर देख रहे हों या आकृष्ट हों, उन्हें अभिवादन करके प्रस्थान करें; उन सबका ध्यान खींचने का प्रयत्न न करें जिनको आपके विदा होने का ज्ञान नहीं है।

परिचय-पत्र

कामकाज के संबंध में जो पत्र आवश्यक हों उनको छोड़कर, उचित यही है कि यथासंभव आप किसी से उसके मित्र के लिए परिचय-पत्र न लिखवायें और न किसी के लिए आसानी से परिचय-पत्र लिखने के लिए बैठ जाना ठीक है, क्योंकि

परिचय-पत्र का अर्थ यह है कि जिसको पत्र लिखा जाता है, उससे यह कहा जा रहा है कि उसकी अपनी इच्छा कुछ भी हो, पत्र लाने वाला व्यक्ति उसकी सहानुभूति, समय और आतिथ्य का अधिकारी हो गया। ऐसा पत्र लिखना अपने मित्र पर बड़ा भार डालना और उसको कष्ट देना है।

परिचय-पत्र सदैव खुला देना चाहिए और जिसको ऐसा पत्र दिया जाता है उसको उचित है कि वहीं लेखक के सामने लिफाफा बंद कर ले और धन्यवाद देकर अपनी राह ले।

हाथ मिलाना

हाथ का मिलाना प्रेम और प्रसन्नता का सूचक है। हमारे देश में प्राचीन काल से करस्पर्श करने की रीति चली आयी है। 'भागवत' में जब श्री कृष्ण द्वारका पहुंचते हैं तो कुछ लोगों से अभिवादन करते हैं और कुछ से 'करस्पर्श'। इसी प्रकार जब बलराम ब्रज जाते हैं तो गुरु-जनों से अभिवादन करते हैं परंतु अपने बचपन के ग्वाले साथियों से हंसकर 'हस्ताग्रह'। 'विक्रमोर्वशीय' नामक सामाजिक नाटक में पुरुरवा से जब गन्धर्वराज चित्रार्थ की भेंट होती है तो कालिदास ने इस प्रकार हाथ मिलाने का उल्लेख किया है, "उभौ हस्तौ स्पृशतौ।" इसके अलावा जातक कथाओं में जहां शिष्टाचार का वर्णन है वहां कई स्थलों पर करस्पर्श का उल्लेख आया है। 'हस्ती' नामक जातक में चिनु जब अपने गुरु से मिलने जाता है तो वहां सहपाठियों से 'करस्पर्श' करता है। अरब निवासी विद्वान इतिहास-लेखक अलबरूनी, जोकि ईसा की ग्यारहवीं शताब्दी में भारतवर्ष आया था, अपनी पुस्तक 'किताब-उल-हिन्द' में हिंदुओं से भेंट के समय हाथ मिलाने के रिवाज का वर्णन करता है। मुसलमानों में तो उनके आदिकाल से 'मुसाफे' का रिवाज प्रचलित है।

उन अवसरों को छोड़कर जबकि वह केवल एक-दूसरे के पास से गुजरते हों, सब लोग जिनका परिचय हो, जब तक कि उनकी हैसियत में बहुत बड़ा अंतर न हो, एक-दूसरे से भेंट अथवा पृथक् होने के समय हाथ मिलाते हैं।

उन व्यक्तियों की जिनमें यों ही चलते-फिरते अथवा उठते-बैठते, बिना किसी विशेष उद्देश्य के बातचीत हो गई हो, एक-दूसरे से पृथक् होते समय परस्पर हाथ मिलाना आवश्यक नहीं है। परंतु इसमें कोई नियम नहीं है। यह अपनी-अपनी रुचि और स्वभाव पर ही निर्भर है। अगर आपकी इच्छा नहीं है तो यह अनावश्यक है कि आप मिलाने के लिए हाथ बढ़ायें, परंतु अगर कोई हाथ बढ़ाये तो हाथ न मिलाना अक्षम्य अशिष्टता मानी जायगी।

अ-समानों में भेंट के समय जब बड़ा आदमी मिलाने के लिए अपना हाथ आगे

बढ़ाये, तभी छोटे को अपना हाथ बढ़ाना चाहिए,; उसे किसी भी सूरत में पहल नहीं करनी चाहिए।

भारतीय सभ्यता पुरुषों को स्त्रियों से हाथ मिलाने का प्रतिपादन नहीं करती।

हाथ मिलाने के लिए हमें खड़े हो जाना चाहिए। बैठे-बैठे अथवा अपनी कुरसी पर पीछे की ओर पीठ कर लापरवाही से मिलाने के लिए हाथ बढ़ाना अत्यंत अशिष्टता है, क्योंकि इससे यह प्रकट होता है कि आपके दिल में दूसरे व्यक्ति के लिए कोई मान नहीं है। परंतु अगर दूसरा व्यक्ति आयु में आपसे बहुत छोटा है, तो कुरसी पर सीधे बैठे रहकर अपनी प्रसन्नता का प्रकाश करते हुए हाथ मिलाया जा सकता है।

करस्पर्श में अत्यंत सरलता हो; इसमें किसी बनावट या विशेष चतुराई की जरूरत नहीं है। हाथ को इतना कड़ा न पकड़ें मानो आप दूसरे की उंगलियों को कुचल देना चाहते हों और न केवल उसे छूकर ही छोड़ दें जिससे उसे बुरा लगे। बल्कि पूरे हाथ को, दृढ़ता से पकड़ें, केवल उंगलियों को ही नहीं, और धीरे से दबाकर थोड़ा हिलावें, उसके चेहरे की ओर देखें और फिर धीरे से हाथ छोड़ दें।

४

अतिथि और गृहमेधी

अगर आप किसी मित्र के अतिथि बनें तो अवसर पाकर उस पर यह प्रकट कर दें कि आपका विचार कब तक उसके पास ठहरने का है और जब वह काल बीत जाय तब आपको फौरन विदा ले लेनी चाहिए। आप अपने मित्र के यहां इतने समय तक न ठहरें कि वह उकता जाय और यह चाहने लगे कि आप चले जायं, अपितु उतने समय तक ही ठहरें कि मित्र यही इच्छा करता रहे कि आप और ठहरते तो परम आनंददायी होता। किंतु अगर आपका मित्र सच्चे दिल से आपके और अधिक ठहरने के लिए आग्रह करे, तो ऐसी दशा में ठहर जाना अनुचित न होगा।

जहां तक संभव हो, अपने गृहमेधी और उसके नौकरों को व्यर्थ किसी प्रकार का कष्ट न दें अर्थात् उनपर कम से कम बोझा डालें। सबसे अधिक ध्यान इस बात का रखना चाहिए कि आपके कारण उनका समय कम से कम नष्ट हो। भोजन के निश्चित समय पर उपस्थित रहना आवश्यक है जिसमें घरवालों को आपके लिए प्रतीक्षा न करनी पड़े। अगर आप भोजन के समय उपस्थित न रह सकें तो इसकी सूचना पहले से ही गृहमेधी को देनी चाहिए।

बिना विशेष कारण के आपको कोई खाद्य पदार्थ अपने मूल्य से मंगाकर नहीं खाना चाहिए। हां, अगर अधिक अरसे तक ठहरें तो अपने अन्य आवश्यक व्यय अपने पास से करना उचित है।

जब आप किसी के अतिथि बनें और आपके साथ कोई मित्र भी हो तो उसको अपने आदर-सत्कार में शरीक करना न भूल जायें, परंतु अपने किसी मित्र को अपने साथ ठहराना या भोजन कराना उसी दशा में उचित है जबकि आपको विश्वास हो कि इससे गृहमेधी को कोई असुविधा न होगी।

यदि पहुनाई की अवधि में कोई दूसरा मित्र केवल आपका निमंत्रण भेजे तो निमंत्रण स्वीकार करने से पूर्व आपको गृहमेधी की अनुमति ले लेनी चाहिए।

यदि इसमें उसको कुछ आपत्ति हो आपको वह निमन्त्रण स्वीकार नहीं करना चाहिए।

यदि गृहमेधी के साथ-साथ शिष्टाचारवश आपका भी निमंत्रण किसी ऐसे व्यक्ति की ओर से आता है जिसका कोई पूर्व परिचय आपसे नहीं है तो आपको अधिकार है कि आप उस निमंत्रण को स्वीकार करें अथवा न करें।

या तो विदा होते समय अथवा घर पहुंचते पर पत्र द्वारा आपको अपने आतिथेय की कृपाओं के लिए धन्यवाद प्रकट करना चाहिए।

यदि कोई व्यक्ति आपके यहां अतिथि के रूप में आनेवाला हो और उसके आने के निश्चित समय की सूचना मिल जाय तो उसको लेने स्टेशन पर जायें या किसी अन्य को भेज दें और जब अतिथि घर पर आये तो उसका सामान गाड़ी से उतरवाकर भली भांति ठहरने के स्थान में रखवा दें और कुछ समय पश्चात् पूछ लें कि कैसा भोजन उन्हें अधिक पसंद है और वे किस समय भोजन करेंगे।

अतिथि का यथाशक्ति सत्कार करना चाहिए। ऐसा कोई काम न करना चाहिए जिससे कि वह यह समझे कि आप उसका आना पसंद नहीं करते। महाभारत में कहा गया है—

तृणानि भूमिरुदकं वाक्चतुर्थी च सूनृता।
सतामेतानि गेहेषु नोच्छिद्यन्ते कदाचन॥" वन।२।५३।५५

बैठने के लिए आसन, ठहरने के लिए जगह, पीने के लिए पानी और मन बहलाने के लिए मीठी बातें—ये चार चीज़ें सज्जनों के यहां सदा बनी रहती हैं, उनकी कमी कभी नहीं होती। अर्थात् अतिथि के आने पर उसकी सेवा के लिए इतने पदार्थ तो आवश्यक होते ही हैं।

गृहमेधी अपने मेहमान का किस प्रकार स्वागत करे, इसके लिए पंचतंत्र का निम्न उद्धरण बड़ा उपयुक्त है :

साह्या गच्छ समाश्वासासनमिदं, कस्माच्चिराद्दृश्यसे,
का वार्तान्वित दुर्बलोऽसि कुशलं, प्रीतोऽस्मि ते दर्शनात्।
एवं नीचजनेपि गच्छति गृहं, प्राप्ते सतां सर्वदा,
धर्मोऽयं गृहमेधिनां निगदितः, स्मार्त्तैर्लघुः स्वर्गदः॥

अर्थात् स्मृतिकारों ने गृहमेधी के लिए यह कर्तव्य बताया है कि जब कोई अपने से छोटा भी उसके घर पर आये तो उसका सत्कार निम्न प्रकार कुशल-प्रश्न पूछकर करें—"आइए, ज़रा आराम कीजिए ; ये आपके बैठने के लिए आसन है, आप बहुत दिनों में दीखे है, क्या बात है कि आप कुछ थके-से दीखते हैं? कुशल-

मंगल तो हैं ? आपके दर्शन से मुझे प्रसन्नता हुई ।"

यदि कोई सज्जन या इष्ट-मित्र आपके घर आया हो तो आपको उनकी आवश्यकताओं पर स्वयं निगाह रखनी चाहिए और यथासंभव उनके साथ बैठकर भोजन करना चाहिए। यदि कार्यवश आपको उनसे पृथक् होना पड़े तो इसके लिए उनसे आज्ञा प्राप्त कर लेना आवश्यक है। अगर आपके अतिथि आपके बड़े अथवा मान्य व्यक्ति हैं तो उचित यही है कि उनके साथ भोजन न करें और अपने हाथ से भोजन परोसें। उनसे पहले खा लेना किसी भी सूरत में ठीक नहीं है। साथ भोजन करने की अवस्था में बड़े या अतिथि के सामने पहले भोजन रखना चाहिए। यदि थालियां छोटी-बड़ी हों तो बड़ी थाली उनके सामने और छोटी अपने सामने रखनी चाहिए और उनके आरंभ करने के बाद ही स्वयं भोजन करना आरंभ करना चाहिए।

हिंदू शिष्टाचार के अनुसार सब अतिथियों का पूरा भार गृहस्वामिनी पर रहा करता था। भारतवर्ष के उन प्रदेशों में जहां दूसरी सभ्यताओं का मिश्रण कम हो पाया है, अब भी यही प्रथा प्रचलित है। गृहस्वामी को प्रायः अपने व्यवसाय से इतना अवकाश नहीं मिलता कि वह अतिथि की आवश्यकताओं का पर्याप्त ध्यान रख सके। अतएव यह पुराना रिवाज भारत के दूसरे प्रदेशों के हिंदू घरानों में फिर से प्रचलित हो जाय तो अच्छा ही है।

आपके लिए उचित है कि आप कभी भी अतिथि से किसी प्रकार का अपना काम न लें।

यदि कोई अतिथि आपके स्थान की रीति के विपरीत व्यवहार कर बैठे तो उस पर हंसना नहीं चाहिए।

आप विवाह और नामकरण आदि संस्कारों में आने व भाग लेनेवाले पाहुनों अथवा निमंत्रित मित्रों को आदरपूर्वक विदा करें। कुछ दूर तक उनके साथ जायें अपनी त्रुटियों के लिए क्षमा मांगें और यदि आवश्यक हो तो उनके लिए सवारी का भी प्रबंध कर दें।

५

मातमपुरसी

मनुष्य का शरीर मरणधर्मा है; अतः मौत सभी को आती है। मृत्यु होने पर मृतक के आश्रित, प्रियजन व संबंधियों को उसके वियोग का जो दुःख होता है, वह अकथनीय है। ऐसे अवसर पर पड़ौसी व मित्र आदि का कर्तव्य है कि वह मृतक के शोक-पीड़ित बंधुओं व कुटुम्ब वालों को ढाढस बंधावें, बच्चों को सम्हालें और शव के अंतिम कर्म का प्रबंध करें। किसी गरीब, असहाय के ऐसे आड़े वक्त काम आना तो ऊंचे दरजे की सामाजिक सेवा समझनी चाहिए।

हिंदुस्तानी शिष्टाचार के अनुसार मृत्यु या शोक के अन्य अवसर पर, अपने मित्र, संबंधी अथवा पड़ौसी के घर स्वयं जाकर उसके रंज में शरीक होना और उसके साथ समवेदना प्रकट करना मनुष्य का परम कर्तव्य है। परंतु पश्चिमी सभ्यता में केवल शोकग्रस्त के घर जाकर भेंटपत्र छोड़ आना अथवा उसको पत्र लिख देना ही पर्याप्त समझा जाता है।

गमी के अवसर पर मित्रों से हाथ मिलाना या अधिक बातें करना उचित नहीं है। अगर कोई बात की जाय तो वह मृत व्यक्ति के संबंध में, उसके देहावसान से कुटुम्ब की हानि या ऐसे ही विषय पर हो; मृत व्यक्ति की जायदाद की बाबत या उसने अपने किस उत्तराधिकारी को क्या दिया है, इसके संबंध में प्रश्न करना उचित नहीं है। ऐसे अवसर पर अगर मृत व्यक्ति के कुटुम्बी आपकी ओर ध्यान न दे सकें या उनकी ओर से आपकी कोई अवहेलना हो जाय, तो इसकी परवाह नहीं करनी चाहिए।

किसी के शव के साथ जायें तो गंभीर रहना आवश्यक है। ऐसे अवसर पर हंसना अथवा पान खाना और तम्बाकू पीना सर्वथा अनुचित है। शोक के अवसर पर सज-धजकर अथवा आभूषण आदि पहनकर जाना तो परले दरजे की असभ्यता है, अर्थात् कोई भी ऐसा काम न करना चाहिए जिससे यह मालूम पड़े कि आप समय के तकाज़े और महत्त्व को भूल गए हैं।

अर्थी को ले जाते समय जल्दी-जल्दी न चलना चाहिए, जैसा कि बहुत से शहरों में हिंदू लोग करते हैं और श्मशान भूमि में उस समय तक ठहरना चाहिए जब तक कि शव पूरी तरह जल न जाय।

शव को चिता पर अथवा कब्र में रखने से पूर्व उपस्थित जनों में से यदि कोई महाशय मृत व्यक्ति के गुणों, उपकारों पर व्याख्यान दे और उसके कुटुम्बी अथवा उत्तराधिकारियों के साथ सहानुभूति प्रकट करे तो बहुत ही उचित है।

श्मशान से सीधे अपने घर न जाकर पहले कुछ देर के लिए मृत व्यक्ति के घर जाना चाहिए और अगर बाहर अर्थात् अपने घर आने से पूर्व स्नान न कर सकें तो घर आते ही शीघ्र स्नान कर डालना चाहिए।

जब आपके किसी संबंधी, मित्र या मोहल्ले के निवासी के घर में कोई मौत हो जाय तो मनुष्यता का तकाज़ा है कि आप उसके यहां भोजन भेजें क्योंकि शोक के कारण उसके घर में खाना पकाने का आयोजन मुश्किल होता है।

यदि हो सके तो मृतक के संबंधियों से सहानुभूति प्रकट करने के लिए उनके यहां दूसरे दिन फिर जाना चाहिए।

मृत्यु के उपरान्त किसी के यहां सांत्वना देने के लिए जायें तो उसके मकान पर सवारी में बैठकर पहुंचना उचित नहीं, सवारी कुछ दूरी पर ही छोड़कर उसके मकान तक पैदल जाना चाहिए।

६

सहभोज

जलपान, सहभोज या प्रीतिभोज सामाजिक व्यवहारों में कदाचित् सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण हैं। सहभोज का निमंत्रण किसी भी अन्य सामाजिक कृत्य के निमंत्रण की अपेक्षा अधिक आदर और मित्रभाव का सूचक है। सहभोज में सर्वोच्च सामाजिक मान का सूचक होने के साथ-साथ, एक अनोखापन है। यह एक ऐसा आदर-सत्कार है, जिसका आसानी से मित्रों में परस्पर आदान-प्रदान हो सकता है।

भोज के लिए जिसको निमंत्रण दिया जाय उसके यहां यदि कोई ऐसा व्यक्ति ठहरा हो या निमंत्रण के समय उपस्थित हो, जिससे निमंत्रक का परिचय अथवा संबंध हो तो उसको भी निमंत्रण देना उचित है।

यदि किसी के उपलक्ष्य में भोज या पार्टी दी जाय तो उसके मित्रों को जिनसे गृहस्वामी भी परिचित हो, निमंत्रण देना चाहिए।

भारतीय संस्कृति में गृहस्वामी स्वयं निमंत्रण देता है अथवा अपने नाई या किसी अन्य आदमी द्वारा निमंत्रण भेजता है। सहभोज आदि के लिए बुलावा आना और उसमें सम्मिलित होना सम्मान का विषय समझा जाता है। निमंत्रण को अस्वीकार करने का एक प्रकार से किसी को अधिकार ही नहीं होता। ऐसा करना निमंत्रक का घोर अपमान करना है, जो सहज में भुलाया नहीं जा सकता। अतएव घर का बड़ा स्वयं शरीक न हो सकता हो तो उसे अपनी जगह कुटुम्ब के किसी भी अन्य सदस्य को भेजने का रिवाज है। परंतु पश्चिमी सभ्यता में, और अब हिंदुस्तानी शहरों में भी जहां लोगों की सोसाइटी केवल अपनी बिरादरी या मोहल्ले तक सीमित नहीं रह गयी है और जहां निमंत्रण-पत्र डाक तक से भेजे जाते हैं, दावत में सम्मिलित न हो सकना इतना बुरा नहीं समझा जाता। लेकिन अस्वीकृति का जवाब निहायत नम्रता के साथ यथाशीघ्र भेज देना जरूरी है जिससे गृहस्वामी को ठीक-ठीक पता लग जाय कि उसको कितने आदमियों का प्रबंध करना है।

निमंत्रण स्वीकार करने के बाद अथवा यदि आपने इन्कार नहीं लिखा या नहीं कहलाया है तो आप उसमें सम्मिलित होने के लिए बाध्य हैं; केवल रोगी हो जाने या किसी अत्यंत महत्त्वपूर्ण कारण के उपस्थित हो जाने पर ही आपका उसमें शरीक न होना क्षम्य हो सकता है।

दूसरे के यहां भोजन करने का निमंत्रण यदि नाम से आया हो और बिरादरी व मौहल्ले आदि का प्रश्न न हो तो निमंत्रित व्यक्ति को ही जाना चाहिए। बच्चों का निमंत्रण न हो तो उन्हें साथ ले जाना कदापि ठीक नहीं। हां, यदि निमंत्रित स्त्रियां दूध पीने वाले, गोद के बच्चों को साथ ले जायं तो कुछ अनुचित नहीं।

दावत में निर्दिष्ट समय के पांच-सात मिनट पहले पहुंच जाना चाहिए। प्रतीक्षा करना या दो-तीन बार बुलावा चाहना बुरा है। गृहस्वामी का भी कर्तव्य है कि जो समय उसने निमंत्रित सज्जनों को दिया है, भोजन उसी समव पर तैयार करा दे। यह न हो कि दस बजे के बजाय ग्यारह बजे तक इंतजार करना पड़े और दूसरे लोगों का समय व्यर्थ में नष्ट हो।

अगर किसी को कारणवश देर हो जाय और भोज या जलपान आरम्भ हो चुका हो तो उसे चाहिए कि आतिथेय मेजबान से इस देरी के लिए क्षमा मांगे। परन्तु आतिथेय को इसके लिए उस व्यक्ति को कोई उपालंभ नहीं देना चाहिए।

गृहस्वामी को और यदि वह किसी आवश्यक कार्य में संलग्न हो तो उसके किसी निकटतम संबंधी को निमंत्रित सज्जनों में से प्रत्येक का आदरपूर्वक स्वागत करना चाहिए और यदि भोज में सम्मिलित होने में कुछ देर हो तो उनको आराम से बिठलाना चाहिए।

भोज व जलपान की पार्टियों के अवसर पर अपनी गाड़ी आदि से आप शान्ति के साथ उतरें; पहले गृहस्वामी से अभिवादन व एक-आध बात करने का यत्न करें और अन्य मित्रों को संबोधन बाद में करें। गृहस्वामी को ऐसे अवसरों पर बहुत से काम होते हैं और अनेक व्यक्तियों का स्वागत व मान करना होता है। अतएव जहां उनका कर्तव्य है कि सब मेहमानों का एक समान आदर-सत्कार करे, अगर वह आपकी ओर यथोचित ध्यान न दे सके तो बुरा न मानें। और चाहे आपकी कैसी भी हैसियत क्यों न हो, यह आशा न करें कि आपका साधारण से कुछ अधिक ख्याल रखा जाय। गृहस्वामी का भी कर्तव्य है कि साधारणतया वह सब मेहमानों को बराबर समझे।

निमंत्रित सज्जनों को चाहिए कि वे भोज से पूर्व और भोज के समय जहां गृहस्वामी बिठलाये वहां शान्तिपूर्वक बैठें। आसन पर बैठते समय शीघ्रता न करें और न भोज के उपरान्त सबसे पहले ही हाथ-मुंह धोने की चेष्टा करें।

गृहस्वामी को चाहिए कि भोज का स्थान ऐसा चुने अथवा बनावे जो रमणीक हो, जहां मन लगता हो और पुष्प आदि का ऐसा प्रबंध कर दे कि जिससे धीमी-धीमी सुगंध हवा में फैल जाय। अगर कुर्सी-मेज का प्रबंध हो तो कुर्सी से कुर्सी मिलाकर न रक्खी जाय, उनमें इतना फासला हो कि एक व्यक्ति की कोहनी दूसरे की कोहनी से न लगे और परोसने वाला आसानी से भोजन परोस सके। साथ ही उनमें इतना अंतर भी न हो कि एक-दूसरे के पास बैठने वाले सहभोजी परस्पर धीमे से बात न कर सकें।

जिस व्यक्ति के उपलक्ष्य में भोज दिया जाय, गृहस्वामी को चाहिए कि उसे अपने दाहिने हाथ बिठाये।

गृहस्वामी को चाहिए कि यथासंभव सबके लिए एक-से आसन का प्रबंध करे।

गृहस्वामी का कर्तव्य है कि यदि उसने दोनों प्रकार के भोजनों का प्रबंध किया हो तो निरामिषभोजी व आमिषभोजी मेहमानों के भोजन करने का अलग-अलग प्रबंध करे।

प्राचीन काल में आर्यों में कुटुम्ब के सब व्यक्तियों, स्त्री व पुरुषों का एकसाथ भोजन करने का रिवाज था, जैसा कि गुजरात प्रान्त में अब तक प्रचलित है, परंतु प्राचीन भारतीय सभ्यता, हिन्दू व मुसलिम दोनों में सहभोज आदि के अवसर पर स्त्री और पुरुषों के एक जगह बैठकर भोजन करने की आज्ञा नहीं देती। अतएव स्त्रियों व पुरुषों के भोजन का प्रबंध भी अलग-अलग होना चाहिए। पश्चिमी सभ्यता में इस प्रकार का कोई प्रतिबंध नहीं है, अर्थात् अजनबी पुरुष व स्त्री एक जगह बैठकर भोजन कर सकते हैं।

भोजन के समय कोहनी को दोनों ओर इस प्रकार न फैलायें कि पास में बैठे हुए सज्जनों को किसी प्रकार की असुविधा हो।

भोजन करते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि यदि कुर्सी-मेज़ का प्रबंध हो तो कुर्सी पर बैठकर मेज़ के नीचे को पैर न फैलायें; सीधे बैठें और अपनी कुर्सी में पीछे को न लेटें।

भोजन परोसने वालों को चाहिए कि वह अत्यंत शान्ति व सफाई से सब सामान परोसें। खाद्य पदार्थ परोसने में कोई व्यवस्था न होना, परोसने वालों का परस्पर चिल्लाना अथवा तकाज़ा करना या ज़ोर से बातचीत करना अशिष्टता के सूचक हैं।

भोजन सबको गृहस्वामी के संकेत पर एकसाथ ही शुरू करना चाहिए; न कि यह कि जैसे आप बैठें अथवा भोजन आपके सामने आ जाय वैसे ही शुरू कर दिया जाय।

आतिथेय का प्रबंध इतना सुन्दर होना चाहिए कि अतिथियों को प्रत्येक वस्तु

यथासमय मिल जाय और उनको स्वयं मांगने की जरूरत न पड़े।

यदि किसी चीज की आवश्यकता हो तो वह इशारे से अथवा धीमी आवाज से मांग लेनी चाहिए; उसके लिए चिल्लाना अच्छा नहीं। ऐसी वस्तु न मांगनी चाहिए जो न बनी हो या जो न परोसी जा रही हो और न उसकी प्रशंसा ही करनी चाहिए।

मेहमानों को अपने सामने परोसे हुए खाद्य पदार्थों की तश्तरियां अथवा उनमें से किसी पदार्थ-विशेष का परस्पर देना व लेना अत्यन्त अशिष्ट माना जाता है। साथ ही, गृहस्वामी के लिए लाजमी है कि वह कदापि भोजन में दुभांत न करे।

जहां तक हो सके, थाल या पत्तल में जूठन न छोड़ें, अर्थात् उतना ही लें जितना खा सकें। गृहस्वामी को भी चाहिए कि इतनी सामग्री न परोसी जाए कि व्यर्थ बरबाद हो। आजकल, सभ्य समाज में प्रथा हो गयी है कि एक बार आरंभ में खाद्य-पदार्थ सबके सामने परोसने के अनन्तर मेहमानों के बीच में मेज आदि पर अन्य विशेष सामग्री बड़ी-बड़ी तश्तरी अथवा थालों में रख दी जाती है और प्रत्येक मेहमान इच्छानुसार उसे अपने लिए स्वयं ले लेता है और दूसरों के लिए तश्तरी आगे को बढ़ा देता है।

भोज के समय पानी इत्यादि के पात्र आप सावधानी से उठायें; ऐसा न हो कि वह गिरकर दूसरों के पत्तल व वस्त्र आदि को खराब करें। यदि भोजन के समय आपको खांसी अथवा छींक का वेग उठे तो उचित है कि भोजन के थाल और निकटस्थ सज्जनों से बचाकर मुंह के सामने रूमाल करके चतुराई के साथ खांसें अथवा छींकें। ऐसे अवसरों पर बार-बार नाक सुड़कना तो बड़ी ही अशिष्टता है। अगर किसी व्यक्ति को दमे या नजले का रोग हो तो बेहतर यही है कि वह निमंत्रण स्वीकार न करे।

भोजन करते समय सिर बिल्कुल झुकाये न रहें। लेकिन पंक्ति में किसी के मुंह की ओर भी बार-बार न देखें।

भोजन आदि के समय अगर गृहस्वामी की ओर से नेपकिन (घुटनों पर डालने के लिए वस्त्र-विशेष) मेज पर रक्खा गया हो तो चेहरे, नाक या कान आदि साफ करने के लिए तौलिये की तरह इसका इस्तेमाल न करें। उससे केवल आवश्यकता-वश धीमे से होंठ पोंछे जा सकते हैं।

सहभोज के समय वही व्यक्ति पसन्द किया जाता है जो अपने निकट बैठने वालों से छोटी-मोटी, मन प्रसन्न करनेवाली बातें करता है। अतः भोजन व जलपान के समय एक अनिवार्य नियम है कि आप अपने दोनों ओर बैठे हुए सज्जनों से कुछ बातचीत करें, चाहे वह आपके लिए अजनबी हों और चाहे उनसे आपकी कुछ अनबन भी हो; बात न कर सकें तो बात करने का बहाना ही करें।

भोजन के समय किसी सहभोजी के न्यूनाधिक भोजन करने की चर्चा या

संकेत न करें।

सहभोज के समय कभी ऐसे वाक्य न कहें कि अमुक पदार्थ आपके मेदे के अनुकूल नहीं पड़ता अथवा उसके खाने से आपकी हानि हो जाने की आशंका है।

आतिथेय के पूछने पर भी भोज्य पदार्थों की निंदा नहीं करनी चाहिए। यदि कोई आवश्यक बात कहनी ही हो तो इस ढंग से न कहें कि गृहस्वामी अथवा भोजन बनाने वाले का मन खिन्न हो या उनकी मूर्खता प्रकट हो।

किसी को अत्यधिक आग्रह करके इच्छा के विरुद्ध खाना मत खिलायें, क्योंकि अधिक खिला देना आदर-सत्कार करना नहीं है बल्कि अपने मित्र के साथ अन्याय करना है। अतएव रुचि के विरुद्ध खिलाने का हठ किया जाय तो शिष्टता के साथ इंकार कर देना चाहिए।

जब भोजन समाप्त कर चुकें तो नेपकिन को बिना तह किए अपने सामने मेज़ पर रख दें; इससे गृहस्वामी और उसके कर्मचारी समझ लेंगे कि अब आप कोई अन्य सेवा नहीं चाहते।

भोजन के अनंतर सबको एकसाथ ही पंक्ति में से उठना चाहिए। अगर किसी माननीय व्यक्ति के सम्मान में दावत दी गयी है तो किसी को भी उस व्यक्ति से पूर्व भोजन पर से या पक्ति में से उठना उचित नहीं। अगर आपकी भूख अथवा आपका आहार कम है तो पापड़ आदि हल्की चीज धीरे-धीरे खाते रहें जब तक सब लोग खाना समाप्त न कर लें। यदि और सब लोग खा चुके हों, तो आपको भी खाना बंद कर देना चाहिए, चाहे आप कुछ भूखे ही क्यों न रह गये हों।

भोजन के उपरांत निमंत्रित मित्रों को गृहस्वामी के यहां कुछ समय बैठना चाहिए और उस समय गृहस्वामी को पान, इलायची आदि से उनका आदर करना चाहिए।

यदि पान आदि भेंट किया जाय तो बड़ी नम्रता से लेकर, देने वाले का धन्यवाद करना चाहिए।

अगर भोजन या जल-पान किसी व्यक्ति-विशेष के सम्मान में दिया गया है, तो बेहतर यही है कि दूसरे मेहमान उस व्यक्ति के पूर्व प्रस्थान न करें।

चलते समय यह आवश्यक नहीं है कि आप अपने सब परिचितों से हाथ मिलायें; 'नमस्ते' और मुस्कराहट पर्याप्त है।

भोज-स्थल से यथासंभव आतिथेय के प्रबंध व भोजन की प्रशंसा करते हुए प्रस्थान करना चाहिए। अगर प्रशंसा न भी कर सकें तो चुप रहें। निंदा करना तो अत्यंत अनुचित है।

७

जन-समवाय

मनुष्य-समाज में राजनीतिक सभा, धार्मिक सत्संग व सामाजिक कृत्य और खेल-तमाशे आदि के अनेक ऐसे अवसर आते हैं जिस समय बहुत-से मनुष्य एक जगह इकट्ठे होते हैं। वैसे भी मन-बहलाव के लिए अनेक मित्र व परिचित व्यक्ति एक जगह बैठते हैं। जैसे समय बीतता जा रहा है, मनुष्य का सामाजिक जीवन जटिल होता जा रहा है और प्रत्येक मनुष्य सामाजिक प्रश्नों में दिनानुदिन अधिक दिलचस्पी लेता दिखाई देता है। 'संघ ही शक्ति है' (संघे शक्ति कलौ युगे)—इस उक्ति की सच्चाई आज प्रत्येक व्यक्ति किसी-न-किसी अंश में अनुभव करता है। यों तो एकदम वैयक्तिक जीवन को छोड़कर मनुष्य ने सदैव सब युगों में ही थोड़ा-बहुत सामूहिक जीवन व्यतीत किया है; परंतु वर्तमान काल में सामूहिक जीवन का क्षेत्र और महत्त्व बहुत बढ़ गया है। हमारा देश जैसे ही उन्नति की ओर अग्रसर होता जायगा और जैसे ही उसमें शिक्षा का विस्तार होगा, वैसे ही वैसे राष्ट्रीय जीवन अनेक धाराओं एवं उपधाराओं में प्रवाहित होने लगेगा। उस समय अनेक प्रकार की सभाएं बनेंगी; भिन्न-भिन्न उद्देश्य लेकर भिन्न-भिन्न संघ स्थापित होंगे और व्याख्यानों द्वारा शुभ विचारों का प्रचार होगा। ऐश्वर्य-प्राप्ति के साथ-साथ लोगों को अवकाश मिलेगा और वे मनोरंजन आदि के लिए मित्र-मंडलियों में बैठेंगे और खेल-तमाशों में भाग लेंगे। अतएव ऐसे अवसरों पर हम लोग परस्पर कैसे व्यवहार करें, इसके लिए संकेत रूप में नीचे कुछ नियम लिखे जाते हैं।

प्रबंधकर्ताओं का कर्तव्य

सभा के प्रबंधकों को जिस समय सभा करनी है उसी समय का विज्ञापन देना चाहिए और कार्यक्रम निश्चित समय पर आरंभ कर देना चाहिए।

सभा यथासंभव ऐसे स्थान पर नहीं करनी चाहिए जहां बाजार, पैठ या मेला

लगे। ऐसे रास्तों पर भी जहां गाड़ियों का आवागमन हो या जो पनघट या कुएं आदि के निकट हों, सभा नहीं करनी चाहिए। क्योंकि उक्त स्थानों के निकट सभा रखने से उसमें विघ्न होता है।

सभा खुले स्थान में करनी है तो मंच या स्टेज ऐसी दिशा में व इस प्रकार बनाया जाय कि हवा, यदि चलती हो तो, वक्ता की पीठ पर लगे, न कि सामने मुंह पर झोंके आयें। यदि सामने से हवा आयेगी तो वक्ता को बोलने में तथा श्रोतागण को सुनने में कठिनाई होगी।

साधारणतया मंच बड़ा न बनाया जाय; केवल इतना लम्बा-चौड़ा हो कि अध्यक्ष, वक्तागण व प्रबंधक लोग उस पर बैठ सकें। स्टेज बड़ा हो जायेगा तो उस पर बहुत आदमी बैठने की कोशिश करेंगे और सभा में कार्य-संचालन के लिए उचित वातावरण पैदा नहीं होगा।

सभा के लिए हरएक वस्तु सभा आरंभ होने से पहले तैयार रखनी चाहिए। प्रत्येक काम ऐसे आदमी को सौंपना चाहिए जो अपना उत्तरदायित्व समझता हो।

सभा के प्रबंधकों को यह देखना चाहिए कि सब लोगों के बैठने तथा हवा और प्रकाश का ठीक प्रबंध है या नहीं और यदि सभा में स्त्रियों को भी आना हो तो उनके लिए समुचित प्रबंध करना चाहिए।

सभा के प्रबंध के लिए आवश्यकतानुसार दस-पांच स्वयंसेवकों को पहले ही नियत कर देना चाहिए, जिनका काम जनता को सभा-स्थल का मार्ग दिखलाना, उनको बिठाना, शोर को बंद करना तथा अन्य देखभाल करना हो।

विशेष प्रकार से निमंत्रित तथा प्रतिष्ठित व्यक्तियों का स्वागत प्रबंधकों को स्वयं करना चाहिए। यदि अपने गांव या नगर के बाहर के किसी सज्जन को भाषण देने के लिए निमंत्रित किया है तो यथासंभव गांव के बाहर अथवा स्टेशन पर जाकर उनका स्वागत करना चाहिए।

प्रबंधकों को चाहिए कि सभा आरंभ होने से पहले विचाराधीन विषयों की सूची अथवा कार्यक्रम बना लें और उसी के अनुसार सभा के कार्य का संपादन करें और उन व्यक्तियों को बोलने तथा गाने की आज्ञा न दें जिनके विचारों तथा योग्यता को वह पहले से न जानते हों।

प्रबंधकों को किसी ऐसी सभा या कमेटी आदि की मीटिंग में, जहां कोई शोक-प्रस्ताव पेश करना हो, गाने-बजाने अथवा हंसी-दिल्लगी का प्रोग्राम नहीं रखना चाहिए और न शुभ अवसरों पर अमंगलसूचक गीत गाने की अनुमति ही देनी चाहिए।

सभा में आई हुई किसी देवी को यदि हार या माला पहनाने की आवश्यकता हो तो यह कार्य किसी स्त्री या लड़की से कराया जाए, अन्यथा हार या माला उक्त देवी के हाथ में दे दी जाय।

सभा में सम्मिलित होने के साधारण नियम

यदि हमें किसी सभा में जाना हो तो समय के पहले ही जाना चाहिए और सभा की समाप्ति के पश्चात् आना चाहिए। वहां व्याख्यान को ध्यान से सुनना और विषय पर विचार करना चाहिए।

किसी उत्सव, सभा या समाज आदि में पहुंचने पर वहां के उपस्थित सभ्य या मित्रों को अगर प्रणाम आदि करना हो तो बोलना नहीं चाहिए और बोलें तो बहुत धीमे से; केवल हाथ उठाना या हाथ जोड़ना ही पर्याप्त है।

व्याख्यान, कथा आदि में जो देर से आये उसको पीछे, अर्थात् जहां तक कि बैठने का दायरा उसके आने तक पहुंच चुका है, वहां बैठना चाहिए. एकत्र जन-समूह को पार कर आगे बैठने का प्रयत्न नहीं करना चाहिए। इससे एक तो पहले आने और बैठने वालों को कष्ट होता है और दूसरे ऐसा करना अहम्मन्यता का सूचक भी है।

यदि भाषण या कथा आदि के स्थान में कुर्सियों का प्रबंध न हो और बैठने के लिए कालीन व जाज़म अथवा अन्य प्रकार का सुंदर या स्वच्छ फर्श बिछा हुआ हो तो उस पर जूते निकालकर ही जाना और बैठना चाहिए। ऐसी दशा में प्रबंधकों का कर्तव्य है कि जूतों की रक्षा का कोई समुचित प्रबंध करें।

सभा में किसी को उठाकर उसकी जगह नहीं बैठना चाहिए क्योंकि इससे अपना स्वार्थ प्रकट होता है और दूसरे के दिल में द्वेष उत्पन्न होता है।

अगर कोई व्यक्ति मजलिस में एक जगह बैठकर किसी आवश्यकता से स्वयं उठ जाय तो वापस आने पर वही उस जगह का अधिकारी है। दूसरे को उस जगह नहीं बैठना चाहिए क्योंकि वह उस पर पहले अधिकार कर चुका है और उसका यह अधिकार अस्थायी तौर से उठ जाने से चला नहीं जाता।

सार्वजनिक सभा आदि में आप जिस मित्र के साथ जाएं, अंत तक उसके साथ रहें और अगर बीच में कहीं जाएं, तो उससे कहकर जाए। किसी अन्य व्यक्ति के साथ, जब तक कि वह आपको न बुलाये, न बैठें तथा न चलें-फिरें। संभव है, उसकी पत्नी व बाल-बच्चे उसके साथ हों अथवा वह अकेला रहना पसंद करता हो या आपके जाने से अन्य मित्रों के साथ उसके संसर्ग में व्यवधान पड़ता हो!

आप जिस किसी सभा आदि में जायें, उसके नियमों का पालन करना आवश्यक है। यदि भूल से आपके द्वारा किसी नियम का उल्लंघन हो जाय तो उसके लिए क्षमा मांगकर अपनी गलती तत्काल ठीक कर लेनी चाहिए।

सभा के प्रबंधक यदि उठने, बैठने, हटने या अन्य किसी प्रकार की प्रार्थना करें तो बिना किसी विलंब के उनकी आज्ञा का पालन करना चाहिए। यदि आज्ञा-

पालन करना ठीक न समझते हों तो बिना वाद-विवाद या झगड़ा किये उस स्थान से चले आना चाहिए।

किसी सभा या तमाशे आदि में जहां टिकट लगा हो, बिना टिकट या निमंत्रण के नहीं जाना चाहिए और जिस दरजे का टिकट लिया हो, उसी में बैठना चाहिए।

सभा-सोसाइटी, खेल-तमाशे आदि में सदा अपने योग्य स्थान पर ही इस तरह से बैठना और खड़ा होना चाहिए कि किसी दूसरे को आपके द्वारा असुविधा तथा कष्ट न हो और जहां से उठा या हटा दिये जाने की संभावना न हो। किसी अन्य उच्च स्थान व आसन पर अथवा जो जगह प्रतिष्ठित व्यक्तियों के बैठने के लिए सुरक्षित हो, वहां बैठने की स्वयं कोशिश नहीं करनी चाहिए। मंच पर केवल वही बैठें जो अध्यक्ष अथवा प्रबंधक हों तथा जिन्हें व्याख्यान आदि देना अथवा खेल-तमाशा दिखाना हो।

अगर किसी वृद्ध पुरुष या महिला को जगह की आवश्यकता हो तो उसके लिए अपना स्थान खाली कर देना चाहिए।

व्याख्यानदाता की ओर तथा यज्ञ होते समय यज्ञ-स्थल की ओर पीठ करके नहीं बैठना चाहिए। न ही सभा में टांग फैलाकर या व्याख्यानदाता की ओर पैर निकालकर बैठना चाहिए। लेटना तो बिल्कुल ही निंदनीय है।

कथा, व्याख्यान व संस्कार आदि के समय कोई समाचारपत्र या पुस्तक पढ़ने लगना एक प्रकार से कथावाचक या व्याख्यानदाता का अनादर करना है। इससे दूसरों का ध्यान भी आपकी ओर आकर्षित होगा। अतएव ऐसा न करना चाहिए। सभाओं में बैठकर तंबाकू पीना भी उचित नहीं है।

कथा, व्याख्यान आदि में हंसना व बातचीत या अन्य किसी प्रकार का ऐसा काम नहीं करना चाहिए जिससे दूसरों के ध्यान में विघ्न पड़े। दूसरों के लिए संयम से काम लेने में ही शिष्टता है।

यदि सभा में आपको कोई वस्तु किसी दूर बैठे हुए मित्र के पास पहुंचानी हो तो उसको फेंकना नहीं चाहिए, किंतु उसको क्रम तथा व्यवस्था से आगे पहुंचाने के लिए अपने पास बैठे हुए मनुष्य को प्रार्थना करके दे देनी चाहिए। यदि कोई बात कहनी या पहुंचानी हो तो किसी कागज की चिट पर लिखकर पहुंचानी चाहिए, न कि बोलकर या चिल्लाकर।

स्त्रियों को चाहिए कि सभा में यथासंभव बहुत छोटे बच्चों को लेकर न जाएं। अगर बच्चा लाएं ही और वह रोने लगे तो उसकी माता या बड़े को चाहिए कि सभा-स्थल से अलग ले जाकर स्वयं बच्चे को शांत कर दे अथवा स्वयंसेवक आदि से शांत करा दे।

अगर सभा में किसी प्रकार का शोर या अशांति होती हो या अन्य किसी

प्रकार का हुल्लड़ हो जाए तो अन्य लोगों को चाहिए कि वह स्वयं शोर न करने लगें; अशांति या हुल्लड़ को दूर करने का काम प्रबंधकों के ऊपर छोड़ना चाहिए। हर आदमी प्रबंध करने लगेगा तो अशांति और बढ़ जायेगी और सभा का काम सुचारु रूप से न चल सकेगा।

बहुत-से लोग कथा, व्याख्यान आदि में पहुंचकर ऊंघने या सोने लग जाते हैं; यह अनुचित है। यदि आप सभा-स्थल में नींद न रोक सकें तो उठकर अपने घर चल देना चाहिए।

चाहे कथा या व्याख्यान पसंद न हो तो भी यदि उठने से गड़बड़ होने की संभावना हो तो अंत तक बैठे रहना चाहिए। यदि उठना ही हो तो जो प्रसंग चल रहा हो उसको समाप्त हो लेने देना चाहिए और जब जाना हो तो आदमियों के बीच में से होकर, उनको रौंदते हुए न जाना चाहिए, परंतु दबे पांव और झुककर श्रोतागण के वस्त्र व हाथ आदि बचाकर क्षमा मांगते हुए निकल जाना चाहिए।

यदि वक्ता की कोई बात पसंद न हो या उससे मतभेद हो तो भी उसकी बात ध्यानपूर्वक सुननी चाहिए। विरोधियों की सभा में भी विघ्न नहीं डालना चाहिए। यदि कोई संशय हो तो सभा के बाद वक्ता से अपनी शंका मिटा लेनी चाहिए अथवा सभापति की आज्ञा से सभा के समाप्त होने से पहले वक्ता से विनयपूर्वक पूछ लेना चाहिए। यदि किसी बात का विरोध ही करना हो तो किसी दूसरे स्थान या समय पर अलग सभा करके अपने विचार प्रकट करने चाहिए।

थियेटर, सिनेमा आदि के दौरान में अपनी सीट से यथासंभव बहुत कम उठना चाहिए। इससे दूसरे दर्शकों को कष्ट पहुंचता है और अगर स्टेज का परदा उठा हुआ हो तो पीछे बैठने वालों को तमाशा देखने में भी बाधा होती है। यदि आप उठें तो अपने सामने वाली पंक्ति की सीटों से सटकर निकलना चाहिए, ताकि पीछे बैठने वालों को कम-से-कम असुविधा हो। अगर पीछे, अर्थात् आपकी पंक्ति में, बैठनेवाला आपके आसानी से निकल जाने के विचार से खड़ा हो जाय तो उसको धन्यवाद देना अथवा जो उसे कष्ट पहुंचा है उसके लिए क्षमा मांगनी चाहिए।

अपने आगे अथवा पीछे बैठे हुए दर्शकों के सिर के ऊपर होकर कोई चीज न लेनी चाहिए और न देनी चाहिए; बीच में से लें या दें और इसके लिए उनसे क्षमा मांगें।

सभा व खेल आदि के दौरान या समाप्ति पर भीड़ में धक्का-मुक्की करना सभ्य आदमियों का काम नहीं है। भीड़ में से शांति तथा सरलता से निकलना चाहिए; अच्छा तो यह है कि जब तक भीड़ कम न हो जाय तब तक इंतजार करें। अगर दैवयोग से आपकी किसी आदमी से टक्कर हो जाय अथवा अनजाने में

उसे आपके कारण कुछ कष्ट पहुंच जाये तो उससे शीघ्र ही क्षमायाचना करें।

वक्ता का कर्तव्य

यदि किसी सभा में आप बोलना चाहें तो बिना सभापति की अनुमति के न बोलें और जब बोलना आरंभ करें तब मेज़ अर्थात् सभापति के पास आकर पहले सभापति, तत्पश्चात् उपस्थित देवियों और फिर अन्य श्रोताओं को संबोधन करना चाहिए।

बोलते समय आपको अपनी गर्दन सीधी रखनी चाहिए और आप हिंदुस्तानी वेश में हों तो व्याख्यान के समय टोपी या पगड़ी नहीं उतारनी चाहिए।

वक्ता को चाहिए कि लंबी भूमिका न बांधे अथवा 'मेरा कुछ बोलने का विचार नहीं था' या 'मेरी तबियत अच्छी नहीं है परंतु प्रधानजी की आज्ञा शिरोधार्य है' आदि वाक्य न कहें; सीधे अपने विषय की व्याख्या आरंभ कर दें।

वक्ता को विषय पर यथासंभव घर से तैयार होकर आना चाहिए; जो कुछ कहना हो वह विषय के अंदर हो। जनता के समय को यों ही मामूली अथवा अप्रासंगिक बातें सुनाकर नष्ट नहीं करना चाहिए।

वक्ता को सभा-सोसाइटियों में अपना मत बहुत सोच-समझकर ही प्रकट करना चाहिए। यदि किसी घटना का उल्लेख करना हो तो पहले यह निश्चित कर लेना चाहिए कि वह सच्ची है। झूठी, गलत अथवा संदेहास्पद बात कहना उचित नहीं है। सदैव सत्य, युक्तियुक्त और न्यायपूर्ण बात ही कहनी चाहिए और उसका ही समर्थन करना चाहिए, चाहे उसका पोषक कोई भी व्यक्ति हो अथवा कोई बिल्कुल ही न हो।

व्याख्यान देते समय हाथों को बेढंगे प्रकार से उठाना या हिलाना, कमर पर हाथ रखकर खड़ा होना, कदम आगे-पीछे रखना, शरीर खुजलाना, जोश में आकर आगे बढ़ जाना, नथुने फुलाना, आंखें व भौंहें चलाना और होंठ दबाना वगैरह ऐसी असभ्य क्रियायें हैं कि जो किसी शिष्ट तथा बुद्धिमान वक्ता में नहीं होनी चाहिए।

ऊंची कोटि का वक्ता वही हैं जो श्रोतागण के ध्यान को बराबर अपनी ओर आकर्षित रख सके और व्याख्यान समाप्त करने का समय पहचाने। वक्ता को व्याख्यान इतना न बढ़ा देना चाहिए कि वह श्रोताओं को अरुचिकर हो जाए।

वक्ता को इतने ज़ोर से बोलना चाहिए कि सबसे पीछे बैठे हुए आदमियों को भी उसका व्याख्यान सुनाई दे सके और ऐसी भाषा का प्रयोग करना चाहिए जिसको अधिकांश श्रोता समझ सकें। उसे बोलने में शीघ्रता न करनी चाहिए और शब्दों का उच्चारण भी स्पष्टता से करना चाहिए।

व्याख्यान देते समय किसी व्यक्ति, वस्तु अथवा दिशा-विशेष की ओर ही नहीं, प्रत्युत यथासंभव उस स्थान में उपस्थित सब लोगों की ओर देखते रहना चाहिए।

यों तो क्रोध कभी भी नहीं करना चाहिए, परंतु सभा में इस बात की ओर भी विशेष ध्यान रखने की आवश्यकता है कि व्याख्यान अथवा शास्त्रार्थ आदि के अवसर पर क्रोध या गर्मागर्मी न हो। सभा में दूसरे की बात संतोष से सुननी चाहिए और शांति से उसका उत्तर देना चाहिए।

अपने भाषण में किसी द्वेष फैलाने वाली बात का उल्लेख नहीं करना चाहिए। व्यक्तिगत या अनुचित आक्षेप करना अथवा चुभनेवाली बात कहना ठीक नहीं है। दृष्टांत भी ऐसे न देने चाहिए जिनसे श्रोतागण के हृदय को आघात पहुंचे। सब धर्म-प्रवर्त्तकों और महापुरुषों का नाम आदर से लेना चाहिए। यदि किसी बात का खंडन करना हो या राजनीतिक अथवा धार्मिक मतभेद प्रकट करना हो तो बड़ी शिष्टता से युक्तिपूर्वक करना चाहिए।

लोगों को विदाई देने के लिए जो सभाएं की जाती हैं, उनमें केवल गुण-गान ही किया जाता है। कोई-कोई स्पष्ट वक्ता ऐसे अवसर पर भी दोषों का कुछ संकेत कर देते हैं; पर ऐसा संकेत केवल इसी उद्देश्य से करना चाहिए कि उससे प्रशंसित सज्जन का आगे कुछ लाभ हो और कहने का ढंग ऐसा हो कि उसे बुरा न लगे।

यदि सभा आदि में किसी बुराई को छोड़ने के संबंध में कोई बात कहनी हो तो उन आदमियों का नाम लेना उचित नहीं है जिनमें वह बुराई है; केवल सिद्धांत की बात कहिए।

सभा-सोसाइटी में जहां तक हो सके, ऐसे दृष्टांत न देने चाहिए जो अपनी प्रशंसा या बड़ाई के सूचक हों। 'मैं यह चाहता हूं', 'मेरी राय यह है' आदि वाक्य भी प्रयोग न करने चाहिए और न कोई अन्य ऐसा वाक्य कहना और काम या संकेत करना चाहिए जिससे अहंकार प्रकट होता हो।

सभा की व्यवस्था बनाए रखने के लिए वक्ता को सभापति या मंत्री द्वारा निर्दिष्ट समय आदि के संबंध में कभी उल्लंघन नहीं करना चाहिए। यदि भाषण समाप्त होने पर वक्ता से कोई प्रश्न पूछा जाए तो बड़ी शांति से उसका उत्तर देना चाहिए। अगर आप सही उत्तर न दे सकें तो मान लेना चाहिए और गोल-मोल बात कहकर समय टालने का प्रयत्न नहीं करना चाहिए।

सभ्य समाज अथवा मित्र-मंडली में उठना-बैठना

अगर कुछ सभ्य लोग घेरा बांधकर बैठे हुए हों तो किसी को उस घेरे के बीच में नहीं बैठना चाहिए, क्योंकि इस हालत में कुछ लोगों की ओर आपका मुंह

होगा और कुछ की ओर पीठ, जो एक प्रकार की असभ्यता है। अगर किसी की ओर पीठ करने पर विवश होना ही पड़े तो इसके लिए उससे क्षमा मांगनी चाहिए। ऐसे स्थान में लेटना अथवा पैर फैलाकर बैठना भी अनुचित है।

अगर कुछ व्यक्ति साथ बैठे हों तो उनके बीच में से होकर नहीं निकलना चाहिए पीछे से या अलग बचकर निकलना चाहिए, चाहे आपको इसमें कुछ अधिक फेर ही क्यों न पड़े।

सभ्य समाज में मोढ़े या कुर्सी पर पैर ऊपर रखकर अथवा कुर्सी के हत्थे, डेस्क या मेज़ पर बैठना और मेज़ पर पैर फैलाना अशिष्टता माना जाता है।

सभ्य समाज में अर्थात् जहां दस आदमी बैठें हो, रेल आदि में अथवा ऐसे स्थान में जहां स्त्रियां उपस्थित हों, धोती घुटनों से ऊपर नहीं चढ़ानी चाहिए, न ही उकड़ू बैठना उचित है। यदि आप उकड़ू बैठें तो इस बात का ध्यान रखें कि आपकी जांघ नंगी अथवा अन्य प्रकार से बेपर्दगी व अशिष्टता न हो जाए।

सभ्य समाज में बैठकर जम्हाई, अंगड़ाई या डकार लेना, ज़ोर से अर्थात् आवाज़ के साथ खखारना या गला साफ करना; सुई या तिनके से दांत कुरेदना; मुंह में कागज़ या कपड़ा चबाते रहना, नाक और मुंह में उंगली डालना; पैर, कंधे या शरीर के अन्य अंगों को बिना कारण हिलाना या हरकत देना; दोनों हाथों से सिर खुजलाना; उंगलियों में तालियों का गुच्छा नचाना; धोती या कुरता हटाकर अथवा उसके अंदर हाथ डालकर बदन खुजलाना; पतलून अथवा कोट की आस्तीन के अंदर हाथ डालकर कमीज़ की कफें ठीक करना या अन्य प्रकार से पोशाक ठीक करना इत्यादि बुरा समझा जाता है। जम्हाई और अंगड़ाई शरीर के भारीपन व आलस्य के सूचक हैं और डकार ज्यादा पेट भर लेने की सूचक है। मुंह और शरीर की ऐसी हालत हो जाती है जो दूसरों को बुरी मालूम होती है। यदि जम्हाई, डकार, खांसी या छींक आये तो मुंह फेरकर उस पर हाथ या रूमाल रख लेना चाहिए और डकार व जम्हाई के उपरांत किसी प्रकार का अस्वाभाविक शब्द नहीं करना चाहिए। यदि नाक साफ करनी हो तो रूमाल इस्तेमाल करना चाहिए, न कि उंगली। यदि खांसी उग्र रूप धारण करे अथवा छींकें लगातार देर तक आयें, तो वहां से उठ जाना चाहिए और खांसी व छींकों के शांत होने पर ही मित्र-मंडली में आकर बैठना चाहिए।

अधोवायु की बाधा उपस्थित हो तो आपको चाहिए कि यथासंभव अपने साथियों से अलग हटकर वायु छोड़ें। अगर वायु खारिज होते समय किसी प्रकार का शब्द हो जाये तो उस पर अन्य लोगों का हंसना अत्यंत अनुचित है।

कोई ऐसी चीज खाकर समाज में न बैठना चाहिए जिसके कारण मुंह से बदबू आती हो। अगर रोग के कारण दुर्गन्ध आती हो तो शीघ्र से शीघ्र इलाज कराइये।

बीड़ी व सिगरेट आदि पीने वाले को उचित है कि धुआं उधर को न छोड़ें जिधर न पीने वाले बैठे हों।

८

वेशभूषा

वस्त्रों की आवश्यकता के दो ही कारण हैं; एक वर्षा, सर्दी और गर्मी से रक्षा और दूसरा, लज्जा-निवारण। जिन वस्त्रों से ये दो प्रयोजन सिद्ध हो जायें उतने ही और उसी प्रकार वस्त्र पहनना उचित है। परंतु गत लगभग एक शताब्दी में पाश्चात्य सभ्यता के संपर्क से पोशाक ने हमारे शिक्षित वर्ग में वह स्थान प्राप्त कर लिया है, जो उसको भारतीय सभ्यता के अंतर्गत कभी प्राप्त नहीं था। पोशाक एक आवश्यकता न रहकर बड़प्पन की पहचान और शोभा की सामग्री बन गयी है। हम दूसरों को कैसें प्रतीत होते हैं, दूसरों पर हमारी सज-धज की क्या छाप पड़ती है, पोशाक-संबंधी, यूरोपीय सभ्यता के इस सिद्धांत ने पढ़े-लिखे समुदाय के मस्तिष्क को जकड़ लिया हैं और धीरे-धीरे सारी जनता के मन में यह घर करता जा रहा था। परंतु हर्ष की बात है कि अब कुछ दिनों से समाज-सुधारक व राष्ट्रवादी नेताओं के उदाहरणों तथा प्रयत्नों से हमारा ध्यान फिर सादगी और सरलता की ओर आकर्षित हुआ है।

समाज को विलासी और असमान बनाने वाले उपसाधनों में पोशाक भी एक है। अपने घर में मनुष्य ने चाहे कुछ खाया हो, पर उसकी प्रत्यक्ष जानकारी समाज को नहीं होती; किंतु पोशाक बाह्य आडंबर है। यह दिखलायी पड़ती है। इसलिए इससे समाज में विलासिता और असमानताजन्य ईर्ष्या-द्वेष के उत्पन्न हो जाने का भय रहता है। अतः समाज के प्रमुख और समझदार व्यक्तियों को शरीर की अधिक सजावट, वेशभूषा की भिन्न-भिन्न प्रणालियों, फैशन तथा फैशन के साधनों, आभूषण आदि से दूर रहना चाहिए।

सादगी के पक्ष में एक दूसरी युक्ति भी है। समाज सें ग्राहकता गुणों की होती है, न कि बाहरी सज-धज की। कपड़ों से अथवा बाहरी फैशन से कभी सच्ची प्रतिष्ठा नहीं होती। यदि आपके अंदर कुछ गुण हैं तो, चाहे आप कितने ही कम कीमती और सादा कपड़े क्यों न पहने हों, लोग आपके सामने मस्तक झुकायेंगे।

यदि आपमें गुण नहीं हैं तो चाहे आप ऊपर से नीचे तक जरी में भी क्यों न अपने को लपेट लें, आपको कोई पूछेगा भी नहीं।

जहां तक बन पड़े, आपके वस्त्र स्वदेशी हों और वेश भी स्वदेशी ढंग का ही हो।

वस्त्र पहनने में सबसे पहले स्वच्छता का विचार करना चाहिए और उसके बाद इस बात का कि शरीर की रक्षा और सुख के लिए कितने कपड़े आवश्यक हैं। तीसरा विचार यह करना चाहिए कि शरीर के परिमाप के अनुसार हमारे कपड़े ठीक तो हैं। शोभा का विचार अगर किया जाये तो सबके अंत में करना चाहिए।

यह अत्यंत आवश्यक है कि वस्त्र चाहे कितने ही अच्छे क्यों न हों, दूसरों को यह न मालूम होने पाये कि पहनने वाले को अपने वस्त्रों पर घमंड है। कपड़े यथासंभव हल्के व ऐसे होने चाहिए कि हवा उनके अंदर आ-जा सके। परंतु जहां अधिक कसा हुआ या तंग कपड़ा पहनना स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है, वहां ढीले-ढाले कपड़े भी देखने में बुरे मालूम होते हैं। इसलिए, चाहे कुछ अधिक खर्चा क्यों न हो जाए, कपड़े सदैव निपुण दर्जी से ही सिलवाने चाहिए।

स्नान आदि से त्वचा साफ रखने की जितनी आवश्यकता है, उतनी ही नहीं बल्कि उससे भी अधिक आवश्यकता वस्त्र साफ रखने की है। बहुमूल्य वस्त्र भी स्वच्छता के अभाव में शरीर की शोभा नहीं बढ़ा सकते। स्वास्थ्य की दृष्टि से ही नहीं किन्तु शिष्टाचार की दृष्टि से भी स्वच्छ वस्त्र धारण करना हमारा कर्तव्य है। मैले कपड़े देखने में तो बुरे मालूम होते ही हैं, प्रत्युत उनके पहनने से शरीर में बदबू आने लगती है जिससे दूसरों को ग्लानि होती है। अतएव वस्त्र साफ, धुले हुए होने चाहिए और यथासंभव कभी मैला कपड़ा पहनना, ओढ़ना या बिछाना नहीं चाहिए।

लेकिन जहां कपड़ों का जल्दी-जल्दी बदलना आवश्यक है, वहां यदि आप धनवान हैं तो फैशन के वशीभूत होकर दिन में चार-चार बार कपड़े बदलने में समय नष्ट अथवा धन का अपव्यय करना भी ठीक नहीं है।

कोरे वस्त्र पहनना शिष्टाचार व स्वास्थ्य दोनों के प्रतिकूल है।

अगर कपड़े पर स्याही, पान या और किसी चीज का धब्बा लग जाय तो जब तक धब्बा छुटा न लिया जाये, उस कपड़े को पहनना या प्रयोग नहीं करना चाहिए।

चमक-दमक वाले कपड़े औरतों व बच्चों के लिए ही मुनासिब हैं, न कि मर्दों के लिए। यद्यपि अत्यधिक तड़क-भड़क के वस्त्र तो आजकल विवेकशील औरतें भी पसंद नहीं करतीं।

बहुत ही बारीक कपड़े, जिनमें शरीर दिखाई दे अथवा बेपर्दगी, पहनकर बाहर निकलना निर्लज्जता का सूचक है।

जो स्त्रियां अधिक जेवर पहनती हैं, वे असभ्य मानी जाती है। स्त्री का पुरुष की ही भांति वास्तविक आभूषण उसका स्वास्थ्य, उत्तम स्वभाव एवं उत्तम चरित्र है। अगर चूड़ियां पहनी जाएं तो दो-दो या चार-चार पर्याप्त हैं।

स्नान व व्यायाम के समय को छोड़कर मनुष्य को कभी नंगे शरीर नहीं रहना चाहिए और अपने मकान के बाहरी हिस्से अथवा बरामदे आदि में यथा-संभव नंगे शरीर नहीं आना या बैठना चाहिए। न जाने कब कोई महिला या अपरिचित व्यक्ति आपसे भेंट करने के लिए आ जाये!

विचित्र प्रकार से अथवा फैशन के विरुद्ध कपड़े न पहनने चाहिए अर्थात् पहनावे में असंगति न होनी चाहिए। उदाहरणार्थ, कोट-पतलून पर अलवान ओढ़ना और धोती पर खुले गले का कोट पहनना ठीक नहीं है। इसी प्रकार, ऋतु के अनुकूल ही कपड़े पहनना अच्छा मालूम होता है; गर्मी के कपड़े सर्दी में और सर्दी के कपड़े गर्मी में पहनना उचित नहीं। पुरुषों के लिए स्त्रियों की-सी पोशाक और स्त्रियों के लिए पुरुषों की-सी पोशाक पहनना शोभा नहीं देता हैं। तात्पर्य यह है कि ऐसा लिबास जिसकी और अनायास ही लोगों की उंगलियां उठें, पहनना ठीक नहीं है।

शिष्ट लोग टेढ़ी टोपी अथवा आधा सिर ढकती हुई टोपी पहनना उचित नहीं समझते।

साफा इस प्रकार बांधना चाहिए और टोपी इस प्रकार पहननी चाहिए कि चोटी बाहर नज़र न पड़े। टोपी पहनते समय यह ध्यान रखें कि उसका जोड़ पीछे की ओर रहे।

यदि आप घर से कपड़े पहनकर या शौचालय से बाहर निकलें तो देख लें कि बटन इत्यादि ठीक लगे हुए हैं और आपका नाड़ा अथवा कमरबंद कुरते से नीचे तो नहीं लटक रहा है। रास्ते में बटन लगाते और कमरबंद बांधते जाना उचित नहीं है। कमरबंद को नीचे ऐसा लटकते रखना कि दिखाई पड़े, अशिष्टता का सूचक है।

देखने के लिए अथवा अन्य कारण से किसी की टोपी या पगड़ी उसके सिर से अपने हाथों से नहीं उतारनी चाहिए बल्कि उससे नम्रतापूर्वक मांग लेनी चाहिए।

कोट, कुरते या कमीज़ आदि का कोई बटन गिर या टूट गया हो तो यथा-संभव उसकी जगह बिना दूसरा बटन टांके उस कपड़े को न पहनिए। बिना बटन का कपड़ा पहनना आलस्य का सूचक है। बटन की जगह बटन ही लगाना चाहिए, धागे से बांधना अथवा सेफ्टी पिन का प्रयोग करना ठीक नहीं है। जो नियम बटन के लिए है, वही जूते के तस्मे के लिए भी है। इसी प्रकार, फटा हुआ कपड़ा पहना जाये तो उसे सीकर ही पहनना उचित है।

जिन जूतों पर पालिश अर्थात् रोगन लगता हो उन पर बराबर पहनने से पूर्व रोगन लगाते रहना चाहिए।

६

पथ और यात्रा

एक स्थान से दूसरे स्थान तक जाने के लिए मनुष्य को मार्ग चलना पड़ता है अथवा किसी सवारी पर यात्रा करनी पड़ती है। आपको चाहिए कि मार्ग में इस प्रकार चलें कि दूसरे को आपके चलने से असुविधा न हो और आपको भी दूसरे यात्रियों से कष्ट न पहुंचे। सार्वजनिक वाहनों को यथायोग्य और यथाधिकार ही इस्तेमाल किया जाय। आजकल जब कि यातायात के शीघ्र से शीघ्रगामी साधन प्रचलित होते जा रहे हैं, इन नियमों पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है।

पैदल

जब तक आवश्यक न हो, किसी घर से निकलते या रास्ता चलते व्यक्ति से यह न पूछना चाहिए कि वह कहां जाता है; यदि वह अत्यंत सुहृद् हो तो दूसरी बात है।

पक्की सड़क पर पैदल चलते समय सदैव बायीं ओर रहना चाहिए। सड़क के बीच में, अथवा उसके दाहिने हिस्से पर चलना मुनासिब नहीं और सवारी निकट आने से पहले ही मार्ग छोड़ देना चाहिए। सवारी, विशेषकर तेज सवारी, बहुत निकट आ जाये तब तक इन्तजार करना बड़ी भूल है।

सड़क के बगल की पगडंडी पर चलना चाहें तो दायीं या बायीं पगडंडी पर चल सकते हैं। सड़क के एक तरफ से दूसरी तरफ जायें तो देख लेना चाहिए कि आगे या पीछे से कोई गाड़ी तो नहीं आ रही है।

कभी किसी खेत में से, विशेषकर ऐसे खेत में से जिसमें जिंस बो दी गयी हो, न निकलें; सदैव मेंड़ या पगडंडी पर ही चलें। अगर खेत में स्थायी रूप में बाट पड़ गयी हो तो उस पर चल सकते हैं। यही नियम पशुओं और गाड़ियों के लिये भी है।

किसी ऐसे स्थान में जिसके चारों ओर दीवार, बागड़, तारों की 'फेंसिंग'

(Fencing) या अन्य किसी प्रकार की आड़ हो तो रास्ता छोड़कर किसी अन्य प्रकार से न जाना चाहिए।

गर्दन नीची करके चलना ठीक नहीं; गर्दन सीधी रखना दीर्घायु देता है। पीठ पीछे, कमर पर अपना हाथ रखकर या दोनों हाथ पकड़कर चलना भी अच्छा नहीं है। सिर से पैर तक सारे शरीर को सीधा रखिए और दस हाथ आगे चलिए जिससे घोड़ा-गाड़ी आदि आपके सिर पर न आ जाये और सांप आदि जंतुओं पर आपका पैर न पड़ जाये। अकड़कर चलना, ज़ोर से कदम रखना, हाथों को बेरब्त झुलाना, अपनी बांहों तथा वेशभूषा को देखते हुए चलना, बिल्कुल धीमे-धीमे चलना और इतना तेज़ चलना मानो कि भगदड़ पड़ी हो या बिना अत्यंत विशेष कारण के लगे बाज़ार या आम रास्ते में दौड़ना, बुरी आदतें हैं। पैर घसीटकर चलना, जूतियां अथवा स्लीपर घसीटना और धूल उड़ाते चलना ठीक नहीं है। पैर उठाकर ही रखने चाहिए।

रास्ते में कंकड़-पत्थर, मिट्टी, लकड़ी या दूसरी या किसी वस्तु को ठुकराते हुए चलना भी अच्छा नहीं है।

रास्ता चलते जोर से बातें करना, कहकहा लगाना, जब तक बहुत आवश्यक न हो किसी को पुकारना, किसी जुलूस के अवसर को छोड़कर गाते हुए चलना, अकारण ही सीटी या बाजा बजाते फिरना, पीछे फिर-फिर कर देखना, बार-बार दायें-देखना, किसी की ओर घूरना अथवा बाज़ार में हर छोटी-छोटी बात को ब्योरेवार करते हुए चलना, सभ्यता के विरुद्ध है।

मेले-ठेले व बाज़ार आदि में चलते-फिरते और तांगे, मोटर या रेल आदि में यात्रा करते हुए, विशेषकर जबकि साथ में अजनबी पुरुष बैठे हुए हों, स्त्रियों का गीत गाना अच्छा नहीं है।

पराये घरों में झांकते हुए और ऊपर कोठी की तरफ देखते हुए चलना शरीफों का काम नहीं है। सभ्य लोग गलियों या बाज़ारों में पान खाते हुए फिरना भी अच्छा नहीं समझते।

सड़क पर समाचारपत्र या पुस्तक आदि पढ़ते हुए अथवा अन्य प्रकार से असावधान होकर चलना उचित नहीं है।

स्त्री, वृद्ध, रोगी, अंधे, लंगड़े, बोझे वाले और सवारी में बैठे हुए के वास्ते पैदल चलने वाले को रास्ता छोड़ देना चाहिए। ऐसी तंग पगडंडी पर जिसके दोनों तरफ खेत हों या झाड़ व कंकड़ आदि हों और दूसरी ओर से भी आदमी आ रहे हों जो नंगे पैर हों, उनके वास्ते रास्ता छोड़ देना चाहिए। भीड़-भीड़ में किसी को धक्का देकर चलना अच्छा नहीं है। यदि अनजान में किसी को धक्का लग जाय तो उससे तुरंत क्षमा मांग लेनी चाहिए।

सड़कों पर चलते हुए, विशेषतया बाज़ारों में, कभी गंदगी न फैलानी चाहिए;

अर्थात् केले, नारंगी आदि फलों के छिलके, दोने, कांच के टुकड़े, टूटी सुइयां, निब, कागज़ के टुकड़े तथा इस्तेमाल की हुई दातुन आदि सड़क पर न फेंकनी चाहिए। ऐसा कूड़ा-कर्कट नियुक्त स्थान या ऐसे स्थानों पर ही डालना ठीक है जिससे गंदगी न फैले। दूसरे देशों में तो इस नियम का पालन न करने वाले को राज्य की ओर से दंड दिया जाता है। यदि शीशे या लोहे का टुकड़ा, कांटा, ईंट, पत्थर, आग या ऐसी और कोई हानिप्रद चीज़ रास्ते में पड़ी देखें तो उसको या तो स्वयं हटा दें अथवा किसी से हटवा दें।

अगर अंधेरी रात में कहीं बाहर पैदल जाना हो तो लालटेन या बैटरी ले लेनी चाहिए।

यदि आप टलहने या पैदल सफर करने के लिए अथवा रात में कहीं जाने के लिए घर से निकलें तो हाथ में लकड़ी ले लेनी चाहिए। लकड़ी शक्ति, उत्साह और धैर्य को बढ़ाती है; खड्डे आदि में गिरने, ठोकर खाने और लड़खड़ाने से रोकती है।

हाथ में छड़ी आदि रखने की आदत तो अच्छी है परंतु रास्ते में उसको घुमाते हुए चलना अच्छा नहीं। छड़ी या छाता इस तरह से बगल में न पकड़ना चाहिए कि दूसरों के लग जाए, उसको लटकाकर ही चलना ठीक है।

सड़कों के आसपास अथवा बगीचों में लगे हुए वृक्षों या पौधों के पत्तों को बेंत, छड़ी आदि से न झाड़ना चाहिए और न ही कुत्ते आदि पर प्रहार करते चलना चाहिए।

जब किसी, स्त्री, मित्र या गुरुजन के साथ चलें और छाता एक ही हो, तो उसको अपने हाथ में ले लें और छाता इस प्रकार उठाएं कि साथ चलने वाले को तीली न लग जाए।

साधारणतया अपने गुरुजन के बायें हाथ रहकर चलना ठीक है।

अपनी पत्नी साथ में हो तो आपको दाहिने हाथ चलना या बैठना चाहिए। पत्नी के वामांग रहने से आप उनकी रक्षा भी दाहिने हाथ से भली प्रकार कर सकते हैं।

अगर आप अपने किसी मित्र के साथ चल रहे हों और रास्ता दोनों के साथ-साथ चलने के लिए अपर्याप्त हो तो आपको पीछे रहना चाहिए और अपने मित्र को आगे चलने का अवसर देना चाहिए।

पिता आदि गुरुजन के साथ चलना हो तो उनसे एक-दो कदम पीछे रहें। यदि वे पीछे हों तो रास्ता देकर उनको आगे हो जाने दीजिए। बराबर ही चलना हो तो उनके बायीं ओर रहिए। यदि कुछ असबाब उनके हाथ में हो तो वा सबका सब या उसका कोई बड़ा अंश उनके निषेध करते रहने पर भी अपने हाथ में ले लेना चाहिए। दरवाज़े के अंदर जाना हो तो पहले उनको जाने दीजिए। परंतु यदि

दरवाजा बंद हो तो आगे बढ़कर उसे खोल दीजिए और अगर कमरे में अंधेरा हो तो अंदर जाकर पहले रोशनी कर दीजिए।

अगर आपके साथ में महिला या गुरुजन हों और रास्ते में भीड़ हो, तो आगे बढ़कर रास्ता साफ करते हुए चलना चाहिए।

अगर किसी स्त्री या गुरुजन के साथ गली या बाजार में चलने का अवसर मिले तो साधारणतया अपने साथियों को दीवारों अथवा दुकानों की ओर चलने दीजिए और स्वयं सड़क के बीच की ओर रहिए, जिससे वे गाड़ी आदि की चपेट से बचे रहें। लेकिन अगर दुकानों की ओर बहुत भीड़ और दूसरी ओर उतनी भीड़ न हो, तो आपको दुकानों की ओर ही रहना चाहिए। अगर एक से अधिक स्त्रियां आपके साथ हों तो उनके बीच में रहकर न चलिए।

भले आदमियों का गली, बाजार या सड़क में एक-दूसरे के गले, कमर या हाथ में हाथ डालकर या कंधे पर हाथ रखकर खड़ा होना या चलना-फिरना अनुचित है।

कहीं रास्ते में, मेले-ठेले में या बाजार वगैरह में किसी मित्र या परिचित व्यक्ति से भेंट हो जाये तो 'नमस्ते' आदि अवश्य कर लेनी चाहिए। यदि अवकाश हो तो कुशल-क्षेम भी पूछ लेना चाहिए। परंतु बिना विशेष ज़रूरत के किसी को रास्ते में रोकना या गप्प लगाने के लिए खड़ा रखना अनुचित है। सम्भव है, वह किसी ज़रूरी काम से जा रहा हो और आपके रोकने से उसका हर्ज होता हो और वह बेचारा संकोचवश कुछ कह भी न सकता हो ! अगर उसके साथ अन्य मित्र या साथी भी हों तब तो आपको और भी सोच-विचारकर व्यवहार करना चाहिए। अगर रास्ते में ठहरकर बातें करनी ही हों तो एक तरफ हटकर करनी चाहिए।

अगर आपको रास्ते में कोई मान्य व्यक्ति जाते हुए मिल जायें और वह आपको बुलाएं या आपको उनसे कुछ कहना हो, तो उनके साथ बातचीत करते हुए उस ओर चलते जाइये जिस दिशा में वह जा रहे हों।

अगर आप अपने किसी मित्र के साथ पैदल टहल रहे हों और कोई तीसरा व्यक्ति मिल जाये जो आपके मित्र से बात करने के लिए ठहरे तो आपको चाहिए कि धीरे से कुछ आगे को खिसक जायें और वहीं उनके निकट न डटे रहें। अगर आपका मित्र उस व्यक्ति से भ्रमण में शरीक होने के लिए कहे तो वह आप तक आ जायेंगे और आपका और उनका परिचय करा देंगे। उस तीसरे व्यक्ति को चाहिए कि वह कभी बिना उन दोनों के कहे टहलने में सम्मिलित न हो।

रास्ते में यदि कोई पथभ्रष्ट व्यक्ति आपको मिल जाये या कोई आपसे रास्ता पूछे तो उसे शिष्टता से सही-सही बतला देना चाहिए। कोई अंधा सड़क पार करने

का प्रयत्न कर रहा हो अथवा रास्ते पर न लग पाता हो, तो उसकी सहायता अवश्य करनी चाहिए।

यदि रास्ता भूला हुआ बच्चा आपको मिल जाये तो उसे उसके मां-बाप, कोतवाली या सेवा-समिति आदि में पहुंचा देना आपका कर्तव्य है।

यदि आप सड़क पर किसी शव को ले जाते हुए देखें तो एक तरफ हट जायें और जब तक जनाज़ा गुज़र न जाये, ठहरे रहें। अगर आप गाड़ी में जा रहे हैं, तो गाड़ी को थोड़ी देर रोककर तथा फिर बचाकर धीरे-धीरे निकालना चाहिए। किसी भी जाति-संप्रदाय तथा मज़हब के व्यक्ति के शव के साथ-साथ दो-चार कदम उसके सम्मान में सम्मिलित होना भी अच्छा समझा जाता है।

अगर किसी चौराहे, तिराहे या मोड़ पर सड़क के इस्तेमाल करने, गाड़ियों की रफ्तार या अन्य सूचनात्मक कोई चिह्न बना या वाक्य लिखा हो, तो उसकी अवहेलना न करनी चाहिए। इसी तरह के चिह्न या वाक्य, अधिकारियों की ओर से जनता के लाभ के लिए बनाये या लिखे जाते हैं। इसी प्रकार अगर चौराहे आदि पर खड़ा हुआ कोई सरकारी कर्मचारी गाड़ियों की गतिविधि को नियंत्रित अथवा व्यवस्थित करता हो तो सदैव उसकी आज्ञाओं और संकेतों का पालन करना चाहिए।

बाज़ार में या सड़क पर, जहां लोग आ-जा रहे हों, साइकिल, घोड़े अथवा किसी भी सवारी को तेज़ चलाने या दौड़ाने से स्वयं या किसी अन्य को चोट लगने का डर रहता है।

रात के समय बाइसिकिल, गाड़ी आदि पर रोशनी अवश्य रखनी चाहिए।

सड़क पर अपनी गाड़ी सदा बायें हाथ रखनी चाहिए और आवश्यकता से अधिक सड़क का हिस्सा नहीं घेरना चाहिए। अगर आपके सामने कोई गाड़ी जा रही हो और आप उससे आगे निकलना चाहें तो भोंपू देकर उसके दायीं तरफ से निकलें और अगर दायीं तरफ भी सामने से कोई गाड़ी आ रही हो तो आप बायीं तरफ आगे जाने वाली गाड़ी के पीछे रहिए और जब तक कि रास्ता साफ न मिल जाय, इधर-उधर से निकलने की कोशिश न कीजिए।

जिस सड़क पर आप जा रहे हों यदि उसमें से दाहिने हाथ सड़क फटे और आप दाहिने हाथ मुड़ना चाहें और उस तिराहे या चौराहे पर सरकार या चुंगी आदि की ओर से कोई गोल या अन्य सूचनात्मक निशान या संकेत बना हो तो उसका चक्कर काटकर जाना चाहिए। यदि सामने कोई गाड़ी हो तो जब तक वह आपके बराबर में से गुज़र न जाय तब तक अपनी गाड़ी को रोकिए और मोड़ को साफ हो जाने दीजिए। यदि आप ऐसा न करेंगे तो टक्कर हो जाने की आशंका रहती है।

यदि बायें हाथ को फटने वाली सड़क पर आपको जाना है तब तो बीच में बने

हुए निशान का चक्कर काटने की आवश्यकता ही नहीं रहेगी।

बिना पीछे देखे हुए गाड़ी, विशेषकर कार या लारी को पीछे की ओर नहीं हटाना या चलाना चाहिए और गाड़ी घुमाते, बायें-दायें मोड़ते अथवा रोकते समय सदैव हाथ से संकेत देना चाहिए जिससे पीछे आने वाले सावधान हो जायें।

जिस मार्ग पर लोग पैदल चल रहे हों अथवा साइकिल पर जा रहे हों, वहां कीचड़ या धूल में ज़ोर से कार या लारी नहीं चलानी चाहिए। यदि सामने वाली गाड़ी का घोड़ा या बैल भड़कता हो तो अपनी कार या लारी को रोक लेना अथवा काफी स्थान छोड़कर धीमे से निकालना चाहिए।

अगर कोई कार या लारी वाला जल्दी में है और आपसे आगे निकलना चाहता है तो अपनी गाड़ी को बायें हाथ की ओर करके धीमी चाल कर दीजिए और पीछे आने वाले को आगे निकल जाने के लिए हाथ से इशारा करिए। पीछे आने वाले को जब तक आगे जाने वाला सिगनल न दे, तब तक किसी भी स्थिति में आगे निकलने का प्रयत्न नहीं करना चाहिए। लेकिन अगर तीन-चार बार भोंपू बजाये जाने पर भी वह रास्ता न दे और पीछे आने वाले का देर में पहुंचने से काम बिगड़ता हो तो ऐसी दशा में इस नियम की अवहेलना सतर्कता से की भी जा सकती है।

प्रत्येक मोड़ पर सदैव भोंपू बजाना चाहिए और गाड़ी की गति धीमी करनी चाहिए। रास्ते में यदि अन्य गाड़ी चलाने वाले मिलें और उन्हें कोई दिक्कत हो तो अपनी गाड़ी रोककर उनकी सहायता करनी चाहिए। अगर मार्ग में कोई आकस्मिक घटना हो जाये तो उसकी रिपोर्ट निकटतम थाने में लिखानी चाहिए और अगर कोई घायल हो जाये तो उसे अस्पताल पहुंचाना चाहिए। किसी को इस प्रकार संकट में छोड़कर चल देना बड़ी ही अमानुषिकता है।

अपनी गाड़ी हमेशा उसी स्थान पर खड़ी करनी चाहिए जो उसके लिए नियत हो अथवा जहां नगरपालिका अथवा कार्पोरेशन की ओर से 'पार्क हियर' (park here) आदि लिखा हो या उसके लिए कोई अन्य संकेत बना हो। यदि ऐसा न हो तो सड़क पर अपनी गाड़ी इस ढंग से खड़ी करनी चाहिए कि अन्य गाड़ियों के निकलने के लिए काफी रास्ता रहे तथा रास्ता देने के लिए फिर से आकर आपको अपनी गाड़ी हटानी न पड़े।

इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि कोई मित्र जब बाहर जा रहे हों तो उनसे बैठने के लिए कभी प्रार्थना न की जाय। किसी कारण से आपका प्रस्ताव उस मित्र को असमंजस में डाल सकता है।

यदि आप अपनी गाड़ी में जा रहे हों और अपने किसी मित्र या बड़े को उसी दिशा में अकेले पैदल जाते देखें जिधर आप जा रहे हों तो उनसे भी साथ बैठ जाने का निवेदन कीजिए और अगर वह स्वीकार करें तो दरवाजा खोलकर

उनको प्रेम व श्रद्धा के साथ अंदर स्थान देना चाहिए। अगर उनके संग अन्य लोग भी हों तो उनसे ऐसा निवेदन करके उनको साथियों से पृथक् करना उचित नहीं है।

यदि आप किसी को अपने साथ गाड़ी पर लाये हों तो उसको यथासंभव उसके घर तक पहुंचाना भी आपका कर्तव्य है।

किसी सज्जन की गाड़ी, मोटर आदि पर बिना मालिक की अनुमति के केवल कोचवान या ड्राइवर से पूछकर या उसके कहने से बैठ जाना अत्यंत अनुचित है। ड्राइवर से अधिक अथवा अनावश्यक बातें करके उसका ध्यान नहीं बांटना चाहिए; इससे दुर्घटना हो जाने की आशंका रहती है।

अगर आपकी अपनी गाड़ी हो और आपके मित्र को भी साथ चलना हो तो उनको गाड़ी के अंदर पहले बैठने को कहना चाहिए; अपने-आप पहले बैठ जाना अशिष्टता है। अगर आपके मित्र की गाड़ी है और वह आपसे बैठने को कहें तो पहले बैठ जायें परंतु सर्वोत्तम सीट पर न बैठें जब तक कि आपके मित्र आग्रह न करें।

गाड़ी में बैठते समय यदि अपनी पत्नी के अतिरिक्त कोई अन्य महिला आपके साथ हों तो उनको सदैव अपने दाहिने हाथ बिठाना चाहिए। यदि आपकी पत्नी भी साथ हों और एक सीट पर ही तीनों को बैठना हो तो उक्त देवी उनके बायें हाथ बैठ सकती हैं। अपने बड़े या मेहमान साथ हों तो आपको उनके बायें हाथ बैठना चाहिए या सामने वाली, अगली सीट पर। गुरुजन जब किसी सवारी से उतरें और आपको आगे जाना हो अर्थात् उसी सवारी में सफर करना शेष हो, तो उचित है गाड़ी से उतरकर आप उनको विदा करें, न कि गाड़ी में बैठे रहकर ही।

सवारी में स्त्रियों व बच्चों को पहले चढ़ाकर, तब आपको बैठना चाहिए। बच्चों को सदैव बीच में रखना उचित है और उनको गाड़ी के किनारे अथवा खिड़कियों के पास असावधानी से न खड़े होने या झांकने देना चाहिए। उतरने के समय पहले पुरुष को उतरना चाहिए।

रेल-यात्रा

यात्रा में कभी जरूरत से ज्यादा चीजें न ले जाइए और लंबी यात्रा करनी पड़े तो यथासंभव लोटा, सुई-डोरा, चाकू, कागज व पुस्तक, पेंसिल अथवा कलम, बैटरी, अंगोछा, मंजन व जीभी, टाइम टेबिल आदि साथ में रख लेना चाहिए। अगर आपको कोई रोग हो जिसका अकसर दौरा होता हो, तो उसकी दवा भी अपने साथ रख लेना न भूलिए। यदि आपको अपने परिवार के साथ

यात्रा करनी हो तो रास्ते के लिए बाल-बच्चों के भोजन का प्रबंध अवश्य कर लेना चाहिए।

बुद्धिमानी इसमें है कि सामान ज्यादा पुलिंदों में न बांधा जाय और जहां तक हो सके, गठरियों की अपेक्षा बक्सों में बंद किया जाय। प्रस्थान से पूर्व पुलिंदों की संख्या नोट कर लेनी चाहिए जिससे रास्ते में सामान के सम्हालने में सुविधा रहे। बांधते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि वे इतने बड़े न हों कि रेल की सीट के नीचे न आ सकें।

सफर के लिए घर से चलते समय बच्चों को प्यार और बड़ों को नमस्कार करना चाहिए।

गाड़ीवान और कुली आदि से किराया या मजदूरी पहले ही निश्चित कर लेनी चाहिए; इससे पीछे झगड़ा न करना पड़ेगा। अगर किराया या मजदूरी पहले से तय नहीं कर ली है तो दो-चार पैसे के लिए झक-झक करना अथवा देर तक हुज्जत करना व समय खोना नहीं चाहिए। सामान उठवाने तथा सवार होने से पहले कुली व तांगे, गाड़ी आदि का नंबर नोट कर लेना चाहिए।

रेलगाड़ी छूटने के समय से दस-पंद्रह मिनट पहले स्टेशन पर पहुंच जाना चाहिए; ठीक गाड़ी छूटने के समय पर ही पहुंचने के विचार से घर बैठे रहना ठीक नहीं है।

टिकट लेते समय दूसरे आदमियों को धक्का नहीं देना चाहिए। दूसरे भी उतनी ही जल्दी में होते हैं, जितनी कि आप। टिकट प्राप्त करने की खिड़की के सामने पंक्ति में खड़े हो जाइए और अपनी बारी आने तक शांति के साथ प्रतीक्षा कीजिए। इससे सबको सुविधा रहती है और किसी को देर नहीं होती।

यदि देर में स्टेशन पर पहुंचने से अथवा अन्य किसी कारण से आप टिकट न ले सकें तो गार्ड को सूचित कर देना चाहिए। गार्ड को सूचना देने से आप डबल किराये के रूप में जुर्माना देने से बच जायेंगे। गार्ड को जब समय मिलेगा, आपसे किराया लेकर रसीद दे देगा जो टिकट का काम देगी।

यदि पास में बोझ अधिक हो तो सामान की बिल्टी कराकर उसे माल के डिब्बे अथवा गार्ड के ब्रेक में रखवा देना चाहिए। बहुत-से पढ़े-लिखे लोग भी अधिक सामान बिना बिल्टी ले जाने, बिना टिकट यात्रा करने अथवा जिस श्रेणी का टिकट लिया है उससे ऊंचे दरजे में व बच्चों का किराया बिना दिए यात्रा करने में कोई हर्ज नहीं समझते। इसी प्रकार बहुत-से व्यक्ति अपने मित्र आदि से मिलने, किसी को लेने या विदा करने के लिए प्लेटफार्म पर बिना टिकट के चले जाते हैं। यह अत्यंत बुरी बात है और इससे भले आदमियों का सम्मान नष्ट हो जाता है। नियम व कानून के पालन से ही समाज में व्यवस्था रह सकती है, अन्यथा नहीं।

टिकट खरीदते समय अच्छी तरह देख लो कि सही स्थान का टिकट मिला है या नहीं और जो किराया दिया गया है उस पर अंकित हैं या नहीं। उसका नंबर नोट कर लेना चाहिए; अगर टिकट खो जाय तो नंबर का पता देने से आप दुबारा किराया देने से बच सकते हैं।

जिन स्टेशनों पर पुल या नीचे से होकर जाने का रास्ता हो वहां रेल की लाइन को पार करके जाना उचित नहीं है।

रेलगाड़ी आने के समय प्लेटफार्म पर इतने फासले से खड़ा होना चाहिए कि आती हुई गाड़ी की झपट में न आ जायें।

चलती हुई गाड़ी में चढ़ने या उतरने का कभी विचार तक भी न करिए। गाड़ी पर तभी सवार होना चाहिए जब कि उतरने वाले मुसाफिर उतर चुकें। बलपूर्वक घुसना भले आदमियों का काम नहीं है।

स्टेशन पर गाड़ी रुक जाए तभी उसमें से उतरने के लिए खड़ा होना चाहिए वरन् गाड़ी खड़ी होने पर धक्का लगने का डर रहता है। रेल के डिब्बे या उसके शौचालय में जाकर या उससे निकलकर दरवाज़ा बंद कर देना चाहिए। अगर किसी स्टेशन पर दो-चार मिनट के लिए उतरें तो डिब्बे का दरवाज़ा खुला छोड़ सकते हैं।

चलती गाड़ी में उधर मुंह करके बैठना और देखना न चाहिए जिस ओर गाड़ी जाती हो अर्थात् जिधर इंजन लगा हो। ऐसे बैठने तथा देखने से आंखों में कोई चीज पड़ सकती है जिससे आंखों को कष्ट होता है।

रेल या मोटर में बाहर की तरफ हाथ, पैर या गर्दन निकालकर कभी नहीं बैठना चाहिए। न दरवाज़ा खोलकर खड़े होना या बैठना चाहिए क्योंकि इससे गाड़ी से बाहर गिर जाने की आशंका रहती है।

रेलगाडी में यात्रा करते हुए किसी अपरिचित महिला से नहीं बोलना चाहिए, जब तक कि वह स्वयं आपको संबोधन न करे अथवा उसे आपकी किसी सहायता तथा सेवा की आवश्यकता न हो।

रेल में आवश्यकता से अधिक जगह लेना और बिना किसी कारण-विशेष के पैर या सामान फैलाकर बैठना उचित नहीं। डिब्बे में यदि दूसरों को बैठने के लिए स्थान खाली हो तो अपने आराम के लिए दूसरों को अंदर घुसने से नहीं रोकना चाहिए। और, अगर स्थानाभाव के कारण किसी बच्चे, स्त्री, बूढ़े या रोगी को कष्ट हो या खड़ा होना पड़े तो उसके लिए आपको स्वयं अपनी सीट खाली कर देनी चाहिए। कुछ लोगों में स्वार्थ-साधन की भावना इतनी प्रबल और दूसरों के सुभीते की अवहेलना का अभ्यास इतना अधिक हो जाता है कि वे स्वयं तो रेल-गाड़ियों में बहुधा आराम से लेटे रहते हैं और निर्बल, बालक, वृद्ध, स्त्रियां और गरीब जन उनके सामने घंटों खड़े रहते हैं।

रेलगाड़ी में यात्रा करते समय केवल अपनी सुविधाओं का ही ध्यान नहीं रखना चाहिए बल्कि अपने पास बैठने वाले मुसाफिरों के सुख-दुःख पर भी ध्यान देना ज़रूरी है। अतएव खिड़कियों और दरवाज़ों में इस तरह अड़कर नहीं बैठना या खड़ा होना चाहिए कि लोगों को शुद्ध वायु का मिलना कठिन हो जाये और, यदि ठंड के मौसम में खिड़कियां खोलने से किसी को कष्ट पहुंचता हो, तो खिड़कियां नहीं खोलनी चाहिए। उचित यही है कि बिना दूसरे यात्रियों की अनुमति के, विशेषकर उनकी अनुमति के जो उनके निकट बैठे हों, खिड़कियां न तो खोलनी चाहिए और न बंद करनी चाहिए।

गाड़ी में आग सुलगाना उचित नहीं, क्योंकि उसके धुएं से दूसरों को कष्ट होता है। यदि दूसरे मुसाफिरों को बुरा लगे तो तंबाकू नहीं पीना चाहिए और अगर पीना ही हो तो इस प्रकार पीना चाहिए कि दूसरों पर धुआं न जाये। जलती हुई सलाई बाहर फेंकने से अकसर खेतों में आग लग जाती है, अतः सलाई हमेशा बुझाकर ही फेंकनी चाहिए।

रेलगाड़ी आदि में बैठकर बहुत ज़ोर-ज़ोर से बातें न करना चाहिए। अगर बातें करनी हों तो अपने पास बैठे हुए व्यक्ति से धीमे-धीमे बोलें।

रात के समय अगर दूसरे मुसाफिर सो रहे हों तो कोई ऐसा काम न करना चाहिए जिससे उनकी नींद में विघ्न पड़े।

रेल के डिब्बे में किसी प्रकार की गंदगी नहीं फैलानी चाहिए। अपनी से अगली सीट पर जूते रखकर बैठना उचित नहीं है। कफ, थूक, पान की पीक, सिनक, पानी, फलों के छिलके वगैरह फर्श पर डालना उचित नहीं है। अगर आप रेल के डिब्बे के अंदर ही भोजन करें तो आपको इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि पत्ते आदि या भोजन का कोई अंश फर्श पर न गिरे जिससे डिब्बे में अस्वच्छता फैल जाये। बच्चों को मल-मूत्र करने की आवश्यकता हो तो रेल के शौचालय में करानी चाहिए, न कि डिब्बे के फर्श पर।

रेल के डिब्बे से बाहर थूकते वक्त, अथवा पानी या कोई दूसरी चीज़ फेंकते वक्त, बाहर की ओर पहले देख लेना चाहिए; ऐसा न हो कि बाहर किसी मनुष्य पर थूक या पानी आदि जा पड़े। अगर चलती ट्रेन से थूकें अथवा पानी आदि फेंके तो बड़ी सावधानी से ऐसा करें जिससे हवा के ज़ोर से थूक या पानी आदि पिछले डिब्बे के मुसाफिरों पर न जा पड़े।

जब गाड़ी स्टेशन पर खड़ी हो उस समय शौचादि से निवृत्त न होना चाहिए; इससे स्टेशन पर गंदगी फैलती है। शौचालय को सदैव सावधानी से इस प्रकार इस्तेमाल करना चाहिए कि वह अस्वच्छ न हो जाये और दूसरे भी उसका उपयोग कर सकें।

अनजान शहर में रात के दस बजे के बाद स्टेशन से किराये की सवारी में

यथासंभव न जाना चाहिए, स्टेशन पर ही या उसके निकट की धर्मशाला में रात काटनी ठीक है। अकसर बदमाश लोग भोले यात्रियों को गलत जगह पहुंचाकर लूट लेते हैं और कत्ल तक कर देते हैं।

यात्रा में चोर-उचक्कों से सावधान रहना चाहिए। रुपया-पैसा बक्स में रखना उचित नहीं। यदि डिब्बे में आपके अतिरिक्त एक-दो अजनबी व्यक्ति हैं तो उनकी दी हुई कोई चीज़ न खानी या सूंघनी चाहिए, क्योंकि ठग लोग पान, मिठाई आदि में विष देकर ही बहुधा अपना काम करते हैं।

प्रत्येक स्टेशन पर रेलवे की ओर से एक रजिस्टर रहता है। अगर रेलवे के संबंध में कोई शिकायत हो तो उसमें लिख देनी चाहिए ताकि वह बड़े अधिकारियों के नोटिस में आ जाये और वह आवश्यक कार्रवाई कर सकें।

१०

पत्र-व्यवहार

पत्रों में सादगी और स्वाभाविकता होनी चाहिए। किसी के लिखे पत्र को देखकर उसके स्वभाव, रुचि और चरित्र का बहुत कुछ अनुमान लगाया जा सकता है। ऐसे पत्र से जिसका सारा विषय कागज़ के एक भाग मात्र में लिखा हुआ हो, जिसका लेख भी अच्छा न हो और भाषा अशुद्ध हो, जिसका कागज़ और लिफाफा मेल न खाता हो या जिस पर रोशनी के धब्बे पड़े हों, यह प्रकट होता है कि लिखने वाले के सिर के बाल साफ नहीं रहते, वह अपने वस्त्र अस्वच्छ रखता है और उसकी दिनचर्या का कोई नियम नहीं है। इसी प्रकार शुद्ध भाषा में साफ लिखा हुआ पत्र इस बात का द्योतक है कि लेखक एक सफाई-पसंद और नियमित जीवन व्यतीत करने वाला व्यक्ति है।

पत्र की स्वभाविकता का अर्थ यह है और यही अच्छे पत्र की पहचान है कि लेखक का व्यक्तित्व उसमें पूर्णरूपेण झलके और पढ़ने वाले को ऐसा प्रतीत हो कि वह आपके सामने बैठा बातें कर रहा है।

जो पत्र आदि आप दूसरों के लिए लिखें उसमें पढ़ने वालों की सुविधा का ध्यान रखना आवश्यक है। अक्षर साफ और शुद्ध तो हों ही, लेकिन पत्र की भाषा भी ऐसी होनी चाहिए जिसको पत्र प्राप्त करने वाला जानता हो अथवा समझ सके। अपने मित्र तथा परिवार वालों को पत्र सदैव अपने देश की भाषा में लिखना ही शोभा देता है। जिस जाति में अपनी भाषा के प्रति आदर-बुद्धि नहीं रहती, वह शीघ्र ही विनाश को प्राप्त हो जाती है।

कौटिल्य अर्थशास्त्र में लेख के निम्न दोष बताये गये हैं :

अकान्तिर्व्याघातः पुनरुक्तमपशब्दः संप्लव इति लेखदोषाः।५६।
तत्रकाल पत्रकमचारुविषमविरागाक्षरत्वमकान्तिः।६०।
पूर्वेण पश्चिमस्यानुपपत्तिर्व्याघातः।६१।
उक्तस्याविशेषणद्वितीयमुच्चारणं पुनरुक्तम्।६२।

लिङ्गवचनकालकारकाणामन्यथा प्रयोगोऽपशब्दः ।६३।

अवर्गे वर्गकरणं वर्गे चावर्गक्रियागुण विपर्यासः संप्लव इति ।६४।

—२ अधि०, १० अध्याय ॥

अर्थात् अकांति, व्याघात, पुनरुक्ति, अपशब्द, संप्लव, ये पांच लेख के दोष हैं। असुन्दर, छोटे-बड़े, भद्दे अक्षरों के लेख लिखना पत्र का अकांतिदोष होता है। पूर्व लेख का बाद के लेख से संबंध न जुड़ना व्याघात दोष होता है। प्रथम कही हुई बात का फिर कथन करना पुनरुक्ति दोष है। लिंग, वचन, काल, कारक का अन्यथा प्रयोग करके भाषा का अशुद्ध लिखना अपशब्द दोष है। विराम न लगाने के स्थान पर विराम और विराम के स्थान में विरामाभाव तथा अर्थक्रम के अनुसार लेख न लिखना संप्लव दोष कहलाता है।

कोई आपको पत्र लिखे तो उसका उत्तर अवश्य देना चाहिए, विशेषकर किसी अपने से बड़े अथवा महिला के पत्र का जवाब यथासंभव शीघ्र देना उचित है। अगर पत्र का उत्तर लिखने में देर हो जाय तो यह न लिखना चाहिए कि आपको इससे पूर्व पत्र लिखने का अवकाश ही नहीं मिला, क्योंकि बहुधा ऐसा लिखना सरासर गलत होता है और न इससे प्रेम या मैत्रीभाव ही प्रकट होता है। देर से जवाब देने की दशा में पत्र में सबसे पहले अपनी गलती की क्षमा मांगनी चाहिए।

उचित समय पर जवाब दिया जाय तो पत्र आरंभ करने का सबसे अच्छा ढंग यह है कि अपने मित्र का पत्र पाने पर आपको जो आनंद और प्रसन्नता हुई है पहले उसका उल्लेख किया जाय और फिर अन्य बातों का।

आकस्मिक तीव्र मनोवेग प्रकट करने के लिए लिखित शब्द अनुपयुक्त माध्यम हैं। अतः कभी क्रोध, झुंझलाहट, ईर्ष्या, पछतावा आदि मनोवेगों के अधीन होकर पत्र न लिखना चाहिए; ऐसे समय में लिखे हुए लेख या पत्र के लिए बहुधा पछताना पड़ता है। बोले हुए शब्द जल्द भुलाये जा सकते हैं परंतु लिखित शब्द अमर अर्थात् पक्ष या विरोध में अमिट प्रमाण हो जाते हैं और फिर वापस नहीं आते। इसलिए पत्र उसी समय लिखना चाहिए जब आपका मस्तिष्क पूर्णरूप से शांत व स्थिर हो।

पत्र में जो विषय लिखना है उसको अच्छी तरह विचार लेना चाहिए और हस्ताक्षर के बाद यथासंभव 'पुनश्च' नोट आदि न लिखना चाहिए; न ही हाशिये का प्रयोग करना उचित है।

जिस पत्र का जवाब देना हो वह पास में होना चाहिए जिससे कोई बात ऐसी न रह जाय जिससे पत्र डाल देने के पश्चात् पछतावा हो कि अमुक बात का जवाब देने से रह गया।

जैसा ऊपर लिखा जा चुका है, लिखने में बोलने की अपेक्षा अधिक सावधानी की आवश्यकता है; अतः कोई पत्र दुबारा पढ़े बिना डाक में न डालना चाहिए। यह भी देख लेना आवश्यक है कि किसी वाक्य से आपके आशय के विरुद्ध तो कोई भाव नहीं टपकता है।

यदि पत्र को प्राप्त करने वाला आपसे छोटा अथवा अत्यंत सुहृद नहीं है तो पत्र में उसका दोष न निकालना चाहिए, न ऐसी बात लिखनी चाहिए जो उसे अप्रिय लगे और न कोई काम न करने के लिए जवाब तलब करना उचित है।

अपने बच्चों को पत्रों द्वारा उपदेश करने में कोई हानि नहीं है; बल्कि उसका अच्छा प्रभाव पड़ता है।

किसी को भी ऐसा पत्र न लिखना चाहिए जो यदि दूसरे के हाथ में पड़ जाए तो आपको संकोच हो या लज्जा आवे, चाहे प्रापक आपका पति अथवा पत्नी ही क्यों न हो।

पत्र में कभी कोई खुशामदाना वाक्य अर्थात् ऐसी बात लिखनी उचित नहीं है जिससे यह प्रगट हो कि आप उसकी कृपा चाहते हैं या उसके लिए बहुत उत्सुक हैं।

कभी ऐसा पत्र न लिखना चाहिए जिससे किसी व्यक्ति के चरित्र पर धब्बा आता हो। सदैव यह ध्यान में रखना उचित है और यह एक पत्र के लिए भी न भूलना चाहिए कि संभव है तीसरे व्यक्ति को, कदाचित् उसी को जिसे आप अपना लिखा पत्र दिखाना सबसे अधिक नापसंद करें, आपके पत्र के पढ़ने का अवसर मिल जाय।

किसी मित्र को उसके किसी संबंधी की मृत्यु पर पत्र लिखें तो रोग के ब्योरे अथवा मृत्यु के प्रकार का उल्लेख न करना चाहिए। केवल अपने दुःख व संवेदना की अभिव्यक्ति और मृत व्यक्ति की सराहना में कुछ लिखना चाहिए। उसकी मृत्यु से कुटुंब अथवा, अगर मृत व्यक्ति सार्वजनिक कार्यकर्ता हो, तो समाज व देश की जो हानि हुई हैं, उसका भी उल्लेख करना चाहिए।

अपने नाम के आगे अपनी पदवियां लिखना उचित नहीं है।

लिफाफा थूक लगाकर बंद करना उचित नहीं; यह गन्दी आदत है।

११

बातचीत

अनकही बात अपनी चेरी है, पर कही हुई बात अपनी स्वामिनी हो जाती है। अतएव जीभ को सदैव अपने वश में रखना और समय पर विचार कर ही बोलना चाहिए; अर्थात् अपने को जो कुछ कहना है, उसके हर पहलू पर विचार किए बिना और उसका जो परिणाम होगा उस पर सूक्ष्म निरीक्षण किए बिना कुछ न कहना चाहिए। ऐसा करने से अपकीर्ति का भय न रहेगा; किसी के सामने लज्जित न होना पड़ेगा और पश्चात्ताप व चिन्ता से भी मुक्ति मिल जाएगी।

कहावत है कि :

बाते हाथी पाइए, बाते हाथी पांव।

अर्थात् "बात अच्छी होने पर हाथी मिल सकता है और मुंह से बुरी बात निकलने पर हाथी के पांव तले रौंदा भी जा सकता है।"

समाज में बैठकर न अधिक बोलना चाहिए और न बिलकुल चुप ही रहना ठीक है। शेखसादी का वचन है कि दो बातें मूर्खता की हैं, एक तो बात करने के अवसर पर चुप रहना; दूसरे, चुप रहने के स्थान पर बोलना। हिन्दी में भी एक उक्ति है कि "अति का भला न बोलना, अति की भली न चुप्प।" अर्थात् मनुष्य को मितभाषी होना चाहिए।

कवि शिरोमणि शेक्सपियर ने अच्छी बातचीत का लक्षण इस प्रकार कहा है :

"बातचीत प्रिय हो और ओछी न हो, चुहल की हो पर बनावट लिए न हो, स्वच्छंद हो पर अश्लील न हो, विद्वत्तापूर्ण हो पर दंभयुक्त न हो, अनोखी हो पर असत्य न हो।"

मधुर भाषण

हमारी वाणी में ही अमृत है और इसी में विष है। जहां मीठी बातें बोली जाती हैं, वहां की हवा मधुमय हो जाती है और चारो ओर सुख ही सुख दीख पड़ता है और जहां कटु अथवा अशिष्ट भाषण होता है, वह स्थान नरक हो जाता है।

वेदों में वाणी के संबंध में एक प्रार्थना आती है :

जिह्वाया अग्रे मधु मे जिह्वामूले मधूलकम्।
ममेदहक्रतावसो मम चित्तमुपायसि ॥२॥
मधुमन्मे निक्रमणं मधुमन्मे परायणम्।
वाचा वदामि मधुमद् भूयासं मधुसन्दृशः ॥३॥

अर्थात् "मेरी जिह्वा के मूल में मधुरता हो। हे मधुरता, मेरे कर्म में तेरा वास हो और मन के अंदर भी तू पहुंच जा। मेरा आना-जाना मधुर हो, मैं जो भाषा बोलूं वह मधुर हो और मैं स्वयं मधुर मूर्ति बन जाऊं।"

मनु महाराज मधुर भाषण के लिए इस प्रकार उपदेश करते हैं :

"मा ब्रूयात् सत्यमप्रियम्" अर्थात् ऐसा सत्य भी न बोलना चाहिए जो अप्रिय लगे। सच्ची बात यदि कड़वी है तो उसके लिए भी मीठे शब्द ढूंढ़िए और यह कोई कठिन काम नहीं है।

राजर्षि चाणक्य कहते हैं :

"प्रियवाक्यप्रदानेन सर्वे तुष्यन्ति जन्तवः।
तस्मात् प्रियं च वक्तव्यं वचने का दरिद्रता।"

अर्थात् "प्रिय वाक्य बोलने से सब प्राणी प्रसन्न होते हैं; इसलिए प्रिय बोलना चाहिए, ऐसा बोलने में कंजूसी कैसी?" इस संबंध में संतप्रवर कबीर की दो साखियां हैं :

बोली तो अनमोल है, जो कोई जाने बोल।
हिये तराजू तोल के, तब मुख बाहर खोल॥
ऐसी बानी बोलिए, मन का आपा खोय।
औरन को सीतल करै, आपहु सीतल होय॥

गोस्वामी तुलसीदास जी का कथन है :

तुलसी मीठे वचन से, सुख उपजत चहुं ओर।
वशीकरण इक मंत्र है, तजि दे वचन कठोर॥

इस संबंध में नीतिशास्त्र के एक-दो वाक्य इस प्रकार हैं :

केयूरा न विभूषयन्ति पुरुषं हारा न चन्द्रोज्ज्वला: ।
न स्नानं, न विलेपनं न कुसुमं नालङ्कृता मूर्धजा: ।।
वाणीयं समलङ्करोति पुरुषं या संस्कृता धार्यते ।
क्षीयन्ते खलु भूषणानि सततं, वाग्भूषणं भूषणं ।।

और भी—

काशक: कृष्ण: पिक: कृष्ण:, को भेद: पिककाकयो: ।
प्राप्ते वसन्तसमये, काक: काक: पिक: पिक: ।।

"कौआ और कोयल दोनों काले हैं, दोनों में क्या भेद है ? बसंत ऋतु आने पर मालूम होता है, कौआ कौआ है, कोयल कोयल है ।"

इसी को भाषा के कवि ने यों कहा है :

कागा काको लेत है कोयल काको देइ ।
मीठी बानी बोलिकै जग अपनौं कर लेइ ।।

मधुर भाषण का उद्देश्य यह है कि परस्पर बातें करने में एक-दूसरे के मान व आदर और आनंद व प्रेम का ध्यान रखा जाय, जिससे मनुष्य एक-दूसरे के निकट आ सकें । अभिवादन करना, धन्यवाद देना, समाचार पूछना, आशीर्वाद देना, अच्छी बातें करना, अच्छी बातें समझाना, इसी एक गुण के भिन्न-भिन्न अंश हैं ।

इसलिए भले आदमी का कर्तव्य है कि न ताना दे, न लानत भेजे और न कटु या अशिष्ट वाक्य कहे; अच्छी, मीठी बात कहे वरना चुप रहे ।

मधुर भाषण की इससे बढ़कर कोई कसौटी नहीं कि यदि विद्या, धन, बल अर्थात् सत्ता या आयु में छोटा कोई व्यक्ति आपके पास किसी काम से आए तो आपको चाहिए कि उससे बातचीत करने के अनंतर उसके मन में आपके विद्या, धन, आदि में बड़े होने की अनुभूति हो और वह मन-ही-मन आपकी प्रशंसा करता जाय ।

हास-परिहास

वह व्यक्ति जो निष्कपट और मन को हरनेवाला हास्य कर सकता है, मित्रमंडली की प्रसन्नता और आनंद का कारण बनता है । वह क्या कहता है, इससे कुछ तात्पर्य नहीं, परंतु उसके चुटकुले, बात कहने का उसका ढंग, एक प्रकार का व्यक्तित्व जो वह अपने उत्तर-प्रत्युत्तर में भर देता है और उसका वाक्-चातुर्य जिससे वह शब्दों और वाक्यों को कुछ से कुछ अर्थ पहना देता है, ये गुण श्रोताओं

के हृदय को प्रफुल्लित कर देते हैं और इसी कारण उसके लिए बातचीत के बहुत-से नियम शिथिल किये जा सकते हैं।

पर हंसी-मज़ाक उसी को और उसी से करना चाहिए जो दूसरों के हंसी-मज़ाक को सहन करने की शक्ति रखता है।

अपने मित्र, परिचित और समवयस्क व्यक्ति से ही परिहास करना उचित है। अपने से बड़ों और छोटों से हंसी-मज़ाक करना या उनके हंसी-मज़ाक में शरीक होना शोभा नहीं देता।

हंसी-मज़ाक में कभी विवाद आदि के अवसर पर पर भी गंदे और फाश शब्दों का प्रयोग नहीं करना चाहिए, सभ्य लोग अश्लील बातों में कभी रस नहीं लेते। शिष्ट परिहास तो वही है जिससे प्रसन्नता के साथ-साथ शिक्षा भी मिले और बुद्धि भी बढ़े।

दूसरे की बुराइयों पर हंसना अर्थात् ऐसा परिहास करना न चाहिए जो किसी को बुरा मालूम हो। किसी के साथ हंसी-दिल्लगी करने का मुख्य उद्देश्य चित्त को प्रसन्न करना है। किंतु अनुचित रीति से जो हंसी-दिल्लगी की जाती है, उसमें खुशी के बदले रंज ही उठाना पड़ता है। जब हंसी से एक के हृदय में चोट पहुंचती है, तब वह हंसी, हंसी न रह कर बल्कि उपहास हो जाती है और उपहास करने पर परस्पर वैमनस्य हो जाता है, जिससे सबका अमंगल हो सकता है।

यद्यपि कविकुलगुरु कालिदास कहते हैं कि "परिहास विजल्पितं सखे, परमार्थेन न गृह्यतां वचः" अर्थात् "हे मित्र, हंसी में कही बात को सच मत मान लेना।" तथापि मित्र के साथ भी अनुचित विनोद करना हानिकारक है। कोई भी आदमी चाहे वह परम मित्र ही क्यों न हो, हंसी के द्वारा किया गया भी प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष अपमान सहन नहीं कर सकता।

महाभारत में आया है :

परिहासश्च भृत्यैस्ते नाव्यर्थं वदतां वर।
कर्त्तव्यो राजशार्दूल दोषा यत्र हि मे शृणु॥
अवमन्यन्ति भर्तारं संघर्षादुपजीविषः।
स्वे स्थाने न च तिष्ठन्ति लङ्घयन्ति च तद्वचः॥

अर्थात् "हे युधिष्ठिर, नौकर से कभी परिहास न करना चाहिए, इसमें बहुत दोष हैं, सुनो। परिहास करने से नौकर के दिल में मालिक के लिए मान नहीं रहता, नौकर अपने कर्तव्य पर स्थिर नहीं रहता और मालिक की आज्ञा का उल्लंघन करता है।"

भाषा

अपने मुंह से सदैव शुद्ध और उत्तम भाषा बोलनी चाहिए। जिन शब्दों का आपको शुद्ध उच्चारण मालूम न हो उन्हें बोलना उचित नहीं और न ही बातचीत में उस भाषा के शब्द प्रयोग करने चाहिए जिससे आप अपरिचित हों।

यह ध्यान रखना चाहिए कि वार्तालाप भाषाओं की खिचड़ी न हो जाय। जिस एक भाषा में आप बात कर रहे हैं, उसी में करनी चाहिए। प्राय: हिंदुस्तानी में अंग्रेज़ी के अनावश्यक शब्द बहुत प्रयोग किए जाते हैं। यह ठीक नहीं है।

जहां कई मित्र या सज्जन बैठे हों वहां यथासंभव ऐसी भाषा में बातचीत करनी चाहिए जिसे सब समझ सकें।

अगर किसी की भाषा में उच्चारण अथवा मुहावरे की कुछ गलती हो तो चश्मपोशी करनी चाहिए, उसमें संशोधन करना अशिष्टता है।

हिंदुस्तानियों के लिए अंग्रेजों की नकल करके 'कोई है ?', 'देको', 'जल्दी मांगता है', 'मालूम ?' आदि अशुद्ध शब्दों अथवा शुद्ध शब्दों का अशुद्ध प्रयोग करना बड़े शर्म की बात है। इसी प्रकार 'माता' के स्थान पर बच्चों से 'ममी' और पिता के स्थान पर 'पापा' कहलाना, यह सिद्ध करता है कि ऐसे लोगों में कोई देशाभिमान नहीं है और वह अपनी भाषा व संस्कृति को विदेशी भाषा व संस्कृति से हीन वह निम्न कोटि की मानते हैं।

निंदा व स्तुति

नीति शास्त्र में कहा है :

यदिच्छसि वशीकर्तुं जगदेकेन कर्मणा।
परापवाद सस्येभ्यो गां चरन्तीं निवारय ॥

अर्थात् "यदि आप चाहते हैं कि एक ही कर्म से सारे जगत् को अपने वश में कर लें तो दूसरों की अपवाद-रूपी हरी खेती में चरने से गाय-रूपी अपनी वाणी को रोको।"

बूढ़े व्यक्ति, गुरुजन और किसी पूरी जाति की तो भूलकर भी निंदा नहीं करनी चाहिए, न किसी मृत व्यक्ति की ही निंदा करना उचित है, क्योंकि वह उसका जवाब देने को नहीं आ सकता।

कबीर साहब कहते हैं :

निंदक एक हू मत मिलो, पापी मिलो हज़ार।
इक निंदक के सीस पर कोटि पाप का भार॥

परंतु किसी व्यक्ति के सार्वजनिक कार्यों की शिष्टतापूर्वक आलोचना करना निंदा में शामिल नहीं है।

अगर किसी पेशे-विशेष का कोई व्यक्ति बैठा हो तो उसके सामने उस पेशे-वालों को बुरा न कहना चाहिए।

अपनी स्तुति आप करना उचित नहीं, दस आदमियों में बैठकर अपना जिक्र तब ही छेड़ना चाहिए जबकि अत्यंत आवश्यक हो। स्त्रियों में आत्मप्रशंसा की प्रवृत्ति बहुधा पुरुषों की अपेक्षा कुछ अधिक होती है। उन्हें उस प्रवृत्ति को कम करना चाहिए। उन्हें उचित है कि सदा अपने ही विषय की अथवा अपनी वस्तुओं, गहने, वस्त्र आदि की चर्चा न करें और न अपनी संतान की ही प्रशंसा करती रहें।

यद्यपि किसी की भलाई का उल्लेख अथवा वर्णन करना प्राय: किसी अवसर पर भी अनुचित नहीं है, लेकिन अगर आपकी जानकारी में कोई ऐसा व्यक्ति बैठा हो जो किसी व्यक्ति-विशेष की प्रशंसा सुनना पसंद नहीं करता हो तो कदापि उस व्यक्ति के गुण उसे सुना-सुनाकर न कहने चाहिए।

कब बोलें

बिना पूछे, बिना कहे अपनी सम्मति देना या किसी की बातचीत में बोलने लगना अथवा दखल देना असभ्यता है। जब कोई आपसे बातचीत करे या पूछे-ताछे, तभी बोलना ठीक है वरन् चुपचाप सुनते रहना चाहिए। यदि बीच में बोलना ही हो तो पहले नम्रतापूर्वक बोलने की अनुमति ले लेनी चाहिए। लोक-जीवन के व्याख्याता एवं कवि श्री जायसी ने पद्मावत में ठीक ही कहा है :

बिन पूछे जो बोलहि बोला।
होई बोल माटी के मोला॥

यदि दो ऐसे व्यक्ति आपस में बातचीत कर रहे हों जो आपके परम मित्र न हों या जिनके ढंग से ऐसा मालूम होता हो कि उनकी बातचीत गोपनीय है तो आपको उनके पास नहीं जाना चाहिए और न उनकी बातचीत सुनने या मालूम करने की चेष्टा ही करनी उचित है। यदि उनमें से किसी से कुछ काम हो अथवा अन्य कारणवश वहां जाना ही पड़े तो उनके बीच में न बोलना चाहिए और इतनी दूरी पर रहना चाहिए कि बातचीत सुनाई न पड़े। उनके पास आज्ञा लेकर जाना ही मुनासिब है या फिर बातचीत समाप्त हो जाने के अनंतर। परंतु बातचीत में मग्न व्यक्तियों का कर्तव्य है कि यदि कोई छोटा बच्चा कुछ कहना चाहे तो उसकी बात शीघ्र ही स्नेहपूर्वक सुन लें।

अगर आपको कोई बात अपने किसी ऐसे मित्र से निजी तौर पर कहनी हो

जो सभा में बैठे हों तो उनको अलग बुलाने के लिए उनके दूसरे साथियों से क्षमा मांगनी चाहिए। अच्छा तो यही है कि आप अपने मित्र से उस समय बात न करके कोई दूसरा अवसर निकालें।

यदि कोई व्यक्ति आपसे बात कर रहा हो तो उसकी बात समाप्त होने पर अथवा बातचीत में उसके कुछ ठहर जाने पर ही आपको कुछ कहना या जवाब देना चाहिए। यदि बीच में बोलना ही आवश्यक हो तो "क्षमा कीजिए, आपकी बात कटती है" आदि वाक्य कहकर तब बोलना उचित है। पेश कलामी करना अर्थात् जो कुछ दूसरा व्यक्ति कह रहा है, उसके आगे-आगे पहले से ही शब्द या वाक्य बोल देना और उसकी बात के अंतिम शब्दों को दोहराना भी अनुचित है।

बातों के सुनने की कला।

अगर कोई आपको संबोधन करे तो उसकी बात ध्यान से सुननी चाहिए, उदासीनता प्रकट करना अशिष्टजनों का काम है। दूसरे की बात के बीच में बार-बार यह पूछना कि "आपने क्या कहा?" सिद्ध करता है कि आप उसकी बात ध्यान से नहीं सुन रहे हैं।

अगर उसकी बातों में कोई ऐसा विषय, घटना या कहानी हो जिसे आप पहले से जानते हों तो उसकी बात काटकर अपनी जानकारी प्रकट न करें बल्कि ध्यानपूर्वक सुनते रहें।

जहां चार आदमी बातचीत कर रहे हों, वहां बीच में पुस्तक या समाचार-पत्र पढ़ने लग जाना उचित नहीं है।

अगर कोई आदमी ऐसी बात कहे जो आपके अनुभव के विपरीत हो तो उसको अनसुनी कर देना चाहिए जैसे कि आपने सुना ही नहीं है। अगर आपको संबोधन करके कहा जाय तो झटपट यह न कह बैठना चाहिए कि "ऐसी बात तो हमने न देखी और न सुनी"। क्योंकि इस वाक्य से बोलने की सच्चाई पर संदेह प्रकट होता है और यह आवश्यक नहीं कि जो बात आपके अनुभव में न आई हो, वह अवश्यमेव गलत हो।

संबोधन आदि

गुरुजन का नामोच्चारण करना असभ्यता है, उनको सदैव संबंधसूचक शब्द अथवा उनके पद या उप-नाम द्वारा और ऐसे शब्द के पीछे 'जी' अथवा 'साहब' लगाकर ही संबोधन करना उचित है, जैसे—गुरु जी, मास्टर साहब, माता जी, पिता जी, चाचा जी, भाई साहब, प्रधान जी, राय साहब, स्वामी जी, पंडित जी, मौलवी साहब, चौधरी साहब, बाबू जी, इत्यादि। उनकी अनुपस्थिति में भी उनका नाम आदर से लेना चाहिए।

किसी संन्यासी, शास्त्री, आचार्य या डाक्टर को केवल उपाधि से ही संबोधन करना चाहिए।

बराबर वालों को बुलाने या उनकी चर्चा करने में उनका पूरा नाम लेना और नाम के पहले श्रीमान्, पंडित, बाबू, महाशय, चौधरी आदि जो उपयुक्त हो अवश्य लगाना चाहिए। परंतु उनके नाम के पहले कुछ न कहकर पीछे केवल 'जी' या 'साहब' का प्रयोग करने से भी काम चल सकता है, जैसे 'कृष्णचंद्र जी'।

अपने से छोटे अथवा नौकर को नाम लेकर ही संबोधन किया जाता है।

किसी को भी बुलाते समय उसके नाम के पहले 'ए' या 'ओ' न लगाना चाहिए। किसी का लाड़-प्यार में रखा हुआ अथवा अधूरा नाम न लेना चाहिए। ऐसा नाम उन्हीं के मुंह से अच्छा लगता है जो उस नाम को बोलने के अधिकारी हैं या जिन्होंने वह नाम रखा है।

पति-पत्नी का परस्पर 'देखो तो', 'सुनो तो सही' आदि अर्थशून्य वाक्य कहकर संबोधन करना ठीक नहीं है। पति के लिए अपनी पत्नी का नाम लेना या नाम लेकर बुलाना भारतीय संस्कृति के अनुकूल है और प्राचीन काल में वही रिवाज था और क्योंकि अपने बड़े का नाम लेकर संबोधन करना अनुचित समझा जाता है, इसलिए पत्नी अपने पति का नाम नहीं लेती थी वरन् 'आर्य' या 'आर्य-पुत्र' कहती थी। परस्पर संबोधन की यह रीति अति उत्तम थी और पुनः चालू हो जाय तो अच्छा है। लेकिन आजकल 'आर्य' या 'आर्यपुत्र' का प्रचलित होना प्रायः असंभव-सा है, अतः पत्नी पति को 'श्रीमानजी' या उसका गोत्र अथवा उपनाम शर्मा जी, गौतम जी, गुप्त जी, खन्ना जी, वात्स्यायन जी, चौधरी साहब, मौलवी साहब, पंडित जी, राणा जी आदि अथवा व्यवसायात्मक नाम, जैसे डाक्टर साहब, वकील साहब, प्रोफेसर साहब, आदि कहकर पुकार सकती है। पत्नी का नाम लेने में कोई कठिनाई नहीं होनी चाहिए परंतु यदि यह न हो सके तो पत्नी के लिए श्रीमती जी, देवी जी आदि कहा जा सकता है। पाश्चात्य समाज में पति-पत्नी का परस्पर नाम लेने का चलन है, चलन कुछ हिंदुस्तानी घरानों में भी जारी हो गया है।

दूसरे मनुष्य से बातें करते हुए अपनी पत्नी के लिए 'घर से' या ऐसा ही अन्य निरर्थक शब्द या वाक्य नहीं कहना चाहिए, 'गृहिणी' आदि शब्दों का प्रयोग करना उचित है।

यदि आप किसी आदमी से कुछ कहना चाहते हैं तो उसका ध्यान अपनी ओर आकर्षित करने के लिए उसका हाथ पकड़ना या उसके कपड़े झटकना अशिष्टता है।

यदि कोई बड़ा बुलाए तो 'क्या', 'ऐं', या 'हां' न कहना चाहिए। 'जी', 'जी

हां', 'जी अभी सेवा में उपस्थित हुआ' आदि कहना ठीक है। बराबर वाले या इष्ट मित्र से भी इसी प्रकार के शब्द या वाक्य कहने में कोई हर्ज नहीं, बरन् इससे आपकी नम्रता ही जाहिर होती है। अपने से छोटे या नौकर-चाकर से 'क्या' या 'हां' कहने का ही रिवाज है।

बातचीत में बड़ों को सदा 'आप' या 'श्रीमान जी' कहना चाहिए, ,तुम' नहीं। बराबर वालों को भी 'आप' ही कहना अच्छा है। जो अपने से छोटे हैं अथवा स्नेह के पात्र है उन्हें 'तुम' अथवा 'तू' कहकर संबोधन किया जा सकता है।

कोई भद्र पुरुष यदि आपको 'आप' कहकर पुकारे तो आपको उसे कभी 'तुम' नहीं कहना चाहिए। जब वह आपको 'आप' कहता है तो उसका अर्थ है कि वह चाहता है कि दूसरे लोग भी उसे वैसा ही संबोधन करें। उसके प्रति आपका 'तुम' कहना नितांत अनुचित है।

अगर दो से अधिक व्यक्ति उपस्थित हों और उनमें से एक के विषय में संकेत करके दूसरे से उस समय कोई बात पूछी या कही जाए तो उसके लिए 'इनका' या 'इनसे' आदि शब्दों का प्रयोग न करना चाहिए बल्कि 'आपका' या 'आपसे' कहना चाहिए। उदाहरणार्थ, बलभद्र से रामेश्वर की उपस्थिति में किसी विषय के संबंध में रामेश्वर का मत पूछे तो यह न कहना चाहिए कि 'इनका विचार इस संबंध में क्या है ?'' बल्कि यह कि "आपका (रामेश्वर जी का) मत इस संबंध में क्या है ?"

अपना नाम लेते समय उसके आगे-पीछे सम्मानसूचक शब्द न लगाना चाहिए और न अपने लिए 'मैं' के स्थान पर 'हम' का प्रयोग करना ही उचित है।

'जो है सो करके', 'राम तुम्हारा भला करे', 'समझे जी' आदि किसी तकिया कलाम की आदत न डालनी चाहिए, न 'अरे' शब्द का प्रयोग करना ही उचित है। बातचीत में ऐसे अनावश्यक शब्दों को बार-बार कहना अच्छा नहीं है।

सौगंध खाने की आदत अच्छी नहीं है, सौगंध खाने में न वीरता है, न सौजन्य और न बुद्धिमानी।

धन्यवाद या क्षमायाचना

बातचीत में साधारणतया 'कृपा करके मुझे दे दीजिए' या 'अगर आपको कष्ट न हो तो मुझे किताब उठा दीजिए' आदि वाक्यों का प्रयोग करना उचित है। ऐसी मधुर भाषा से संबोधित व्यक्ति समझ लेता है कि आप उसे कष्ट नहीं देना चाहते और दूसरों की छोटी-छोटी सेवाओं को भी धन्यवाद के साथ स्वीकार करते हैं।

अगर कोई ऐसा व्यक्ति जो आपसे छोटा अथवा सुहृद नहीं है, आपका काम कर दे, उदाहरणार्थ आपकी संकेतिक वस्तु पकड़ा दे या गिरी हुई वस्तु उठा दे तो

नम्रता के साथ उसे 'धन्यवाद' देना चाहिए। मुसलमानों में ऐसे अवसर पर 'तसलीम' कहने का रिवाज है। गुरुजनों का ऋण इतना महान है कि उनको धन्यवाद देने का तो प्रश्न ही नहीं उठता।

अगर किसी व्यक्ति को आपसे क्षमा मांगने की नौबत आ जाय तो आपको कहना चाहिए, 'नहीं, कुछ हर्ज नहीं।' इसका यह अर्थ नहीं कि क्षमा मांगना आवश्यक न था, बल्कि यह है कि अब आप उस पीड़ा को भूल गए जिसके लिए उसने क्षमा मांगी है। यह केवल नियम-निर्वाह के लिए ही नहीं, बल्कि दिल से भी होना चाहिए।

बहस से बचो

बहस से यथासंभव बचना चाहिए और मैत्री भाव से प्रारंभ की गयी बातचीत को वाद-विवाद के रूप में परिणत न होने देना चाहिए। अगर किसी बहस में फंस भी जाएं तो धैर्य व शांति से काम लें और अपनी राय नम्र भाषा में स्पष्टतया बयान कर दें। हरगिज यह न कहना चाहिए कि 'मैं तुमसे अधिक जानता हूं' या कि 'तुम सरासर गलती पर हो।' अगर आप सहमत नहीं हो सकते तो कहना चाहिए, 'नहीं, मुझे आपसे सहमत होने में कठिनाई है, संभव है, मेरी गलती हो, परंतु मेरी राय यही है' अथवा 'जहां तक मुझे मालूम है, घटना इसी प्रकार है।' अगर आप देखें कि दूसरे का मत आपकी राय के सर्वथा विपरीत है तो आपको चतुराई से उस विषय को छोड़कर दूसरा प्रसंग उठा लेना चाहिए।

इसी प्रकार अगर कोई व्यक्ति आपके धर्म, राजनीतिक दल या जाति के किसी सिद्धांत अथवा रिवाज की आलोचना करे तो क्रोध प्रकट करना उचित नहीं, नम्रता के साथ उसके गलत विचार को दुरुस्त करने का यत्न करें और यदि इस पर भी वह अपनी राय न बदले, तो बात बदलकर दूसरा विषय छेड़ दें, वरन् चुप हो जाएं, बहस न करें।

मित्र के साथ भी अनावश्यक वाद-विवाद करना अनुचित है, क्योंकि इससे बहुधा गाढ़ी मित्रता भंग हो जाती है।

बड़ों से बातचीत

अपने गुरुजन, स्त्रियों और पद-प्रतिष्ठा में जो माननीय हों उनके साथ साधारण से कुछ अधिक विनय, नम्रता एवं शांतिपूर्वक बातचीत करनी चाहिए। बातों में लापरवाही, उद्दंडता और असंगतता न आने देनी चाहिए।

अगर आप अपने किसी बड़े अथवा माननीय व्यक्ति से बातचीत करते हुए सहमत न हो सकें तो यह न कहना चाहिए कि 'आप भूल करते हैं' या 'आपकी

समझ में मेरी बात नहीं आई', ऐसी चर्चा ही न करें। अगर आवश्यकता पड़ जाए तो कहें, 'मेरे शब्द कदाचित् स्पष्ट नहीं थे' या मैं 'अपना अर्थ नहीं समझा सका।'

गुरुजन एवं मान्य पुरुषों के खड़े रहते हुए बात करने पर आपको स्वयं न बैठे रहना चाहिए, बल्कि उनके सामने खड़े होकर बातचीत करनी चाहिए।

यदि आप किसी चबूतरे या अन्य ऊंची जगह पर खड़े हुए हैं और किसी गुरुजन या मान्य व्यक्ति से, जो नीचे खड़े हुए हों, बातचीत करनी हो, तो नीचे उतरकर ही बातचीत करनी चाहिए। इसी प्रकार गाड़ी, साइकिल, घोड़े आदि से उतरकर ही गुरुजन या मान्य व्यक्ति से बातचीत करना उचित है।

गुरुजन और मान्य व्यक्तियों से बातचीत करते समय पान खाना या सिगरेट आदि पीना सभ्य समाज में अच्छा नहीं समझा जाता, विशेषकर जब कि वह स्वयं उन वस्तुओं का प्रयोग न करते हों। बड़ों के सामने जेब में हाथ रखकर बातचीत करना उद्दंडता का सूचक है।

बातचीत का ढंग

बातें करते समय एक-दूसरे की तरफ देखना चाहिए। दूसरी दिशा में अथवा खिड़की या छत की ओर निगाह करके, या नीची आंखें करके बातें करना अशिष्टता है। पर बिल्कुल आंख से आंख मिलाये रहना या घूरकर एक-दूसरे की ओर देखते रहना भी उचित नहीं है।

बातचीत के समय नाक पर उंगलियां रखने अथवा ठोड़ी पकड़े रहने की आदत अच्छी नहीं है।

बातचीत करने में अनावश्यक रूप में हाथ या कंधों को अथवा नाक, भौंह या होंठों को हिलाना, त्यौरी चढ़ाना या पलकों को बार-बार झपकाना, मूंछ ऐंठना या दाढ़ी से खेलना और जंघा अथवा शरीर के अन्य किसी अंग को खुजलाना सभ्यता के विरुद्ध है।

किसी दूसरे आदमी से बातें करते समय अपना मुंह उसके मुंह के अति निकट न ले जाना चाहिए और न उसकी ओर जोर से मुंह द्वारा सांस ही छोड़नी चाहिए।

बातें करते समय ध्यान रखना चाहिए कि मुख से थूक की छींटें न उड़ें।

किसी की बात का उत्तर सिर हिलाकर नहीं देना चाहिए।

बातचीत इतनी ऊंची आवाज से करनी चाहिए कि आपकी बात स्पष्ट सुनाई दे, परंतु आवाज इतनी ऊंची भी न हो कि निकट बैठे हुए व्यक्तियों की बातचीत में विघ्न पड़े, चीख-चीखकर बातें करना तो बिल्कुल असभ्यता है, विशेषकर स्त्रियों के लिए अत्यंत उच्च अथवा कर्कश स्वर से बोलना अक्षम्य है।

इतनी जल्दी न बोलना चाहिए कि लोगों की समझ में ही न आये और इतनी मंद गति से ठहर-ठहरकर बोलना या विस्तारपूर्वक कहना भी ठीक नहीं है कि सुनने वाले उकता जायें।

बातचीत का विषय

किसी से बातचीत आरंभ करने से पूर्व इतना विचार कर लेना चाहिए कि उस व्यक्ति का स्वयं बातें करने को जी चाहता है अथवा वह आपकी बातें सुनने की इच्छा रखता है। बहुधा लोग स्वयं बातें करना बहुत पसंद करते हैं और सुनना कम; इसलिए दिल लगाकर सुनने का गुण सराहनीय है। जिस किसी को आप प्रसन्न करना चाहते हैं उसकी बातें ध्यान से सुनें। बड़ों से बातें करते समय, बातचीत का विषय चुनने का अवसर उन्हें दें, जब वह कोई विषय न छेड़ें, तब आप शुरू कर सकते हैं।

मित्रमंडली में बैठकर सारा समय आपको ही अपनी बातों के लिए नहीं ले लेना चाहिए, बल्कि दूसरों को भी बात करने व कहने का अवसर देना चाहिए।

मित्रमंडली में बैठकर बार-बार अपने लतीफे व कहानी आदि का दुहराना उचित नहीं अर्थात् जो बातें पहले सुना चुके हैं उनको फिर-फिर न कहें। ऐसी बातें बहुत कम होती हैं जो दुबारा या तिबारा कहने पर भी अच्छी लगें।

किसी विषय में आपकी विशेष रुचि है तो सदैव उसी का ज़िक्र न छेड़ना चाहिए। जहां कई मित्र या सज्जन जमा हों वहां यथासंभव ऐसे विषय पर बातचीत करना उचित है जिसे सब समझ सकें अथवा जिसमें सबकी रुचि हो। अगर कोई ऐसी बात कहे, जिसके अर्थ या प्रसंग को सब न समझते हों तो उसका आशय सब पर प्रकट कर देना चाहिए।

मित्रमंडली में बैठकर शिक्षा या उपदेश करना अनुचित है। लोग आपस में इस दृष्टि से एकत्र नहीं होते कि जाकर नसीहत सुनें बल्कि मनोरंजन के विचार से होते हैं। इस कारण समाज में वह व्यक्ति सर्वप्रिय होता है जो केवल लोगों के गुणों पर दृष्टि रखता है और उनके अवगुणों पर ध्यान नहीं देता।

जिस प्रकार की सभा या समाज में आप सम्मिलित हैं उसके अनुकूल ही बातें करनी चाहिए। दुःख अथवा संवेदना की कथा में परिहास करना अनुचित है और आनंद की गोष्ठी में शोक की बातें करना भी वर्जित है।

जिससे बातचीत की जाय उसकी अवस्था व योग्यता आदि का विचार रखना आवश्यक है। नवयुवकों से वैराग्य की बातें करना और वयोवृद्ध लोगों को शृंगार रस की विशेषताएं बताना या उनके सामने बुढ़ापे के कष्ट और बुराइयां बयान करना शिष्टाचार के विरुद्ध है। साधु-संन्यासियों अथवा किसी विधवा

युवती के सामने विवाहित जीवन के विलास या सुखों की चर्चा करना भी अशिष्टता है।

जहां बहुत-से लोग बैठे हों वहां ऐसे विषय या पुरुष की चर्चा न करनी चाहिए जिससे लोगों को ग्लानि, विरोध अथवा घृणा हो। न अपने पेशे व रोज़गार की या अन्य घरेलू बातों की ही चर्चा करना उचित है। अपने दुःख की बात का उल्लेख करना तो बिल्कुल ही अनुचित है। किसी सभा या समाज में बैठकर इस प्रकार की बातें जिससे किसी व्यक्ति को अप्रिय घटनाएं या पूर्वकाल की विपत्तियां याद आयें अथवा सुनने में संकोच हो, नहीं करनी चाहिए।

अगर किसी के वेश आदि से यह प्रकट हो कि वह किसी मृत व्यक्ति के लिए शोक मना रहा है तो उससे सीधा यह प्रश्न न करना चाहिए कि "आपके यहां किसकी मृत्यु हो गयी है?" बल्कि गंभीरता से पूछना चाहिए, "कहिए, कुशल तो है?" और उसके साथ सहानुभूति प्रकट करनी चाहिए।

साधु-संन्यासियों से बिना विशेष कारण के उनकी पूर्व जाति व वृत्ति अथवा वैराग्य का पूछना असभ्यता है।

कभी किसी नौजवान विधवा से यह न पूछना चाहिए कि पुनर्विवाह में उसका विश्वास है या नहीं और न किसी तरुण स्त्री से उसकी आयु के संबंध में ही कोई प्रश्न पूछना चाहिए।

किसी से यह न पूछना चाहिए कि वह अमुक भोज, पार्टी या उत्सव में क्यों नहीं बुलाया गया और न उससे उस भोज आदि के संबंध में अन्य बातचीत करना ही उचित है।

किसी से, विशेषकर अपरिचित से, उसका वेतन, आय, व्यवसाय, वय या जाति व वंशावली न पूछनी चाहिए जब तक कि पूछना परम आवश्यक न हो। न यह पूछना चाहिए कि वह विवाहित है या नहीं और यह कि उसके कितने बच्चे हैं। वस्त्र, आभूषण आदि का मूल्य भी किसी अजनबी से न पूछना चाहिए।

यदि कोई सज्जन आपका प्रश्न सुनकर भी उत्तर न दें तो फिर उससे उसके लिए आग्रह न करना चाहिए। यदि ऐसा जान पड़े कि वह उत्तर देना भूल गया है तो अवश्य ही उससे दूसरी बार नम्रतापूर्वक प्रश्न किया जा सकता है। वैसे किसी से भी कुछ पूछते समय प्रश्न की झड़ी लगा देना उचित नहीं है।

१२

विशिष्ट व्यवहार

गत अध्यायों में सभ्य-साधारण के साथ कैसा व्यवहार किया जाय, इसका वर्णन किया जा चुका है। साथ ही 'पथ और यात्रा', 'बातचीत' आदि समस्त शीर्षकों में छोटे-बड़ों के साथ कैसे व्यवहार करें अथवा पुरुष-देवियों का किस प्रकार विशेष मान करें, आदि प्रायः स्थूलरूप से सब ही निदेश आ गए हैं, तथापि कुछ ऐसे आचरण शेष रह गये हैं जिनका उल्लेख किसी भी गत अध्याय या शीर्षक के अंतर्गत नहीं हो सका है। अतएव ऐसी सब बातों का उल्लेख यहां किया जाता है।

गुरुजन के प्रति

सभा, उत्सव, भोज आदि अवसरों पर आदर-सत्कार में प्राधान्य का क्रम क्या हो अथवा किसकी अपेक्षा कौन माननीय या बड़ा है, इस संबंध में मनु महाराज कहते हैं :

वित्तं बन्धुर्वयः कर्म विद्या भवति पंचमी।
एतानि मान्यस्थानानि गरीयो यद्यदुत्तरम् ॥

अर्थात् "एक धन, दूसरे बंधु—कुटुंब-कुल, तीसरी अवस्था, चौथा उत्तम कर्म और पांचवीं श्रेष्ठ विद्या—ये पांच मान्य स्थान हैं, परंतु धन से उत्तम बंधु; बंधु से अधिक अवस्था; अवस्था से श्रेष्ठ कर्म और कर्म से पवित्र विद्या वाले उत्तरोत्तर अधिक माननीय हैं।

वर्तमान जातियों में से किसी जाति-विशेष में जन्म लेने के कारण किसी व्यक्ति को ऊंचा या नीचा मानना मानवता के गौरव के विरुद्ध है। इससे हमारे देश का बड़ा अकल्याण हुआ है; अतएव बुद्धिमान को चाहिए कि अपने मन में आयु, कर्म व विद्या से ऊपर जातिगत-ऊंच-नीच के भाव को स्थान न दें।

भारतीय संस्कृति के अनुसार किसी कमरे या स्थान में गुरुजन के आने पर चाहे वह स्त्री हो या पुरुष—वहां जितने भी आयु में उनसे छोटे युवक व युवतियां बैठे हों, सबको आदर-प्रदर्शनार्थ खड़ा हो जाना चाहिए और आगंतुक को सर्वश्रेष्ठ आसन पर बिठलाना चाहिए। अर्थात् पुत्री या पुत्रवधू का कर्तव्य है कि वह पिता अथवा श्वसुर के सम्मान में उनके लिए आसन छोड़ दे। परंतु पाश्चात्य समाज में पिता का कर्तव्य है पुत्री को आसन दे।

अपने माता-पिता आदि तथा गुरु की यथाशक्ति सेवा करनी चाहिए। यह याद रखना आवश्यक है कि आप उनके ऋण से कभी उऋण नहीं हो सकते। भूलकर भी ऐसा व्यवहार न करना चाहिए जिसमें उनका जरा भी अनादर या अशिष्टता प्रकट हो। गुरुजन का आदर करने वाला ही विद्वान् तथा आचारवान हो सकता है।

अगर आप विद्या में अपने गुरुजनों से अधिक हों तो उनको उपदेश करने बैठ जाना अनुचित और असभ्यता में शामिल है। अगर आप उनकी राय से सहमत नहीं हों तो वाद-विवाद न करना चाहिए। 'आज्ञा गुरुणामविचारणीया' अर्थात् सांसारिक विषयों में अथवा गृहस्थ के प्रबंध आदि के विषय में, गुरुजनों की आज्ञा की अवहेलना करने का आपको अधिकार नहीं है। परंतु धर्म-संबंधी बातों में आप अपने अंतःकरण की आवाज़ के अनुकूल आचरण करने में स्वतंत्र हैं।

अपने से बड़ों पर शासन करने की चेष्टा अथवा उनके प्रति आज्ञा के शब्द प्रयोग करना एक अक्षम्य अपराध है। उनसे क्रोध में कटु वचन न कहना चाहिए। उनसे सदा विनीत ही होना शोभा देता है। जो व्यक्ति अपने गुरुजन पर क्रुद्ध होता है या उनके प्रति कड़े एवं अपमानसूचक शब्दों का प्रयोग करता है, वह असभ्य है और पशु से भी गिरा हुआ है।

मान लीजिए, आप संयुक्त परिवार के सदस्य हैं। तब आप यदि बाहर से द्रव्य कमाकर या कोई चीज़ खरीदकर लायें तो उसे घर में अपनी पत्नी के सुपुर्द न करके अपनी माता, बड़ी बहन, ज्येष्ठ भ्राता की पत्नी आदि को देना चाहिए। भोजन आदि भी जो घर में बड़ी हों, उन्हीं से मांगना उचित है। यह दूसरी बात है कि यदि वह चाहें तो आपकी पत्नी को ही आपका भोजन या अन्य चीज़ देने का आदेश दे दें। इस प्रकार बड़ों का आदर करने से उनकी आत्मा प्रसन्न होती है। अगर माता आदि अस्वस्थ या अति वयोवृद्ध हों तो यह नियम लागू नहीं होता। किंतु आपको निरंतर यह ध्यान रखना भी आवश्यक है कि आप इस प्रकार अपनी पत्नी की अवहेलना करके परिवार में उसका मान तो कम नहीं कर रहे हैं। पत्नी की इस प्रकार उपेक्षा से भी कभी-कभी पारिवारिक सुख नष्ट हो जाता है।

सुसंस्कृत भारतीयों में परदेश जाने के अवसर पर, या बहुत दिनों के लिए पृथक् होते समय, अथवा बहुत काल के बाद विदेश आदि से वापस आने पर अपने पूज्यों के पैर छूकर आशीर्वाद प्राप्त करने की परिपाटी है। ऐसे अवसरों पर बड़ों को चाहिए कि वह छोटों के सिर पर हाथ फेरकर, गले लगाकर अथवा माथा चूमकर उनको आशीर्वाद दें।

अपने माननीय व्यक्तियों के सामने यथासंभव उनसे ऊंचे आसन पर अथवा उनकी ओर पीठ करके या पैर फैलाकर बैठना या लेटना नहीं चाहिए। न ही उनसे पहले बैठना उचित है; प्रतीक्षा करते रहना चाहिए कि पहले बड़े बैठें।

बड़ों के सामने गुनगुनाते या समय-असमय गाते रहना, उनकी बातों में हस्तक्षेप करना, उनकी उपस्थिति में कहकहा लगाना अथवा निरर्थक हंसना, ज़रूरत से ज्यादा बातें करना आदि असभ्यता के लक्षण है।

जब कभी आप किसी गुरु या अन्य माननीय व्यक्ति के सम्मुख जाएं तो मेज़ पर हाथ टेककर खड़े होना अनुचित तथा यह उद्दंडता का सूचक है।

कोई काम साथ करना हो तो जो छोटा है उसको पहले तैयार हो जाना चाहिए; अच्छा तो यही है कि बड़े भी समय पर ही तैयार हों अर्थात् दोनों ही साथ तैयार हों। परंतु अपने लिए बड़ों से कभी प्रतीक्षा नहीं करानी चाहिए।

अगर कोई बड़ा किसी दूर स्थान स्थित या दूर जाने वाले आदमी को बुलाने के लिए आपसे कहे तो वहीं खड़े होकर चिल्लाने लग जाना अनुचित है; ज़रा आगे बढ़कर उसे बुला लेना चाहिए। यदि किसी बड़े को बुलाना हो तो तेज़ कदम उठाकर उनके पास चले जाइए।

अगर कोई बड़ा आपसे कुछ काम करने के लिए कहे तो उस काम को नौकर या अन्य व्यक्ति पर टाल देना अशिष्टता है। उस काम को यथासंभव स्वयं करना चाहिए।

यदि कोई व्यक्ति आपको सत्कार रूप में कुछ देना चाहता है और वहां आपका कोई गुरुजन या माननीय मित्र भी उपस्थित है, तो आपका कर्तव्य है कि पहले आप उस वस्तु को स्वयं न लें और अपने गुरुजन आदि के ले चुकने के पश्चात् ही ग्रहण करें। अगर किसी भोज आदि की पंक्ति में कोई चीज़ क्रम से दी जा रही है तो ऐसे अवसर पर बड़ों से पूर्व उस चीज़ के लेने में कोई संकोच न करना चाहिए।

अगर आपके सामने आपके माननीय व्यक्ति के हाथ से कोई चीज़ गिर जाय तो आपको फौरन उठाकर वह वस्तु उनको देनी चाहिए जिससे उन्हें झुकने का कष्ट न करना पड़े।

स्त्री और पुरुष

किसी भी व्यक्ति अथवा समाज की सभ्यता की सबसे बड़ी कसौटी यह है कि वह व्यक्ति या समाज अपनी महिलाओं के साथ कैसा व्यवहार करता है। जिस परिवार अथवा समाज में स्त्री जाति का सम्मान होता है, जहां के पुरुष स्त्रियों के आत्म-सम्मान की रक्षा करने में अपना जीवन उत्सर्ग कर देने को उद्यत रहते हैं, वहां सुख, शांति और हर प्रकार का अभ्युदय है। हमारे ऋषि-मुनियों का कथन है कि :

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते, रमन्ते तत्र देवताः।

अर्थात् जहां स्त्रियों का आदर होता है, वहां देवता निवास करते हैं। जहां इसके विपरीत व्यवहार होता है अर्थात् जहां स्त्रियां कष्ट पाती हैं, वहां सारे कार्य निष्फल हो जाते हैं और इस प्रकार के परिवार अथवा समाज शीघ्र नष्ट हो जाते हैं।

अगर अपनी पत्नी से कोई अपराध हो जाय तो उसे प्रेम से, एकांत में समझाना चाहिए; अन्य व्यक्तियों के सामने कहने-सुनने या झिड़कने का तो विचार भी करना ठीक नहीं।

स्त्री को चाहिए कि चाहे उसका दाम्पत्य जीवन कितना ही दुःखी क्यों न हो, वह अन्य लोगों के सामने अपने पति की बुराई न करती फिरे। अगर वह उसके साथ अच्छा व्यवहार नहीं करता है, तो उसकी बुराई करने से स्त्री भी उसी निम्न कोटि को प्राप्त हो जाती है। यही नियम पुरुषों के लिए भी है।

पुरुषों को चाहिए कि यथासंभव स्त्रियों के साथ एक आसन पर न बैठें।

किसी के घर में जिधर स्त्रियां रहती हों, अर्थात् अंतःपुर में न जाना चाहिए। अपने घर में भी किसी प्रकार स्त्रियों को सूचना देकर ही जाना उचित है। संभव है कि वे असावधानी की स्थिति में हों, या घर में अन्य अनजान स्त्रियां भी उस समय उपस्थित हों।

सभा, पार्क आदि में जिधर स्त्रियां हों, जिस सुरक्षित स्थान पर स्त्रियां नहाती हों अथवा जो मार्ग स्त्रियों के लिए ही सुरक्षित हों, वहां व्यर्थ ही ठहरना, घूमना-फिरना और रास्ते से जाना भले आदमियों का काम नहीं है।

स्त्रियों की उपस्थिति में अगर सिगरेट आदि पीना हो तो शिष्टता यही है कि उनकी अनुमति ले ली जाये। अच्छा तो यही है कि उनकी उपस्थिति में धूम्रपान बिल्कुल न किया जाय और अगर पहले से सिगरेट आदि पी रहे हों तो वह फेंक दी जाये या बुझा दी जाये।

विद्यार्थी

पाठशाला में सदैव समय से पांच-सात मिनट पहले जाना चाहिए। आपका कर्तव्य है कि अपने अध्यापक की आज्ञा तथा विद्यालय के नियमों का पालन करें। अगर अध्यापक की ओर से अनुचित कठोरता भी हो जाय अथवा वह दंड भी दें तो उसे चुपचाप सह लेना उचित है।

यदि कोई अपराध हो जाय तो स्वीकार कर लेना चाहिए; फिर चाहे उसके लिए कुछ भी दंड मिले। यदि कक्षा अथवा विद्यालय में कोई चोरी या दंगा हो जाय और आपको उसका हाल मालूम हो तो निर्भय होकर अध्यापक से कह दीजिए।

कमरे में जब अध्यापक या कोई बड़ा आदमी आये तो विनय के साथ खड़े हो जाना चाहिए और जब तक वह न बैठें या आपको बैठने के लिए न कहें, तब तक न बैठना चाहिए।

कक्षा में पढ़ते समय यदि कोई शंका उत्पन्न हो तो खड़े होकर शिक्षक से प्रश्न करना चाहिए।

पढ़ते समय पढ़ने में ही ध्यान रखना चाहिए। इधर-उधर देखना, अध्यापक को धोखा देने के लिए मुंह के आगे पुस्तक करके हंसना अथवा कुछ खाना या बातें करना शिष्ट विद्यार्थियों का काम नहीं है।

यदि विद्यालय में कोई अपरिचित व्यक्ति आये तो आपको उसकी ओर घूर-घूरकर देखना उचित नहीं। आगंतुक कोई बात पूछे तो विनय के साथ बता देना चाहिए, उसका किसी भी प्रकार मज़ाक करना असभ्यता है। संभव है, वह आपके ही किसी सहपाठी का पिता या अन्य संबंधी हो।

अपने साथियों से सदैव प्रेम करिए। आपको चाहिए किसी भी सहपाठी को तंग न करें और निर्धन विद्यार्थियों की यथाशक्ति सहायता करें।

विद्यालय में सब विद्यार्थी बराबर होते हैं। किसी विद्यार्थी को अधिकार नहीं है कि वह अपने घर की दौलत पर गर्व करके अपने किसी निर्धन सहपाठी को घृणा की दृष्टि देखे या किसी भी प्रकार उसको यह अनुभव होने दे कि उसके साथ बराबरी का बर्ताव नहीं किया जाता है।

विद्यार्थियों को प्रत्युत किसी भी व्यक्ति को, नाच-रंग, सिनेमा, नाटक, तमाशे आदि देखने का व्यसन नहीं डालना चाहिए। एक तो, यदि रंगभूमि पर दस अच्छी बातें दिखाई जाती हैं तो बीस बुरी, जिनका देखने व सुनने वालों पर बुरा असर पड़े बिना नहीं रह सकता। दूसरे, उनमें जाने से सारी रात नष्ट हो जाती है, जिससे स्वास्थ्य की हानि होती हैं। हां, यदि देश-प्रेम, धार्मिक अथवा शिक्षाप्रद

फिल्म या खेल आदि हो, जिनमें अश्लीलता लेश मात्र न हो, तो उनके देखने में कोई हानि नहीं है।

मित्र

जहां परस्पर निःसंकोच भाव होता है वहां नियमों के लिए स्थान नहीं रहता; अतएव मित्र के साथ हर समय शिष्टाचार के पालन की आवश्यकता नहीं। परंतु इसका यह अर्थ नहीं है कि मित्र के साथ उद्दंडता का व्यवहार अथवा जान-बूझकर शिष्टता की सीमा का उल्लंघन किया जाए।

पड़ोसी

मनुष्य की सभ्यता और असभ्यता, शिष्टता और अशिष्टता की सबसे बड़ी कसौटी यह है कि उसको वह अच्छा कहे जो उसके सबसे अधिक निकट हो। अतएव पड़ोसी चाहे किसी जाति, बिरादरी या पेशे का हो, सहधर्मी हो अथवा विधर्मी, धनवान हो या कंगाल, विद्वान हो अथवा अशिक्षित, उसके साथ सदैव शिष्ट व्यवहार किया जाय। जो मनुष्य एक-दूसरे के जितने निकट स्थित है, उन पर उतना ही अधिक परस्पर के प्रेम और सहानुभूति का उत्तरदायित्व है क्योंकि वही अविलम्ब अन्य जनों से पहले एक-दूसरे की सहायता को पहुंच सकते हैं।

पड़ोसियों में प्रेम बढ़ाने और संबंध को दृढ़ करने का सर्वोत्तम उपाय परस्पर उपहारों का आदान-प्रदान है। उपहार के लिए किसी बहुमूल्य वस्तु की आवश्यकता नहीं, किंतु खाने-पीने की साधारण चीजें भी इसके लिए पर्याप्त है। उपहार को तुच्छ न समझा जाये और यह नियम दोनों के लिए है; अर्थात् न तो भेजने वाला अपनी साधारण वस्तु को तुच्छ समझकर पड़ोसी को भेजने में झिझके और न दूसरा उस साधारण उपहार को देखकर उसका तिरस्कार करे।

समय-समय पर पड़ोसी के यहां आना-जाना और उसके उत्सव आदि कार्यों में योग देना शिष्टता का चिह्न है।

पड़ोसी के बच्चों के साथ प्रायः अपने ही बच्चों के समान व्यवहार करना चाहिए।

दुकानदार और ग्राहक

दुकानदार का कर्तव्य है कि शीघ्र ही सब ग्राहकों की इच्छा पूरी करे परंतु यदि उसकी दुकान पर काम करने वालों अथवा उसके सहायकों की संख्या पर्याप्त नहीं है या ग्राहकों की संख्या इतनी अधिक है कि सब ग्राहकों की एकदम संतुष्टि नहीं की जा सकती तो उसको चाहिए कि जिस क्रम से ग्राहक दुकान पर आये हैं उसी क्रम से उनकी ओर ध्यान दे।

दुकानदार को चाहिए कि वह ग्राहक की स्थिति, शिक्षा, वय आदि को विचार कर उसे आवश्यक वस्तुएं दिखाने में आगा-पीछा न करे। उसके प्रश्नों का उत्तर पूर्णतया तथा सभ्यतापूर्वक दे और अधीर न हो। साथ ही अपनी वस्तु की मिथ्या प्रशंसा न करे। जिस मूल्य पर वस्तु देनी हो, वही दाम बतलाये और वस्तुओं की नाप-तोल में कमी न करे।

ग्राहक को चाहिए कि वह ऐसी वस्तुएं देखने की इच्छा न करे जो उसे लेनी नहीं हैं अथवा जिनका मूल्य उनकी शक्ति से बाहर है, किसी वस्तु को देखते समय उसे इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि वह जांच के कारण बिगड़ न जाये और व्यापारी की कोई हानि न हो जाए। यदि ग्राहक बहुत समय तक अनेक प्रकार की वस्तुएं देखकर भी कोई वस्तु मोल लेने का निश्चय न कर सके तो उसे चाहिए कि वह अत्यंत साधारण मूल्य की कोई वस्तु अवश्य मोल ले जिससे व्यापारी का कुछ तो समाधान हो जाए और ग्राहक अशिष्टता के अपराध से बच जाये।

वस्तु खरीदते समय आवश्यकता से अधिक बहस या झंझट करना अनुचित है। यदि दुकानदार का बताया हुआ मूल्य उचित मालूम न होता है तो चले आना चाहिए, परंतु तर्क-वितर्क करना अच्छा नहीं।

वे दुकानदार जो अपनी दुकानों पर 'एक भाव', 'उधार न मांगिए' आदि वाक्य लिखकर इन बातों का पालन नहीं करते, गलती करते हैं और वह ग्राहक भी असभ्य हैं जो ऐसे लिखे देखकर भी मूल्य घटाने की बात छेड़ते हैं या उधार मांगते हैं।

कभी कोई चीज उधार न मांगनी चाहिए और यदि उधार खरीदनी ही पड़े तो शीघ्र ही अथवा जब वादा करें, तब उसका मूल्य अवश्य चुका दें।

स्वामी और सेवक

किसी स्वामी को यह उचित नहीं है कि नौकर से किसी चीज़ के टूट जाने या खराब हो जाने पर वह उसका मूल्य या हर्जाना नौकर के वेतन में से काटे। यदि यह बात पहले से निश्चय हो चुकी हो तो दूसरी बात है।

नौकर का कर्तव्य है कि वह जिस काम के लिए रखा गया है, उसके अंतर्गत अपने मालिक की समस्त आज्ञाओं को माने और अपने काम को अत्यंत सावधानी व चतुराई से अंजाम दे।

नौकरों के साथ न बहुत नर्मी बरतना अच्छा है और न अनुचित सख्ती। नौकर की गुस्ताखी या उसके काम की खराबी को सहन न करना चाहिए; साथ ही उस पर हर समय झुंझलाते रहना या उसके प्रति अशिष्ट व्यवहार करना अक्षम्य बात है। अगर आपको क्रोध आ रहा है या आपका स्वभाव चिड़चिड़ा है

तो आप नौकर को झिड़कने का कोई अधिकार नहीं रखते। साथ ही यदि आप किसी समय प्रसन्न हैं तो नौकर की बड़ी-बड़ी गलतियों की भी उपेक्षा कर देना बुद्धिमानी नहीं है।

नौकर को अलग करने का तरीका यह है कि उसको एक महीने का नोटिस दिया जाय अथवा एक मास का वेतन विशेष दे दिया जाय। यदि नौकर कोई दुष्टता करे तो वह बिना नोटिस दिए भी निकाला जा सकता है। यदि नौकर किसी दुष्टता के कारण निकाला जाय अथवा वह स्वयं नौकरी छोड़कर चल दे, तो जिस मास में वह इस प्रकार नौकरी से अलग हो, उस मास का वेतन उसे न दिया जाय।

किसी ऐसे मनुष्य को, जो पहले अन्य की नौकरी में था, अपने यहां यथासंभव उस समय तक नौकर न रखना चाहिए जब तक कि उसके पहले मालिक से उसकी बावत पूछताछ न कर ली गयी हो, विशेषतया जबकि वह पहला मालिक आपका परिचित या मित्र हो।

जो नौकर आपके यहां से काम छोड़े उसके लिए सिफारिश का अथवा अच्छे आचरण का पत्र लिखने का काम बड़ा टेढ़ा है। अगर आप उसकी बावत अच्छा मत नहीं रखते और सब बातें स्पष्ट-स्पष्ट लिखते हैं, तो उसका भविष्य खराब हो जाने का डर है; अगर प्रशंसात्मक-पत्र लिखते है तो उसके भावी मालिकों को धोखा देने और झूठ बोलने के बराबर है। इसलिए नीति यही है कि जो उसमें गुण हों उनका वर्णन कर दें और अवगुणों का जिक्र न करें। अगर अच्छा नौकर है और उसकी बावत आपकी राय नेक है तो उसके जितने भी गुण हैं उन सबको याद करके लिख दें, क्योंकि जिस पहलू का भी आप जिक्र न करेंगे, दूसरा व्यक्ति उसको उसमें त्रुटिपूर्ण मानेगा। सिफारिशी पत्रों में नौकर की सच्चाई, परिश्रम और समझ का उल्लेख जरूरी है।

धर्म-संबंधी

दूसरों के धार्मिक कृत्यों की हंसी नहीं उड़ानी चाहिए और न उसमें हस्तक्षेप करना अथवा अड़चन डालनी चाहिए। धार्मिक वाद-विवाद से यथासंभव दूर रहना चाहिए क्योंकि इसमें बहुधा कटुता पैदा हो जाती है, परंतु धर्मों की परस्पर तुलना व जनता की शिक्षा के लिए शास्त्रार्थ करने में कोई हानि नहीं है।

जब कोई व्यक्ति चाहे आपके धर्म का मानने वाला हो या नहीं, ईश्वर-प्रार्थना कर रहा हो तो यथासंभव उसके सामने या निकट न बैठें। जरूरी काम होने पर भी उससे न बोलें और वहां किसी तरह का ऐसा काम भी न करें जिससे उसके ध्यान में विघ्न पड़े।

ईश्वर-प्रार्थना के समय बीच-बीच में बातें करना, इशारों से बातचीत करना

या लोगों के प्रश्नों का उत्तर सिर या हाथ-पांव हिलाकर देना ठीक नहीं है। भगवान में ध्यान लगाना और सांसारिक बातों में मन देना—ये दोनों काम एक साथ नहीं हो सकते।

चाहे जब, चाहे जहां अपने इष्ट के नाम को चिल्लाकर बोल उठना ठीक नहीं है; इससे आप सनकी साबित होते हैं, न कि भक्त।

सूने मंदिरों की प्रतिमाओं पर, कब्रों पर तथा किसी धार्मिक चिह्नों पर थूकना, पेशाब करना, धूल फेंकना, पत्थर मारना तथा किसी अन्य प्रकार से उन्हें बिगाड़ना असभ्यता है।

यदि किसी भिन्न धर्म वाले पूजास्थान में जाने का अवसर हो तो वहां उस धर्म के विरुद्ध एक भी शब्द न कहा जाय। प्रत्युत आपको उस धर्म के शिष्टाचार का पालन करना चाहिए। उदाहरणार्थ, आर्यों के पवित्र स्थानों में जूते बाहर निकालकर ही और मकबरे, मस्जिद आदि में हाथों में जूतियां लेकर ही जा सकते हैं। ईसाइयों के पवित्र स्थानों में जूते पहनकर जा सकते हैं, लेकिन टोपी उतार लेनी चाहिए। किसी भी धर्म के पवित्र स्थान में तंबाकू पीना उचित नहीं। परंतु शिष्टाचार का यह नियम कदापि नहीं है कि यदि आप मूर्तिपूजक नहीं हैं तो आप मूर्ति के सामने सिर झुकायें अथवा उसकी पूजा करें।

यदि आपके पूजा स्थान में कोई भिन्न धर्म वाला व्यक्ति उचित कारण से आ पहुंचे तो उसके साथ शिष्टता का व्यवहार करना चाहिए। यदि उस भिन्न-धर्मी व्यक्ति को आगे ऐसा न करने की सूचना देनी हो तो भी सभ्यतापूर्वक दी जाय।

१३

परायी संपत्ति का उपभोग

सार्वजनिक और ऐसे स्थानों अथवा वस्तुओं को, जो एक से अधिक व्यक्तियों की संयुक्त संपत्ति हों, उपयोग करने का मूल सिद्धांत यह है कि कोई व्यक्ति ऐसा काम न करे कि जिससे उस व्यक्ति का, उस स्थान या वस्तु पर अपना कुछ विशेष आधिपत्य प्रकट होता हो या वास्तव में ही जमाता हो। ऐसा भी कोई काम न किया जाय कि जिसको यदि सब करने लगें तो वह स्थान या वस्तु उपयोग के योग्य न रह जाय। ऐसे स्थान या वस्तु को इस प्रकार प्रयोग करना चाहिए कि दूसरों के ठीक उसी प्रकार के प्रयोग करने में कोई बाधा न पड़े और सबके प्रयोग होने पर भी वह सुरक्षित रहे अथवा उसका अस्तित्व बना रह सके।

उदाहरणार्थ, किसी व्यक्ति को पार्क आदि में फूल न तोड़ने चाहिए, क्योंकि अगर सबने फूल-तोड़ने आरंभ कर दिये तो वह पार्क न रहेगा अर्थात् ऐसा रमणीक स्थान न रहेगा जहां किसी का जाने को मन चाहे। रेल के डिब्बे में न थूकना चाहिए, क्योंकि अगर सबने थूका तो डिब्बा बीमारी के कीड़ों का अड्डा बन जायेगा और इतना गंदा व दुर्गंधमय हो जायेगा कि भला आदमी उसमें बैठ न सकेगा। आपको सड़क पर अपनी गाड़ी न खड़ी करनी चाहिए, क्योंकि ऐसा करने से दूसरी गाड़ियां उस सड़क पर से नहीं गुजर सकतीं।

पदाधिकारियों को चाहिए कि वह सार्वजनिक संस्थाओं के सेवकों से यथा-संभव अपना कोई निजी काम न लें और न उन संस्थाओं के धन को अपने काम में लायें।

अगर कोई वस्तु-विशेष किसी के आधिपत्य में है अथवा वह उसको प्रयोग कर रहा है तो चाहे वह वस्तु संयुक्त संपत्ति ही क्यों न हो, बिना उस व्यक्ति की अनुमति के न लें। उदाहरणार्थ, बोर्डिंग हाउस की बाल्टी को यदि एक विद्यार्थी इस्तेमाल कर रहा है तो दूसरों को उसे तब लेना चाहिए जबकि वह अपना काम कर चुके।

रेलघर, डाक घर, सिनेमाघर, अजायबघर, सभाभवन, पुस्तकालय, पार्क आदि सार्वजनिक स्थानों पर लगाये हुए नोटिस व निषेधात्मक चिह्न और वाक्य आदि को पहले पढ़ लेना चाहिए और सूचनाओं के अनुकूल ही व्यवहार करना चाहिए।

सार्वजनिक या ऐतिहासिक महत्त्व के स्थान और इमारतों पर अपना नाम या कोई पद्य आदि लिखना अथवा चित्र आदि बनाना अत्यंत अनुचित है। विद्यार्थियों को भी उचित है कि वह विद्यालय की बैंच, डैस्क, मेज़, किवाड़ आदि को न खुरचें और न किसी अन्य प्रकार से खराब करें।

किसी के पास जो वस्तु न हो, अथवा पास होते हुए भी जिससे पाने की आशा न हो, उससे कदापि वह वस्तु न मांगनी चाहिए। बेहतर तो यही है कि किसी से भी कोई चीज़ न मांगी जाये और अपने प्रयोग व आवश्यकता की सब वस्तुएं खरीद ली जायें।

मांगी हुई चीज़ को लापरवाही से काम में न लायें बल्कि बहुत ही सावधानी से इस्तेमाल करें। अपनी वस्तु से भी अधिक उसे संभालकर रखना चाहिए। मंगनी की चीज़ को मंगनी में देना अथवा उसको वापस करने में ढिलाई करना उचित नहीं। जिस दशा में चीज़ लायें, उसी दशा में लौटा दें। यदि वह टूट या खराब हो जाय तो तुरंत, उस व्यक्ति को बिना बतलाये दूसरी चीज़ ला दें।

दूसरों की चीज़ों को या किसी की धरोहर को बिना उसके मालिक की आज्ञा के कदापि काम में न लाना चाहिए, विशेषकर उसकी प्रिय वस्तुओं, फाउंटेन पेन, घड़ी, बाइसिकिल अथवा अन्य यंत्र व हथियार आदि को बिना पूछे प्रयोग करना बहुत नामुनासिब है।

१४

विविध

अलसारी या संदूक में से किसी वस्तु को निकालने के बाद उसे तुरंत बंद कर देना चाहिए।

मकान या कमरे से निकलने या उसमें प्रवेश होने पर दरवाज़ों को बंद करना हो तो धीमे से बंद करना चाहिए। यदि आप उन्हें ज़ोर के साथ बंद करेंगे तो किवाड़ जल्दी टूट जायेंगे और अन्य लोगों का ध्यान भी बंटेगा।

कुर्सी, मेज़, चारपाई आदि हटाना हो तो उसे उठाकर हटाना चाहिए, खींचकर नहीं।

कुर्सी को दीवार से सटाकर न रखिए।

बर्तनों को उठाते या रखते समय उन्हें आपस में खड़खड़ाने मत दीजिए। बर्तनों को ज़ोर से रखना अर्थात् पटक देना भी ठीक नहीं, आहिस्ता से रखना चाहिए। बर्तनों को पैर से ठुकराना अनुचित है।

शीशे की चीज या तेल, पानी दूध इत्यादि का बर्तन बीच रास्ते में न रखिये। अगर प्रयोग भी कर रहे हों तो एक ओर दीवार के पास, कोने में या चौकी आदि के नीचे रखिए और तेल आदि की शीशी में डाट लगाना न भूलिए।

यदि किसी को कोई वस्तु देनी हो तो दाहिने हाथ से देनी चाहिए और दाहिने हाथ से ही लेनी चाहिए।

यदि दूसरे के हाथ में चाकू देना हो तो फल की तरफ से न दें, चाकू का काम खत्म होने पर खुला न छोड़ें। इसी प्रकार सुई को, काम हो जाने के बाद वहीं पड़ा न रहने दें; उसके रखने के स्थान में रख दें।

कुछ लोगों की आदत होती है कि कैंची हाथ में आते ही उसे चलाने लगते हैं। जो कुछ सामने आया, उसी पर हाथ साफ किया। खाली बैठे कागज ही काटा करते है, यह बुरा है।

मकान में चित्र आदि लगाना अच्छा हैं, परंतु अश्लील अथवा अत्यधिक चित्र

न लगाने चाहिए। स्त्रियों की बैठक में आदर्श नारियों की तस्वीरें और पुरुषों के कमरे में धर्मात्मा, वीर और देशभक्त पुरुषों के चित्र तथा दोनों प्रकार की बैठकों में धार्मिक पुस्तकों व महापुरुषों के शिक्षाप्रद्र वाक्यों को मोटे सुंदर अक्षरों में लिखकर दीवारों पर लगा देना चाहिए जिससे गृहस्थ और उनके बच्चों के सामने अच्छे विचार पैदा करने वाले दृश्य हर समय उपस्थित रहें।

यथासंभव किसी पक्षी अथवा कुत्ते आदि का जोड़ा नर-मादा न पालना चाहिए। किसी काटने वाले भयंकर कुत्ते को न पालना चाहिए जिसके कारण आपसे भेंट करने वालों को भय हो, परंतु अगर आबादी से बाहर अथवा ऐसे स्थान में मकान हो जहां चोर आदि का डर रहता हो, तो ऐसा कुत्ता रखा जा सकता है।

किसी भी समय अश्लीलता या गंदगी का व्यवहार न करना चाहिए। होली भी अच्छी प्रकार सम्मानपूर्वक खेली जा सकती है।

जिस जाति के लोग या जो धर्मावलंबी, जैसे मुसलमान व ईसाई, होली के व्यवहार को नहीं मानते, उन पर रंग या गुलाल आदि उनकी अनुमति के बिना न डालना चाहिए।

अपने मैले हाथों को किसी दूसरे व्यक्ति के वस्त्र से चुपचाप पोंछने का विचार भी मत करें।

किवाड़ तथा अन्य स्थानों के छिद्रों में से चुपचाप अकारण ही आंखें लगाकर किसी के घर में अंदर की ओर देखना असभ्यता है।

किसी की गुप्त बात अथवा कार्य आपको मालूम हो या किसी ने गुप्त बात कही हो या उसे प्रकट करने से मना कर दिया हो, तो बिना किसी प्रबल कारण के क्रोध अथवा अदूरदर्शिता के वेग में वह बात प्रकट न कर डालना चाहिए।

किसी भी चिट्ठी, दिनचर्या अथवा अन्य बात तो किसी व्यक्ति ने अपनी डायरी या नोटबुक में लिखी हो, बिना उसकी आज्ञा के देखने या पढ़ने की असभ्यता न करें।

किसी के दफ्तर में जाकर वहां कागज-पत्रों को पढ़ने की चेष्टा करना बड़ी गलती है।

चुटकी अथवा मुंह से सीटी बजाने की आदत अच्छी नहीं है। किसी कमरे या कार्यालय में काम होता हो तो उसमें या उसके पास इस तरह से न जायें या निकलें कि अंदर वालों का हर्ज हो। किसी व्यक्ति को अचानक चौंकाने का प्रयत्न न करें। कभी-कभी इसका भयंकर परिणाम हो सकता है और तब पश्चात्ताप के अतिरिक्त कोई इलाज अपने पास नहीं रह जायेगा।

यदि किसी मित्र या संबंधी के यहां से भेंट, उपहार में मिठाई या फल-फूल आदि आयें तो लाने वाले सेवक को कुछ इनाम अवश्य देना चाहिए।

अगर दैवयोग से किसी दूसरे की खोई हुई कोई वस्तु आपको मिल जाय तो उसके मालिक का पता लगाकर उसे लौटा देना चाहिए। यदि पता न लगे तो उसे किसी सार्वजनिक, उपयोगी संस्था के सुपुर्द कर देना चाहिए या किसी सरकारी दफ्तर में जमा कर देनी चाहिए जहां से उसका मालिक पता लगाने पर प्राप्त कर सके।

बिना बुलाये किसी ऐसे उत्सव में न जाना चाहिए जो सार्वजनिक न हो। यदि उस समय उस ओर या उधर आसपास जाने का कोई कार्य निकल भी आये तो टाल जायें।

चाहे कितना ही कष्ट हो, ऋण मत लें, विशेषकर स्त्री से। यदि ऋण लेना ही पड़े तो उसे जल्द चुकाने की चिंता करें। मित्र से कर्ज़ मत लें, क्योंकि इससे मित्रता भंग हो जाने की आशंका रहती है।

मज़दूरों की मजदूरी देने में कभी टालमटोल न करनी चाहिए।

यों तो किसी की भी नकल करना, ताना मारना, मुंह चिढ़ाना अथवा खिल्ली उड़ाना या सताना अच्छा नहीं है, परंतु किसी अंगहीन या अधिक अंग वाले, तुतलाकर बोलने वाले, कुरूप, बूढ़े, पागल, कोढ़ी, दीन, असहाय अथवा निर्धन आदि की तो कदापि परोक्ष में या उसके सामने नकल करना अथवा ताना मारना या मुंह चिढ़ाना या उस को किसी, अन्य प्रकार छेड़ना व सताना नहीं चाहिए। किसी व्यक्ति के ऐसे दोष की आलोचना करना अथवा मज़ाक उड़ाना, जिसके लिए वह ज़िम्मेदार नहीं है, या किसीको विपत्ति में फंसा देखकर हंसना बड़ी निर्दयता व अशिष्टता है। ऐसे मनुष्यों के अथवा उनके बच्चों के सामने भूलकर भी कोई ऐसी बात कहना या ऐसा काम करना उचित नहीं जिससे उनके मन पर अपनी हीन अवस्था के कारण चोट पहुंचे।

जो किसी को देखकर हंसता है उसे याद रखना चाहिए कि दूसरों को भी उस पर हंसने का अवसर मिल सकता है।

दुखियों की आह सुनकर यदि आप हंसेंगे, दीन-हीन एवं अनाथों की आंखों के आंसू न पोंछकर यदि आप घृणा के साथ उनकी उपेक्षा करेंगे, तो इस संसार में आपके आंसू पोंछने कौन आयेगा! संकट में आपकी सहायता कौन करेगा!

दूसरा भाग

स्वास्थ्य और शिष्टाचार

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

१५

स्वास्थ्य

हमारे धर्मशास्त्रों में लिखा है कि "धर्मार्थकाममोक्षाणामारोग्यं मूलमुत्तमम्", अर्थात् धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चारों की उत्तम जड़ शरीर का आरोग्य ही है। मतलब यह है कि बिना नीरोग शरीर के प्राणी न अपने धर्म अर्थात् कर्तव्य का पालन कर सकता है, न अर्थ अर्जित कर सकता है, न काम सिद्ध कर सकता है और न मोक्ष के लिए ही कुछ उपाय कर सकता है।

धन, संतान स्त्री आदि के द्वारा प्राप्त संसार में जितने भी सुख हैं, उनमें नीरोगता ही प्रधान सुख है; क्योंकि इस एक के बिना अन्य सारे सुख फीके और निराधार जान पड़ते हैं। अस्वस्थ मनुष्य संसार में कोई कार्य सुचारु रूप से नहीं कर सकता, चाहे उसके निश्चय कितने ही अच्छे और पवित्र क्यों न हों। इसका कारण यह है कि अस्वस्थ मनुष्य की इच्छाशक्ति निर्बल हो जाती है और वह अपने शुभ संकल्पों को कार्य रूप में परिणत नहीं कर सकता।

कुछ लोग धन को ही संसार में सबसे बड़ा सुख मानते हैं और धन-प्राप्ति के लिए ही संसार का बहुत कुछ व्यापार चलता भी है। परंतु स्वास्थ्य का स्थान उससे ऊपर है। प्रकृति दोनों हाथों से अपना ऐश्वर्य बखेरती है, परंतु रोगी उनसे वंचित रह जाता है। एक करोड़पति, यदि उसका स्वास्थ्य ठीक न रहता हो और उसको भोजन न पचता हो, तो ऐश्वर्य की समस्त सामग्री होते हुए भी जीवन का सुख नहीं भोग सकता। इसी कारण बड़े-बड़े धनी लोग स्वास्थ्य के लिए अपना सारा धन न्योछावर करने को तैयार हो जाते हैं, जिससे सिद्ध होता है कि रोगी धनवान की अपेक्षा नीरोग और बलवान गरीब मनुष्य कहीं अधिक सुखी होता है। किसी ने सच कहा है—"तंदुरुस्ती हजार नियामत है।"

संसार का कोई भी मनुष्य प्राकृतिक नियमों के अनुकूल चलने से स्वास्थ्य-लाभ कर सकता है। साथ ही, स्वास्थ्य में ईश्वर ने यह अनोखापन रखा है कि

वह रुपये से खरीदा नहीं जा सकता, राजसत्ता या वैभव द्वारा प्राप्त नहीं किया जा सकता और मित्र या स्वजनों से उपहार के रूप में नहीं मिल सकता।

पैसे का महत्त्व पैसे वाला इतना नही जानता; पैसे का मूल्य तो निर्धन से पूछो। इसी प्रकार स्वास्थ्य का महत्त्व वे ही अच्छी तरह से जानते है जो स्वास्थ्य को खो चुके हैं और दूसरों के स्वास्थ्य को देख-देखकर अपने हृदय में एक अव्यक्त पीड़ा का अनुभव करते हैं।

संसार में अत्याचार के निवारण के लिए उपयुक्त शक्ति की आवश्यकता है; निर्बल मनुष्य अपसे आत्मसम्मान और स्वत्व की भी रक्षा नहीं कर सकता। ऐसे मनुष्य का जीना व्यर्थ है। कैसा ही बड़ा विद्वान क्यों न हो, अत्याचार के निवारण की सामर्थ्य न रखकर, उपदेशमूलक सुंदर श्लोकों को बार-बार पढ़ने मात्र से वह देश, कुटुंब और स्वयं अपने प्रति कर्तव्य का पालन नहीं कर सकता।

पूर्णतया नीरोग मनुष्य दुनिया में बहुत ही थोड़े मिलेंगे। साधारणतः वह मनुष्य नीरोग समझा जाता है जो आनंद से खाता-पीता है, चलता-फिरता है और वैद्य को नहीं बुलाता; पर विचार करने से मालूम होगा कि यह भूल है। ऐसे उदाहरणों की कमी नहीं है कि खाते-पीते और चलते-फिरते मनुष्य भी रोगी हैं, लेकिन बीमारी की परवाह न करने के कारण अपने को नीरोग मान बैठे हैं। महात्मा गांधी अपने 'आरोग्य दिग्दर्शन' नामक ग्रंथ में लिखते हैं :

"जिनका शरीर अखंड है, शरीर में किसी तरह की कमी नहीं, कान, आंख इत्यादि अपना कार्य ठीक-ठीक करते हैं, नाक नहीं बहती, चमड़े से पसीना बहता तो है परंतु उसमें दुर्गंध नहीं आती, मुंह से बदबू नहीं निकलती, हाथ-पैर परिश्रम कर सकते है, जिनका शरीर न बहुत मोटा है न पतला, जो विषयों में नहीं फंसते और जिनकी इंद्रियां और मन सदा वश में रहते है, वे ही नीरोग हैं।"

हमें ऐसा आरोग्य न मिलने का प्रथम कारण यह है कि हमारे माता-पिता को ऐसा आरोग्य प्राप्त नहीं था। एक बहुत बड़े लेखक का कथन है कि माता-पिता हर तरह से योग्य हों तो उनकी संतति उनसे बढ़ी-चढ़ी होनी चाहिए। दूसरा कारण यह है कि हम लोग प्रत्येक दिन स्वास्थ्य-रक्षा के नियमों की अवहेलना करते हैं, जिनका पालन किए बिना स्वस्थ से स्वस्थ माता-पिता की संतान भी नीरोग और बलवान नहीं रह सकती। आदर्श स्वास्थ्य वाले माता-पिता यदि हमको मिल जाते तो हम बड़े सौभाग्यशाली होते, लेकिन यह हमारे हाथ की बात नहीं। तथापि हमको निराश नहीं होना चाहिए। अच्छा स्वास्थ्य, शुद्ध पुष्टिकारक भोजन, गाढ़ निद्रा, व्यायाम, नियमित दिन-चर्या और स्वच्छता से भी प्राप्त हो सकता है। बलवान व स्वस्थ बनने व रहने के लिए यह अनिवार्य नहीं कि मनुष्य जन्म से शक्तिशाली और तंदुरुस्त हो। प्रोफेसर राममूर्ति और

लंदन-निवासी इबगन सैंडो के उदाहरण हमारे सामने हैं जो अपनी बाल्यावस्था में बहुत निर्बल थे, परंतु स्वास्थ्य-सुधार के नियमों की ओर ध्यान देने और तदनुकूल आचरण करने से उन्होंने अपने बल और पराक्रम से संसार को चकित कर दिया। अतएव उच्च आरोग्य प्राप्त करने के लिए हमें प्रयत्नशील होना चाहिए।

संसार में बहुसंख्यक लोग अकाल-मृत्यु से मरते है। कहना अनावश्यक है कि अकाल-मृत्यु बीमारियों से ही होती है। वेद में आया है :

इमं जीवेभ्य: परिधि दधामि मैं षां नु गादपरो अर्थमेतम्।
शतं जीवन्तु शरद: पुरुचरिन्तमृत्यु दधातां पर्वतेन॥

—ऋ० १०।१८।४

अर्थात् "मैं मनुष्यों की आयु की मर्यादा १०० वर्ष नियत करता हूं। इससे पहले इस जीवन-धन को न गंवाओ; सौ वर्ष जीओ और अकाल-मृत्यु को पर्वत से दबा दो।"

दूसरे देशवासियों की औसत आयु पचास-साठ वर्ष है और हिंदुस्तानियों की सत्ताईस वर्ष। एक हिंदुस्तानी बचपन से एकदम बुढ़ापे के दर्शन करता है; वह नहीं जानता कि नौजवानी की मस्ती क्या होती है और वास्तविक स्वास्थ्य का सुख किसे कहते हैं।

हमारा दुर्भाग्य हैं कि भारत, जो अतीत काल से वीरों की प्रसवभूमि चला आया है, आज कायर, मृतप्राय, दुर्बल आत्मा और दुर्बल शरीर वाले व्यक्तियों के रहने का स्थान बन गया है। हमारे पूर्वजों के कारनामे आज हमारे लिए सुख-स्वप्न बनकर ही रह गये हैं; जो आरोग्य उनको प्राप्त था, पराक्रम उन्होंने दिखलाया, जिस प्रकार उन्होंने अपने मानसिक व शारीरिक प्रभुत्व का सिक्का संसार में जमाया, वह आज हमारे लिए केवल गाथा तथा कल्पनामात्र है, जिसको हम कार्य में परिणत करने का साहस ही नहीं रखते। दूसरे देशों के नवयुवक अथाह समुद्र पार करके दूरस्थ प्रदेशों में अपनी पताका फहराते हैं; उनकी माताएं अपने देश की लाज रखने के लिए उनकी पीठ ठोंककर गगन में उड़ने के लिए सीधे मौत के मुंह में भेज देती हैं; वे हिमालय की चोटी को पार करने, सौर-मंडल के ग्रहों तथा उपग्रहों के रहस्य खोजने के लिए और ध्रुव की खोज करने के लिए ऐसे चल देते हैं जैसे वधू को विदा कराने के लिए जा रहे हों! इसका कारण एक है, और वह है स्वास्थ्य—मानसिक व शारीरिक आरोग्य! उन्नत देशों के निवासी संशय से पूर्ण नहीं होते, वरन् अपनी भुजाओं के बल पर अपने पुरुषार्थ पर विश्वास करते हैं। किंतु हमारे देश के लाड़ले नौजवान दैव पर भरोसा रख, हाथ पर हाथ धरकर बैठे रहते हैं और ढाक के वृक्ष को भूत समझकर

बेहोश हो जाते हैं। क्या वह ज़माना भी कभी आयेगा जब हमारे देश के नौजवान भी स्वस्थ बनकर छाती चौड़ी करके इस भूमि पर विचरेंगे और संसार की दौड़ में यश लूटकर अपने को धन्य करेंगे और इस प्रकार भारत माता का मस्तक ऊंचा करेंगे ?

यह पुस्तिका आदर्श स्वास्थ्य की ओर संकेतमात्र है, छोटा-सा एक प्रयत्न है। इस पुस्तक के दो भाग हैं; पहले में केवल शिष्टाचार का वर्णन किया गया है और दूसरे में स्वास्थ्य और शिष्टाचार दोनों का।

पाठक शंका कर सकते हैं कि शिष्टाचार और स्वास्थ्य-रक्षा का परस्पर क्या संबंध है, जिस कारण दोनों विषयों का एकसाथ प्रतिपादन करना आवश्यक समझा गया है ? इसमें कोई संदेह नहीं कि दोनों विषय एक-दूसरे से अलग हैं और यह अनिवार्य नहीं कि शिष्टाचारी व्यक्ति स्वस्थ ही हो और स्वस्थ मनुष्य शिष्टाचारी भी हो। परंतु साथ ही यह भी निर्विवाद है कि मनुष्य के नित्य के जीवन में कदम-कदम पर दोनों विषयों के ज्ञान की आवश्यकता है; शिष्ट आचरण के बहुत-से ऐसे नियम हैं जिनके बिना स्वास्थ्य कायम नहीं रह सकता और स्वास्थ्य-रक्षा के बहुत-से ऐसे आदेश हैं जिनका पालन किए बिना कोई मनुष्य शिष्ट नहीं कहा जा सकता। प्रत्येक मनुष्य को स्वच्छ कपड़े पहनने चाहिए, अपने दांत साफ रखने चाहिए और नख न बढ़ने देने चाहिए। यह केवल इसलिए नहीं कि इससे उसके स्वास्थ्य पर असर पड़ता है, परंतु इसलिए भी कि ऐसा न करने से दूसरों को उससे घृणा होती है, अतः कपड़े मैले और दांत अस्वच्छ अथवा नख बढ़े हुए रखना शिष्टाचार के भी विरुद्ध है। दूसरी ओर शिष्टाचार के ऐसे नियम हैं—अपने गुरुजनों से पूर्व समय पर बिस्तर त्याग देना, प्रातःकाल के नित्य कर्मादि से निवृत्त होकर आवश्यक कार्य के लिए तैयार हो जाना आदि—जिनका स्वास्थ्य-रक्षा से भी उतना ही संबंध है। सार यह है कि ये दोनों विषय परस्पर ऐसे गुंथे हुए हैं, दोनों सभ्य जीवन के ऐसे आवश्यक अंग हैं कि बच्चों अथवा बड़ों को यदि एक का पाठ पढ़ाने बैठें तो दूसरा सहसा अवश्यमेव ही सामने उपस्थित हो जाता है।

१९

प्रातःकाल उठना

यदि आप सर्वदा स्वस्थ रहकर सुख से जीवन व्यतीत करना और दीर्घजीवी होकर स्वार्थ तथा परमार्थ दोनों का साधम करना चाहते हैं, तो आपको रात के चौथे प्रहर में सूर्योदय से कम-से-कम चार घड़ी पहले अपने बिस्तरे को छोड़ देने की आदत डालनी चाहिए।

जो लोग ब्राह्म मुहूर्त में सोते रहते है अर्थात् दिन चढ़े उठते हैं, वे प्रायः अल्पायु और आलसी होते हैं, उनका स्वास्थ्य नष्ट हो जाता है, मन मलीन रहता है और कामकाज में दिल नहीं लगता।

देव-वेला में उठने से बुद्धि बढ़ती है और मन की सद्वृत्तियां जाग्रत रहती हैं, जो मनुष्य को भले कामों की ओर प्रेरित करती हैं। इस नियम के पालन से सवेरे शौचनिवृत्ति की आदत पड़ जाती है, जिससे पेट के रोग, जो शरीर के अन्य बहुत-से विकारों के भी मूल कारण हैं, उत्पन्न नहीं होते। इसके अतिरिक्त सवेरे उठनेवाला मनुष्य अपना सारा काम समय पर कर सकता है और उसको कभी समय की कमी की शिकायत नहीं रहती।

सूर्योदय से कुछ पहले की हवा स्वास्थ्य के लिए अमृत समान होती है। वह दुर्गंधरहित, अत्यंत शुद्ध होती है और उसमें धूल के कण नहीं होते। इस हवा से लाल खून की तेजी बढ़ती है, शरीर में तेज व बल का संचार होता है, एक प्रकार की फुर्ती आ जाती है और काम करने में उत्साह होता है।

अंग्रेज़ी की एक कहावत में प्रातःकाल उठने का गुण इस प्रकार वर्णन किया गया है : "प्रातःकाल उठने से मनुष्य स्वस्थ, धनवाम और बुद्धिमान बनता है।"

१७

नित्य कर्म अथवा शारीरिक सफाई

प्रात: उठते ही सूर्योदय से पूर्व शौच जाने की आदत डालनी चाहिए, शौच आदि नित्य कर्म से निवृत्त होने के बाद ही कोई अन्य काम करना ठीक है।

मनुष्य को नित्य समय पर मल त्यागने की आदत डालनी उचित है। अगर किसी दिन समय पर हाजत न हो तो भी शौचालय में अवश्य जाना चाहिए। ठीक समय पर स्वच्छता से मल-त्याग हो जाने से दिन-भर स्फूर्ति, उद्योगशीलता और प्रसन्नता रहती है और प्रमाद, अग्निमंदता, उदर-पीड़ा तथा ज्वर आदि रोग नहीं सताते।

नियत समय के अतिरिक्त भी जब कभी लघुशंका व शौच की बाधा उपस्थित हो तो उसकी निवृत्ति के लिए फौरन जाना चाहिए, कभी देर न करनी चाहिए, चाहे कैसा ही आवश्यक काम बीच में छोड़ना पड़े। मल-मूत्र के वेग को रोकने से शरीर में तरह-तरह के रोग हो जाते हैं।

यदि सुबह जागते हो, शौच जाने से पूर्व, कुल्ला करके रात को ढांपकर रखे हुए पानी के आठ घूंट हथेली पर लेकर आचमन की भांति पी या सड़प ली जायें, तो कोष्ठबद्धता दूर होती है और अन्य बहुत-से लाभ होते हैं। तांबे के पात्र में पानी रखा जाय तो अति उत्तम है। परन्तु शौच के अर्थ गर्म पानी अथवा चाय नहीं पीनी चाहिए, इससे मेदा खराब हो जाता है।

शौच व लघुशंका के लिए सदैव जूते पहनकर ही जाना चाहिए, ताकि पैर गंदे न हों।

अगर आप शौचालय में टट्टी जायें तो शरीर पर कोट आदि अधिक और तंग कपड़े लादे रहना उचित नहीं है, कम-से-कम तथा ऐसे वस्त्र पहनने चाहिए जिससे बैठने में सुविधा हो। जंगल में शौचनिवृत्ति के लिए जायें तो भी कोट आदि उतारकर अलहदा रख देने चाहिए।

पानी के लिए तामलोट रखना कुछ अच्छा नहीं, क्योंकि प्राय: वह गंदा रहता

है। शौच के लिए ऐसे बर्तन में पानी ले जाना ठीक है जो बाद में साफ किया जा सके। दूसरे के घर अगर शौच जाना हो तो उसके तामलोट को तो कदापि इस्तेमाल नहीं करना चाहिए।

शौच के लिए बड़े लोटे में पर्याप्त, ठंडा जल ले जाना चाहिए, गर्म पानी इस्तेमाल करने से बवासीर रोग हो जाने की आशंका रहती है। परंतु बर्फ के समान ठंडा पानी भी हानिकर है।

जंगल में मल-त्याग के लिये जायें तो भी यथासंभव शौच के लिये लोटे में जल ले जाना चाहिए, नदी-नाले व तालाब के जल को मल-शौच से अपवित्र करना बुरा है।

पुरुष के लिये घर के शौचालय की अपेक्षा बस्ती से बाहर, दूर जंगल में शौच के लिये जाना हितकर है, जिससे घर की वायु अशुद्ध न हो और शुद्ध वायु में टहलना हो जाय। परंतु जहां निकट दूसरा व्यक्ति उपस्थित हो, वहां खुले स्थान में शौच के लिए न बैठना चाहिए। जंगल में शौच अथवा लघुशंका के लिए इस प्रकार बैठना चाहिए कि हवा न सामने से आ रही हो और न पीठ की ओर से। यदि तेज़ हवा सामने से आयेगी तो मूत्र के छींटे शरीर पर उड़कर गिरने की आशंका रहती है और हवा पीछे से आयेगी तो मल की बदबू आयेगी। ताल या नदी के किनारे, कुएं या बावली के पास, रास्ते में या रास्ते के बहुत निकट, वृक्षों के नीचे, सूने घर में, पुराने खंडहर में, श्मशान या कब्रिस्तान में अथवा अन्य किसी सार्वजनिक या पवित्र स्थान में भूलकर भी पाखाना या पेशाब नहीं करना चाहिए। कारण स्पष्ट है। उन खेतों में भी शौच के लिए न जाना चाहिए जिनमें फसल बोई जा चुकी हो, क्योंकि ऐसे खेतों में मल त्यागने से उनमें पैदा हुई जिंस पर बुरा असर पड़ता है।

मल-मूत्र त्यागने के समय किसी से बातें करना, गीत गाना और सिगरेट आदि पीना अनुचित है। कुछ लोग शौचालय में जाकर किताब व समाचारपत्र आदि पढ़ते हैं, यह भी बुरी आदत है। मल त्यागने की क्रिया पर ही ध्यान केंद्रित रखने से मल साफ आयेगा। जहां शौच के समय उस क्रिया की ओर ही ध्यान रखना जरूरी है वहां बलपूर्वक मल निकालने का प्रयत्न करना अर्थात् मिनछना भी उचित नहीं, न ही बहुत देर तक बैठे रहना—चाहे दुबारा ही क्यों न जाना पड़े। क्योंकि जोर लगाने अथवा बहुत देर तक बैठने से आंतें निर्बल पड़ जाती हैं।

दरवाज़े पर या दुबारी में पाखाना बनवाना ठीक नहीं है, इससे घर की वायु अशुद्ध हो जाती है। शौचालय ऐसी जगह और इस प्रकार बनवाना चाहिए जिससे उसकी हवा सारे मकान में न फैल सके और उसके अंदर सूरज की रोशनी अच्छी तरह पहुंच सके। उसका फर्श पक्का और ढालू होना चाहिए, साफ और चिकने

पत्थर का फर्श अच्छा रहता है। पाखाने की दीवार साल में दो बार बाहर और भीतर से दो-दो फुट ऊंची तारकोल से पुतवा देनी चाहिए। तारकोल में गंध सोखने की शक्ति होती है। शौचालय को, बहुधा हो सके तो नित्य प्रति फिनाइल से धुलवाना उचित है। मल त्यागने के लिये छोटी-छोटी बाल्टियां अथवा मिट्टी के कूड़ों आदि का प्रयोग करना चाहिए, जिससे शौचालय के साफ रहने व करने में सहूलियत रहे। महात्मा गांधी का कथन है कि "अगर कोई मुझसे कहे कि अमुक मकान बहुत स्वच्छ है तो सबसे पहले मैं उसका शौचालय देखना चाहूंगा, यदि वह स्वच्छ नहीं तो सारा मकान ही गंदा है।"

शौचालय में राख रख लेनी चाहिए और जिस जगह या खुड्डी पर मल त्यागा है उससे हटकर दूसरी जगह आबदस्त लेकर मल पर राख डाल देनी चाहिए। खेत या जंगल में शौच जायें तो यथासंभव वहां भी मल पर मिट्टी डाल देनी चाहिए। ऐसा करने से मल में दुर्गंध न आयेगी, शौच जाने वाले किसी अन्य मनुष्य को घृणा उत्पन्न नहीं होगी, साफ करने वाले भंगी को भी आसानी रहेगी। मक्खियां बैठकर गंदगी न फैला सकेंगी और जंगल में मल जल्द गलकर मिट्टी रूप धारण कर लेगा।

शौच से आकर लोटे और हाथों को दो बार शुद्ध मिट्टी लगाकर अथवा साबुन मलकर खूब अच्छी तरह साफ करना चाहिए। परंतु जहां कहीं की मिट्टी काम में लाना ठीक नहीं है। देख लो कि जहां से मिट्टी लेते हो उस जगह को लोग गंदा तो नहीं करते। यदि ऐसी मिट्टी घर पर जमा करो तो उसको कनस्तर आदि में रखो, जमीन पर रखने से बिल्ली आदि जानवर उसको गंदा कर देते हैं। स्टेशनों पर शुद्ध मिट्टी का मिलना प्रायः असंभव होता है। अतः रेलगाड़ी में लंबा सफर करना पड़े तो साबुन या पिसी हुई मिट्टी एक डिब्बी में अपने साथ रख लेनी चाहिए।

शौच से आने के बाद, प्रत्येक बार कुल्ला करना और मुंह व आंखें और आसानी से हो सके तो, पैर भी धो लेने चाहिए।

लघुशंका

सफाई की दृष्टि से लघुशंका के बाद भी पानी का प्रयोग करना उचित है। स्तंजा करने की हिंदुओं को

गृहीतशिश्नश्चोत्थाय मृद्भिरभ्युद्धृतैर्जलैः।
गन्धलेपक्षयकरं शौचं कुर्यादतन्द्रितः॥
—याज्ञवल्क्य स्मृति आचाराध्याय १७॥

स्मृतियां भी आज्ञा देती हैं और इस्लाम ने तो इस पर बहुत बल दिया है। अतः

स्तंजा करने का रिवाज बहुत अच्छा है, परंतु बाज़ार व गली में खड़े होकर अथवा चलते-फिरते स्तंजा करना निर्लज्जता है। जो पुरुष अपने साथ पानी न ले जायें अथवा जिन्होंने मिट्टी से स्तंजा किया हो, उन्हें चाहिए कि क्रिया के अनंतर हाथ अवश्य धो लेवें।

साधारणतया खड़े होकर पेशाब नहीं करना चाहिए क्योंकि इस हालत में पेशाब के छींटे शरीर और वस्त्रों पर पड़ जाने का डर रहता है। बेपर्दगी हो जाने की संभावना के कारण भी ऐसा करना अशिष्टता है। अगर ये आशंकाएं न हों या स्थान बैठने योग्य न हो तो खड़े होकर मूत्र करने में कोई अनौचित्य नहीं है।

पेशाब नर्म ज़मीन पर करना चाहिए क्योंकि सख्त ज़मीन से पेशाब के छींटे उड़कर शरीर पर पड़ सकते हैं।

जहां किसी दूसरे ने कुछ देर पहले पेशाब किया हो, ठीक उसी स्थान पर पेशाब न करना चाहिए जब तक कि वह पानी से साफ न कर दिया गया हो। ऐसा करने से मूल-संबंधी रोग एक से दूसरे को लग जाते हैं। अतएव घर में जिस जगह लघुशंका की हो, उस जगह को पानी डालकर साफ कर देना चाहिए, जिससे दूसरे भी उस जगह को इस्तेमाल कर सकें और घर में दुर्गंध भी न फैले।

पेशाब किसी बहुत गर्म स्थान पर नहीं करना चाहिए क्योंकि गर्म स्थान पर पेशाब करने से उसकी भाप सीधी मुंह पर आयेगी। इसके अतिरिक्त उस भाप से उपस्थेंद्रिय में रोग हो जाने की आशंका रहती है।

सड़क की नाली पर बैठकर या ऐसे स्थान में पेशाब नहीं करना चाहिए जहां मनुष्य आते-जाते हों। शहरों में आवश्यकता हो तो सार्वजनिक पेशाब-घर को इस्तेमाल करना चाहिए।

प्रत्येक घर में शौचालय के अतिरिक्त लघुशंका के लिए एक स्थान-विशेष हवा का रुख बचाकर निश्चित कर देना और उसको अक्सर फिनाइल से धुलवा देते रहना चाहिए। आंगन में, अहाते में, स्नानागार में विशेषकर जबकि वह कच्चा हो, घर से बाहर दरवाज़े व दीवारों के निकट पेशाब करने से वायु अशुद्ध होती है और गंदगी फैलती है।

दांत

दांतों की ठीक सफाई न रखने से अन्न अथवा शाक से छोटे-छोटे टुकड़े उनके बीच अटके रहते हैं और वहां ही सड़कर एक तरह की गंदगी पैदा करते हैं। इनसे दांतों को बड़ी खराबी पहुंचती है। कीड़े लग-लगकर दांत गल जाते हैं और खोखले हो जाते हैं। एक दांत के खराब होने से अन्य दांत भी धीरे-धीरे खराब होने लगते हैं और चबाने की ताकत जाती रहती है। दांतों के मैले रहने से मुंह

में बदबू हो जाती है जो दूसरों को असह्य होती है और उनमें 'पायरिया' नामक भयानक रोग हो जाता है जिसमें दांतों की जड़ों से पीप निकलने लगती है। यह पीप या विष भोजन के साथ पेट में पहुंचता है और मंदाग्नि आदि पेट की बीमारियां, खांसी और क्षय रोग उत्पन्न कर देता है। कहावत है कि साफ मुंह आरोग्यता का द्वार है। दांतों का स्वास्थ्य पर इतना व्यापक प्रभाव पड़ता है कि गर्भवती और दूध पिलाने वाली माता के दांत खराब होंगे तो बच्चे का स्वास्थ्य भी खराब हो जायेगा। इसलिए दांतों की सफाई अत्यंत आवश्यक है।

रोज सवेरे, खाना खाने अथवा दूध या चाय आदि पीने के बाद, जब-जब पान खाया जाए और रात्रि को सोने से पहले भी दांतों को साफ करना चाहिए। प्रातःकाल के समय दांतों की सफाई के लिए दातुन : दंत धावन : करना अति लाभदायक है। दातुन करने से मुंह की बदबू, दांतों का मैल और कफ का नाश होता है, उज्ज्वलता, अन्न में रुचि और चित्त में प्रसन्नता होती है। दातुन नीम, बबूल, करंज, महुए, खैर, मौलसिरी या किसी भी कसैले, मीठे, कड़वे या तीखे रसवाले वृक्ष की शाखा की हो सकती है। शाखा को कुचलकर मुलायम कूची बना लेनी चाहिए और दांतों को बाहर व भीतर से इस तरह सावधानी से साफ करना चाहिए कि मसूढ़े न छिलने पावें। आजकल ब्रुश का व्यवहार बढ़ता जा रहा है, परंतु दातुन ब्रुश से अधिक लाभदायक है। परंतु जिनके दांत निर्बल हो गये हैं, उनके लिए ब्रुश का प्रयोग करना अच्छा है। अगर ब्रुश का प्रयोग किया जाये तो उसके बाल न बहुत कड़े हों और न बहुत मुलायम। कड़े ब्रुश से मसूढ़े खराब हो जाते हैं और मुलायम-से दांत साफ नहीं हो पाते।

चलते-चलते दातुन नहीं करनी चाहिए, बैठकर दातुन करने से कफ निकलने में आसानी रहती है। जीभ और दांतों की सफाई अन्य लोगों की दृष्टि से बचाकर करना उचित है, दूसरों के सामने जोर-जोर से खखारकर गला साफ करने से उनको ग्लानि होती है। साथ ही सड़क पर, मकान के आंगन या अहाते में दातुन करते व थूकते फिरना और इस प्रकार गंदगी फैलाना ठीक नहीं है। एक जगह किसी नाली आदि पर बैठकर दांत साफ करने चाहिए। जब दांत साफ कर चुको तो दातुन को बीच में से चीरकर उसके टुकड़ों से या जीभी से जीभ पर का मैल साफ कर डालना चाहिए।

दूसरे के ब्रुश या दातुन को कभी इस्तेमाल नहीं करना चाहिए। अपने दातुन को भी एक बार से अधिक इस्तेमाल नहीं करना चाहिए। जो लोग ब्रुश इस्तेमाल करते हैं, उन्हें ब्रुश की सफाई का भी ध्यान रखना उचित है। उसको नित्य नहीं तो चौथे-पांचवें दिन गर्म जल और सोडे से खूब साफ कर लेना और दूसरे-तीसरे महीने बदल देना चाहिए।

जिसके गले, तालु, होंठ और जीभ में रोग हो, जिसका मुख पका हो यानी

मुख में छाले हों, जिसके मसूढ़े खूब सूज रहे हों, श्वास रोगी, खांसी वाला, हिचकी वाला, सिर-दर्द वाला, कान में दर्द वाला, नेत्र-रोगी, नये बुखार वाला, हृदय-रोग वाला और जिसने अभी भोजन किया हो, इनको आयुर्वेद में दातुन करने की मनाही है। इन लोगों को दांत साफ करने के लिए कोई मंजन करना चाहिए।

मंजन अनेक प्रकार के हो सकते हैं। निम्नलिखित मंजन अति उत्तम है और दांतों के प्रत्येक रोग के लिये हितकर है :

"त्रिफला, त्रिकुटा, तूतिया, पांचों नोंन पतंग।
दांत वज्र सम होत हैं माजूफल के संग॥

अर्थात् हरड़, बेहड़ा, आंवला (तीनों की गुठली निकालकर), सोंठ, काली मिर्च, पींपल, सेंधा नमक, सांभर नमक, काला नमक, समुद्र नोन, बिड़नोन [(बिड़नोन काले रंग का होता है, किंतु काले नमक (सोंचर नमक) से भिन्न होता है।)], पतंग, माजूफल (कच्चा या भूनकर) प्रत्येक १-१ तोला, तूतिया (तूतिया सावधानी से अथवा किसी जानकार को भूनना चाहिए, इसका धुआं आंखों को हानि पहुंचाता है) भुना हुआ ६ माशा—महीन-महीन पीस व कपड़ छानकर रख लेना चाहिए। अकेला नमक अथवा नमक व भुनी हुई फिटकरी और सरसों का तेल तथा नमक नीबू का रस मिलाकर भी दांतों पर रगड़ना बड़ा उपयोगी है। नमक डालकर गर्म पानी के या तेल के कुल्ले करने से दांत मजबूत हो जाते हैं। यदि मनुष्य रोज़-रोज़ नहीं तो तीसरे-चौथे दिन ही काले तिल अथवा सरसों के तेल के कुल्ले कर लिया करे तो उसके दांत अंत समय तक न गिरेंगे।

दांतों को बालू, मोटे कोयले या किसी कठोर चीज से न रगड़ना चाहिए, क्योंकि ऐसा करने से एनेगल (जो दांतों पर एक तरह का सख्त खोल होता है) के छूट जाने का डर रहता है और एनेगल के बिना दांत मजबूत नहीं रह सकते। कुछ खाने की वस्तुएं ऐसी होती हैं जिनमें तेज़ाब आदि पदार्थ होते हैं जो दांतों के मुलम्मों अर्थात् एनेगल को हानि पहुंचाते हैं। ऐसी वस्तुओं को न खाना चाहिए। बादाम, अखरोट आदि बहुत कड़ी चीज़ों को भी दांतों से तोड़ने से दांत कमजोर हो जाते हैं।

दांतों के बिगड़ने के तीन मुख्य कारण होते है—(१) पोषणहीन तथा दुष्पच भोजन करना जिससे आमाशय खराब हो जाय। जहां एक बार पेट खराब हुआ तो दांत अवश्य खराब हो जायेंगे। अर्थात् दांतों और पाचनेंद्रिय से स्वास्थ्य का अन्योन्याश्रय संबंध है। (२) दांतों से अन्न को अच्छी तरह न चबाना अर्थात् दांतों का व्यायाम न करना और (३) बहुत गर्म या बहुत ठंडी चीजें खाना और पीना। अतएव दांत साफ और स्वस्थ रखने के इच्छुक मनुष्य को सादा व आसानी से पच जाने वाला भोजन करना चाहिए, दांतों से अन्न को अच्छी तरह चबाना

सर्वोत्तम दंतमंजन समझना चाहिए और बहुत गर्म या बहुत ठंडी वस्तुएं या गर्म के फौरन बाद ठंडी वस्तुएं इस्तेमाल न करनी चाहिए।

सुंदरता के विचार से दांतों में सोने आदि की चोंप जड़वा लेना नादानी है, दांतों की शोभा तो उनकी सफाई में है। चोंप लगवाने से दांत उलटे निर्बल हो जाते हैं।

दांतों को भूलकर भी मशीन द्वारा अथवा रासायनिक प्रयोग से साफ न करना चाहिए। ऐसी सफाई से बहुधा एनेगल उतर जाता हैं और दांत कमजोर हो जाते हैं। बेहतर तो यही है कि नित्य प्रति ही दांत स्वयं साफ कर लिये जाएं।

अत्यंत विवश हो जाने की दशा में ही दांत निकलवाना चाहिए क्योंकि एक दांत के निकल जाने से दूसरे दांतों की जड़ें भी ढीली पड़ जाती हैं और एक-एक करके सारे दांत निकलवा देने पड़ते हैं।

कुल्ला

मनुष्य को उचित है कि दातुन आदि के उपरांत, जब-जब शौच जावे और भोजन करने के बाद शीतल जल से खूब कुल्ले करे और मुंह व आंखों को अच्छी तरह धोवे। बारंबार शीतल जल के कुल्ले करने से कफ, प्यास और मैल दूर होता है, मुंह धोने से काले-काले धब्बे, मुंह की खुश्की, झांई, मुंहासे और रक्तपित्त आदि रोगों को आराम होता है और आंख धोने से उनकी ज्योति बढ़ती है। कुल्ला करते समय इस बात का ध्यान रखने की आवश्यकता है कि पानी के छींटे किसी साफ बर्तन, वस्त्र या निकटस्थ व्यक्ति पर न पड़ें।

नाक

दातुन के बाद या स्नान के समय नाक को अच्छी प्रकार साफ कर लेना चाहिए। नाक में हर वक्त अंगुली डालते रहना बुरी आदत है। शुद्ध कड़वे तेल को, सूर्य निकलने से पहले, नाक के नथुनों में सुड़कने से मस्तिष्क पुष्ट होता है तथा नज़ले की बीमारी नहीं होती। इसी प्रकार उष:पान अर्थात् नित्य प्रति, प्रातः-स्वच्छ ताजा जल नाक के जरिये पीने अथवा मुंह द्वारा बाहर निकालने से नाक साफ होने के साथ-साथ आंख की ज्योति बढ़ती है और बाल सफेद नहीं होते।

नाक के बालों को, अगर वह नाक से बाहर न निकले हुए हों, कटवाना नहीं चाहिए, सांस के जरिये अंदर जाने वाली हवा इनमें से छनकर, फेफड़ों में जाती है; नाक के बाल इस तरह हवा में मिले हुए रोग धूलि-कण तथा रोग क्रमियों को अंदर जाने से रोक लेते हैं।

हजामत

यह बहुत आवश्यक है कि आपका नाई किसी छूत की बीमारी में मुबतला न हो और न वह किसी रोगी की हजामत बनाता हो। दाद, खुजली, कोढ़ और छूत की अन्य बीमारियां नाई के उस्तरे के जरिये एक से दूसरे तक आसानी से पहुंच जाती हैं। रास्ता चलते हर किसी नाई को पकड़कर क्षौर करवाने के बजाय तो न बनवाना ही अच्छा है। सबसे अच्छी बात तो यह है कि प्रत्येक व्यक्ति अगर रख सके तो अपने-अपने औज़ार रखे। अगर आप अपने औज़ार नहीं रख सकते तो हजामत बनवाने से पहले नाई के औज़ार खूब तेज़, गर्म पानी से अच्छी तरह साफ करवा लेने चाहिए।

नख

नाखून (नख) सदैव साफ रखना और उनको बढ़ने न देना चाहिए। उनको पांचवें-छठे दिन कटवाते रहना उचित है, अन्यथा उनके अंदर मैल जम जाता है जिसका अंश भोजन और खुजाने के साथ हमारे शरीर में चला जाता है। बढ़े हुए नख बुरे भी मालूम देते हैं। कई लोग अपने नख दांतों से काटते रहते हैं, यह बहुत ही गंदी आदत है। कैंची से भी नख काटना ठीक नहीं है।

सिर के बाल व तेल

बाल छोटे या बड़े रखना इच्छानुसार होता है;अर्थात् अपनी रुचि पर निर्भर है। लेकिन ऊष्ण देश में अत्यधिक बाल रखने से सिर में गर्मी होती है और बुद्धि घटती है। अगर बड़े बाल रखे जायें तो उनमें घूंघर डालना या विचित्र प्रकार की मांग-पट्टी निकालना जनानी प्रकृति के द्योतक हैं और भले पुरुषों को शोभा नहीं देते।

हर सूरत में बालों को सदैव साफ करना बहुत जरूरी है, बड़े बाल रखने वालों को तो स्नान के बाद नियम से कंघी करनी चाहिए। परंतु बालों को संवारने के लिए हर समय आइना देखते रहना या व्यर्थ की सजावट में अपना कीमती समय नष्ट करना ठीक नहीं है। कंघी सदैव स्वच्छ रखनी चाहिए और दूसरे की कंघी अपने बालों में नहीं डालनी चाहिए।

सिर पर नित्य प्रति तेल मलने से बाल जल्द नहीं पकते, मजबूत जड़ वाले व कोमल हो जाते हैं और भौंरे के समान काले व चिकने बने रहते हैं, मस्तक की थकावट दूर हो जाती है, आंखों की ज्योति पुष्ट होती है, सिर-दर्द नहीं होता व मस्तक के अन्य रोग बहुत ही कम होते हैं, नींद अच्छी आती है और गंज या खाज नहीं होती। बाजार के मिट्टी या घासलेट के तेल पर बने हुए खुशबूदार तेलों

पर मोहित होकर उनका उपयोग कदापि नहीं करना चाहिए। ऐसे तेलों से बाल गिरने लगते या सफेद हो जाते हैं और मस्तिष्क को हानि पहुंचती है। सफेद तिलों का तेल भी बालों को जल्द सफेद कर देता है। काले तिल, आमला, सरसों या नारियल का तेल सिर के लिए उत्तम है। असली चमेली, बेला आदि के तेल भी अच्छे होते है। परंतु तेज गंध वाला तेल लगाना उचित नहीं है और न सिर या मुंह पर इतना अधिक तेल लगाना चाहिए कि जो दिखाई दे।

कान

सप्ताह में, नहीं तो कम-से-कम महीने में, एक बार सरसों या बादाम का अथवा कोई अन्य गुणकारी तेल कान में टपका देना चाहिए। कान में तेल डालने से ठोड़ी और गर्दन की मन्या नामक शिरा दृढ़ होती है, मस्तक ठंडा रहता है, कान में रोग उत्पन्न नहीं होते और नेत्रों की ज्योति बढ़ती है।

कान में तिनका डालकर मैल निकालना ठीक नहीं है, इससे कान के परदे को हानि पहुंचने की आशंका रहती है। कान का मैल निकालना या उसको खुजलाना चाहो तो एक सींक पर थोड़ी-सी रूई लगाकर फुरहरी बना लेनी चाहिए और धीरे-धीरे कान में डालकर मैल निकालना या खुजलाना चाहिए। अगर कनमैलिये से मैल निकलवाना ज़रूरी समझो तो बहुत चतुर कनमैलिया खोजना चाहिए, कनमैलिये बहुधा कान को हानि पहुंचा देते हैं।

कभी अपने से किसी छोटे को सज़ा देने के लिए या अन्य किसी के कान को अधिक नहीं खींचना या ऐंठना चाहिए, न कनपटी पर ज़ोर से थप्पड़ ही मारना चाहिए। ऐसा करने से कान को हानि पहुंच जाती है।

तेल-मर्दन

अभ्यंगकास्येन्नित्यं सर्वेष्वङ्गेषु पुष्टिदम्,
शिरः श्रवणपादेषु तं विप्रषेण शीलयेत्।

अर्थात् "तेल की मालिश से सब अंग पुष्ट होते हैं। अतः सारे शरीर में तेल-मर्दन करना चाहिए। सिर, पैर और कानों को तो विशेष रीति से तर करना चाहिए।

मनुष्य को चाहिए कि अपने शरीर में 'सरसों' या ज़ैतून के तेल की मालिश रोज़-रोज़ नहीं तो सप्ताह में कम-से-कम एक बार स्नान से पूर्व अवश्य कर लिया करें। तेल की मालिश से खाल नर्म, चिकनी और सुंदर व शरीर हल्का, फुर्तीला और दृढ़ हो जाता है। ज़ैतून के तेल से रंग भी निखरता है। नियमपूर्वक तेल की मालिश करने वाले को दाद, खाज, फोड़े, फुंसी आदि चर्म-रोग व वायु

के रोगों का भय तो स्वप्न में भी नहीं रहता। तेल-मर्दन कराने से धातु पुष्ट होती एवं बुद्धि, रूप तथा बल बढ़ता है।

जिन्हें अजीर्ण या नवीन ज्वर हो और जिन्होंने जुल्लाब लिया हो या वस्ति क्रिया (अनीमा) की हो, उन्हें तेल की मालिश वर्जित है क्योंकि ऐसा करने से नवीन ज्वर और अजीर्ण के रोगियों का रोग कष्टसाध्य और असाध्य तक हो जाता है तथा ऊपर कहे हुए अन्य रोगियों को मंदाग्नि आदि घेर लेते हैं।

तेल मलने के समय धूप में बैठना चाहिए, क्योंकि सूर्य की किरणें यदि तेल पर पड़ती रहें तो तेल का मलना विशेष रूप से लाभदायक होता है। किसी कारणवश धूप में कोई न बैठ सके तो तेल को धूप में रखकर गर्म कर लेना चाहिए, तब उसे चाहे साये में बैठकर ही मल सकते हैं।

तेल मलने के कम-से-कम डेढ़ घंटे पश्चात् ही स्नान करना चाहिए, वरन् तेल मर्दन से कोई लाभ नहीं पहुंचेगा।

स्नान

स्नान करना—जलन, थकान, पसीना, खाज और प्यास को नष्ट करता है। स्नान हृदय के लिए हितकारक है, मैल दूर करने वाले उपायों में सर्वोत्तम है, तंद्रा को नाश करता है। स्नान करने से चित्त प्रसन्न होता और पुरुषार्थ बढ़ता हैं, खून साफ और अग्नि दीप्त होती है। स्नान करने से केवल शारीरिक शुद्धि ही नहीं होती प्रत्युत, शरीर और मन का परस्पर संबंध होने से, मन भी शुद्ध तथा पवित्र होता है। मैले मनुष्य का मन भी प्रायः मैला होता है।

महाभारत में विदुर जी उपदेश करते है—"स्नान···शील मनुष्य की दस गुण सेवा करते हैं···उसका बल व रूप बढ़ता है, स्वर व वर्ण शुद्ध होता है, उसकी स्पर्श-शक्ति बढ़ती व गंध दूर होती है, शरीर साफ होता है, लावण्य और कोमलता बढ़ती है और वह दूसरों के लिए आकर्षक हो जाता है।"

नित्य प्रति एक बार स्नान करना अति आवश्यक और लाभदायक है। ग्रीष्म ऋतु में सायं-प्रातः दो बार स्नान किया जा सकता है। किंतु जितनी बार शौच जाओ, उतनी ही बार अथवा अत्यधिक नहाना लाभ के बदले हानि कारक है।

स्नान सूरज निकलने से पहले कर लिया जाय, तो अधिक गुण करता है। सूर्योदय से पूर्व नहाने से दिन भर फुर्ती बनी रहती है, आलस्य नहीं आता और मानसिक शक्तियां प्रफुल्लित होती है। प्रातःकाल स्नान करने वाले को जुकाम व सर्दी भी नहीं होती।

सोकर फौरन उठते ही, जब पसीने में सराबोर हो और अधिक थकान की स्थिति में स्नान न करना चाहिए। भोजन करने के तीन घंटे के अंदर स्नान करने से पित्त की वृद्धि होती है और परिणामस्वरूप पाचन-क्रिया बिगड़ जाती है।

नहाने के लिए पानी साफ और ताजा होना चाहिए। टब में नहाना, जिसमें बराबर वही पानी इस्तेमाल होता रहे, सफाई की दृष्टि से अच्छा नहीं है। नदी या तालाब आदि में नहाना और तैरना स्वास्थ्य के लिए बहुत लाभदायक है। परंतु वर्षा ऋतु या जब कभी उनका पानी मैला हो, तो नदी आदि में नहीं नहाना चाहिए।

साधारणतया हर मनुष्य को ठंडे जल से नहाना ही लाभदायक है। ठंडे पानी के स्नान से त्वचा पुष्ट बनती है तथा समग्र शरीर में बल का संचार होता है। ठंडे पानी से स्नान करना रोग विशेषकर सर्दी, जुकाम और ज्वर आदि को रोकने के लिए औषधि रूप है। जिनकी प्रकृति गर्म अथवा धातु क्षीण हो, उन्हें तो नियम से सब ऋतुओं में ही ठंडे अथवा कुएं के ताज़े जल से नहाना आवश्यक है। छोटे बच्चों, बूढ़ों और अत्यंत दुर्बल व्यक्तियों को गर्म पानी से स्नान करना ठीक है, लेकिन अगर गर्म पानी से स्नान किया जाय तो स्नानागार में अथवा ऐसे स्थान में किया जाय जहां हवा के झोंके न लगें।

गर्भिणी स्त्रियों और छोटे बच्चों को ठंड के दिनों में तेल लगाकर स्नान कराना चाहिए। जहां तक बन सके, शरीर पर साबुन नहीं लगाना चाहिए क्योंकि साबुन के क्षार शरीर की प्राकृतिक चिकनाई को धो डालते हैं और शरीर निस्तेज और कांतिहीन हो जाता है। शारीरिक शुद्धि के लिए किसी प्रकार का उबटन काम में लाना चाहिए। कड़वा तेल, बेसन और हल्दी का उबटन बहुत उत्तम है, इससे कफ और मेद नष्ट होते हैं। बल बढ़ता है, रक्त-संचालन ठीक-ठीक होने लगता हैं तथा त्वचा साफ और कोमल हो जाती है। मुंह से झांई दूर करने की यह सर्वोत्तम और सुलभ औषधि है। दोनों प्रकार की हल्दी व लाल चंदन और भैंस के दूध का उबटन लगाने से रंग खूब खिल उठता है। अब तो पाश्चात्य देशों में भी उबटनों का प्रयोग दिन-पर-दिन बढ़ता जा रहा है। बाज़ारी उबटनों में प्राय: विषैले और हानिकर पदार्थ मिले होते हैं। अत: उचित यही है कि स्वयं घर पर बनाकर उबटन लगाये जायें।

बाल धोने के लिए मुलतानी या कोई अन्य साफ मिट्टी, खली, सुहागा, रीठा, दही, छाछ, आमला आदि काम में लाना चाहिए। साबुन लगाने वालों के बाल जल्दी सफेद हो जाते हैं। हजामत बनाने के समय भी साबुन के बजाय खाली पानी से ही बालों को गलाना अच्छा है।

यदि बिना साबुन के काम ही न चले तो बढ़िया साबुन (ऐसा साबुन जिसमें तेल का अंश अधिक और सोडे का कम) इस्तेमाल करना और उसे लगाकर फौरन ही धो डालना चाहिए। इसके बाद कोई अच्छा शुद्ध तेल उस धुले हुए स्थान पर लगाना उचित है। दूसरे के साबुन से तो बिल्कुल परहेज करना

चाहिए, यहां तक कि एक घर के आदमियों के साबुन भी अलग-अलग रखना जरूरी है।

ठंडे पानी से नहाते समय पहले सिर पर और गर्म पानी से नहाते समय पहले पैरों पर पानी डालना चाहिए। गर्म जल पहले सिर पर या ठंडा पानी पैरों पर डालकर स्नान आरंभ करना नेत्रों के लिए हानिकारक है।

जिस समय स्त्रियां पानी भरती हों, उस समय कुएं पर न नहाना चाहिए। बेहतर तो यह है कि अपने घर पर स्नानागार में नहाया जाय। अगर कुएं पर स्नान करना हो तो इस प्रकार नहाना और वस्त्र धोना चाहिए कि कुएं में अथवा किसी निकटस्थ व्यक्ति पर छींटे न पड़ जायें।

सार्वजनिक कुओं पर, स्टेशनों पर या मेले के अवसर को छोड़कर अन्य ऐसे खुले स्थानों पर जहां आदमियों का जमघट हो, नहाना कुछ ठीक नहीं है, क्योंकि खुले स्थानों पर मनुष्य लज्जावश शरीर के ऐसे अंगों की सफाई अच्छी प्रकार नहीं कर सकता जिनकी सफाई अत्यंत आवश्यक है। अतएव साधारणतया प्रत्येक मनुष्य को और विशेषकर स्त्रियों को सदैव एकांत स्थान में ही स्नान करना उचित है। खुले स्थान में स्नान करना ही पड़े तो इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि जो धोती या अन्य वस्त्र आप पहने हुए हों, वह अधिक बारीक न हों क्योंकि गीला, बारीक वस्त्र शरीर से चिपट जाने पर नहाने वाला नंगा-सा दिखाई पड़ता है, गोपनीय अंग निर्लज्जतापूर्वक रगड़े, मसले या धोये न जायें और धोती या पाजामा बदलते समय बेपर्दगी न हो जाए।

सिर्फ जल्दी-जल्दी दो-चार लोटे डाल लेना काफी नहीं है, ऐसा नहाना और न नहाना बराबर है। ज़्यादा पानी इस्तेमाल करना और खूब मल-मलकर नहाना चाहिए। स्नान के समय मोटे, खुरदरे, गीले अंगोछे से शरीर के सारे अंगों को अच्छी प्रकार रगड़ना चाहिए। रगड़कर नहाना एक प्रकार से व्यायाम का भी काम देता हैं। कोहनी, गट्टे, बगल व ऐसे अंगों की सफाई जहां पर पसीना अधिक आता है, का विशेष ध्यान रखना चाहिए।

स्नान के बाद साफ सूखे तौलिये से शरीर को अच्छी तरह पोंछना चाहिए केवल अपनी गीली धोती से शरीर पोंछ लेना व्यर्थ है। नहाने के बाद बालों को तो बिल्कुल भीगा न छोड़ना चाहिए। इससे बालों की जड़ कमज़ोर हो जाती है और वे गिरने लगते हैं।

दूसरे के पोंछे हुए तौलिये या वस्त्र से शरीर न पोंछना चाहिए, प्रत्येक व्यक्ति का तौलिया या अंगोछा अलग होना नितांत आवश्यक है।

विविध

अपने पास हमेशा एक रूमाल रखना चाहिए। धोती, दुपट्टे, कुरते, दीवार

या चारपाई से नाक का मैल या हाथ पोंछना गंदी आदत है। बच्चों को भी रूमाल रखने की आदत डालनी चाहिए। बेहतर तो यह है कि नाक सदैव रूमाल से साफ की जाये लेकिन अगर हाथ से साफ करो तो फौरन हाथ धो डालिए।

अकसर लोग जिस रूमाल से मुंह व हाथ साफ करते हैं, उसी से नाक साफ कर लेते हैं, यह घिनौनी आदत है। अगर किसी को जुकाम हो तो उसे दो रूमाल रखने चाहिए।

मैले तौलियों से या ऐसे तौलियों से जिनको दावत वगैरह के अवसर पर बहुत-से आदमी इस्तेमाल करते हैं, कभी हाथ, मुंह व चेहरा साफ न करना चाहिए। ऐसे तौलियों से विभिन्न रोगों के कीटाणु फैलते हैं। तौलिये साफ-सुथरे और यथासंभव घर के हर सदस्य के लिए अलहदा होने चाहिए।

हाथ धोने के बाद हाथ पोंछना न भूल जाना चाहिए, विशेषकर जब कि आपको खाद्य वस्तुओं से हाथ लगाना हो।

जूठे अशुद्ध बर्तन या जूते छूकर हाथ धो डालना चाहिए।

१८

व्यायाम और खेल

केवल स्वादिष्ट और पौष्टिक भोजन करने से ही कोई मनुष्य स्वस्थ और बलवान नहीं हो सकता। जिनको अच्छा और पर्याप्त मात्रा में भोजन मिलता है अगर उनका शरीर उसको पचा नहीं सकता तो वह लाभ के बदले हानि ही करता है। अगर भोजन कम पौष्टिक भी मिले लेकिन समुचित व्यायाम किया जाये तो मनुष्य स्वास्थ्य और सुदृढ़ शरीर-लाभ कर सकता है। जर्मनी का उदाहरण हमारे सामने है। सन् १९१४ ई० से सन् १९२४ ई० तक जो बच्चे उस देश में जन्मे उनको अंग्रेज़ी नौ सेना के घेरे और युद्ध में हार से पैदा हुई गरीबी के कारण अपर्याप्त और अपौष्टिक भोजन मिला, लेकिन जर्मन नवयुवकों की वही नस्ल आज यूरोपियन देशों की सारी कौमों की अपेक्षा कहीं अधिक बलवान और साहसी है। इसका एकमात्र कारण यह है कि इस पीढ़ी के जर्मन नवयुवकों को वहां के राजपुरुषों और नेताओं ने अपने शरीर को व्यायाम, खेल और कठोर जीवन द्वारा बलिष्ठ करने और अपने शरीर पर अभिमान करने का पाठ पढ़ाया था।

यद्यपि अपनी जगह शारीरिक स्वच्छता और शुद्ध वायु दोनों ही आवश्यक हैं, परंतु केवल इनसे ही कोई मनुष्य ताकतवर नहीं बन सकता। आरोग्य को निमंत्रण शरीर के अंदर से ही मिलता है। जहां जीवनशक्ति अर्थात् रोगनिरोधक क्षमता कम होती है, वहां ही रोग का आक्रमण होता है। अतएव मनुष्य का कर्तव्य है कि वह कसरत करके अपने शरीर को दृढ़ बनाये। हमारे शास्त्रकारों ने लिखा है :

व्यायामदृढ़गात्रस्य व्याधिर्नैवोपजायते।

अर्थात् "जिसका शरीर व्यायाम करने से खूब मजबूत हो गया है उसके पास कोई रोग आकर नहीं फटकता।"

व्यायाम

व्यायाम करने से गर्मी, सर्दी, थकान और प्यास आदि सहन करने की शक्ति आ जाती है। शरीर में हल्कापन आ जाता है, काम करने की सामर्थ्य बढ़ती है, शरीर भरा हुआ सुंदर लगता है, कफ आदि दोषों का क्षय होता है और जठराग्नि की वृद्धि होती है। मुटापा नाश करने के लिए कसरत के समान दूसरा उपाय नहीं है। कसरती को विरुद्ध या दुष्पच अन्न भी चटपट पच जाता है और उसके शरीर में ढीलापन, झुर्रियां आदि जल्दी नहीं पड़तीं।

प्रत्येक व्यक्ति को कुछ न कुछ व्यायाम नित्य प्रति और नियमित रूप से करना चाहिए। यह समझना भूल है कि व्यायाम से थकान पैदा होनी आवश्यक है। वही व्यायाम अधिक लाभकारी है जिसमें तेज सांस न चले, जिसके उपरांत मनुष्य को कोई थकान पैदा न हो अथवा आराम करने की आवश्यकता प्रतीत न हो बल्कि जिसमें मन में काम करने के लिए तत्काल उत्साह पैदा हो और मनुष्य अपना शारीरिक व मानसिक कार्य करने के पूर्व अपेक्षाकृत अधिक समर्थ हो जाय। अतएव आसन, सूर्य-नमस्कार और इसी प्रकार के अन्य व्यायाम उत्तम हैं; क्योंकि केवल यही इस नियम की कसौटी पर ठीक उतरते हैं। इनसे उतरकर दूसरा नंबर कुछ दूर तक भ्रमण करना, तैरना और घुड़ सवारी का आता है।

कसरत स्त्रियों के लिए भी उतनी ही आवश्यक है जितनी कि पुरुषों के लिए। चक्की और चर्खा चलाना, पानी खींचना, मूसल से अन्न कूटना, रोटी बनाना, बर्तन मांजना, झाड़ू देना आदि घर के काम करने से स्त्रियां स्वस्थ रह सकती हैं, परंतु पूर्ण आरोग्य प्राप्त करने और बलवती बनने के लिए आवश्यक है कि वह भी आसन आदि ऊपर लिखित व्यायामों में से कोई न कोई व्यायाम नित्य प्रति करें।

मानसिक दशा का शरीर पर सदैव बड़ा प्रभाव पड़ता है। अतएव शोक, चिंता व क्रोध के आवेश में व्यायाम करने से हानि होती है। व्यायाम के समय आपकासन अत्यंत शुद्ध, शांत और प्रसन्न होना चाहिए। उस समय आवश्यक है कि आपका मनोबल व्यायाम पर केंद्रित रहे अर्थात् आपको अनुभव करना चाहिए कि व्यायाम से आपके हाथ, पैर और शरीर के दूसरे अवयव सुगठित हो रहे हैं, उनमें शक्ति का संचार हो रहा है और आप स्वास्थ्य-लाभ कर रहे हैं। पहलवान से लुहार अधिक परिश्रम करता है परंतु पहलवान का शरीर लुहार के शरीर से कहीं अधिक सुदृढ़ और बलिष्ठ होता है। क्योंकि पहलवान अपनी शारीरिक उन्नति के लिए व्यायाम करता है, उसके मन और शरीर में सहयोग रहता है और लुहार

का हथौड़ा उठाने का उद्देश्य ही भिन्न है। उसका ध्यान अपने बाहुओं के स्नायुओं की ओर नहीं जाता बल्कि अपने शरीर से बाहर उस चीज़ पर केंद्रित रहता है जो उसे अपनी रोज़ी के खातिर तैयार करनी पड़ती है। यह सिद्धांत किसान, बढ़ई और अन्य मजदूरों के अपने-अपने व्यावसायिक परिश्रम के विषय में भी घटता है। इसलिए, चाहे अपनी रोज़ी के लिये हाथ से काम करने वाले व्यक्ति ऐसे कामों से दूर रहने वाले शिक्षित वर्ग की अपेक्षा मज़बूत होते और दिखाई पड़ते हैं, उनके लिए भी नीरोग रहने और अधिक बलवान बनने के उद्देश्य से किया गया व्यायाम आवश्यक है।

व्यायाम से पूर्ण लाभ उठाने के लिए यह आवश्यक है कि मनुष्य ब्रह्मचारी हो। यदि वह ब्रह्मचारी नहीं है तो आसन करना, दंड पेलना, डंबल उठाना, मुग्दर चलाना, घुड़सवारी करना और दूसरी कसरतें कोई लाभ नहीं पहुंचा सकतीं।

जाड़े और बसंत के मौसम में कसरत अधिक हितकारी है। गर्मी के मौसम में कसरत कम करना चाहिए।

व्यायाम के लिए प्रातःकाल का समय ही श्रेष्ठ है परन्तु जो लोग प्रातःकाल का समय न रख सकते हों, वह संध्याकाल में व्यायाम कर सकते हैं।

व्यायाम के समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि आपका पेट न तो भरा ही हो और न आप भूखे ही हों। दोनों ही अवस्थाओं में व्यायाम से हानि की संभावना है। कसरत या खेल आरंभ करने से पूर्व कुछ खा लेना अथवा कसरत करते-करते या खेलते-खेलते कुछ खाना या पीना बहुत ही हानिकर है।

व्यायामशाला शुद्ध तथा खुली हवा में, यथासंभव बस्ती से बाहर व एकांत में हो, ऐसे स्थान पर अथवा इधर-उधर कहीं किसी प्रकार की दुर्गंध न हो। किसी बड़े जलाशय, नदी आदि का विशुद्ध, रमणीक किनारा अथवा सुगंधित पुष्पमय सुहावना स्थान हो तो बहुत ही अच्छा है। सर्दी के मौसम में व्यायाम तेज हवा से बचकर, दालान या बरामदे आदि में करना चाहिए। इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि केवल लंगोट आदि बांधकर अर्थात् शरीर का अधिक भाग नंगा रखकर कसरत करो तो ऐसा स्थान हो कि जहां स्त्रियां न हों या न आती-जाती हों।

कसरत करते समय लंगोट या जांघिया वगैरा अवश्य बांध लेना चाहिए, क्योंकि ऐसा न करने से गुप्त स्थान में चोट लगने, अंडकोष लटक आने और नामर्द हो जाने का भय रहता है। किंतु लंगोट आदि अति स्वच्छ हो और इतना खींचकर न बांधा जाय कि रक्त की गति में बाधा पड़े।

यों तो कभी भी, परंतु व्यायाम के समय कदापि मुंह से सांस न लेनी चाहिए और यथासंभव बातचीत नहीं करनी चाहिए अथवा मौन रहना चाहिए।

जब कोई व्यक्ति पहले पहल व्यायाम आरंभ करे तो उसे धीरे-धीरे क्रम से बढ़ाना चाहिए, आरंभ में ही अधिक करने के लाभ के बदले हानि हो सकती है।

थकान पैदा करने वाली कसरत की जाय तो जब मुंह सूखने लगे, नाक से जल्दी-जल्दी हवा निकलने लगे यानी दम फूल जाय या शरीर के जोड़ों और कांखों में पसीना आ जाय, पुट्ठे थक जायं तब कसरत बंद कर देनी चाहिए, क्योंकि अपने बल से अधिक अर्थात् बिल्कुल थकाकर चूर-चूर कर देने वाली कसरत करने से बहुत हानि होती है। व्यायाम का लाभ उसकी अधिकता में इतना नहीं जितना इस बात में है कि वह नियमपूर्वक किया जाय। थका देने वाली कसरत करके कुछ देर टहलना अथवा विश्राम करना अच्छा है। उसके बाद किसी काम में लग जाना या तत्काल ही स्नान कर लेना अच्छा नहीं है।

कसरत करने अथवा खेलने के कुछ देर बाद, शरीर की बढ़ी हुई गर्मी को शांत करने के लिए थोड़ा धारोष्ण या मिश्री मिला हुआ गर्म दूध पीना अथवा अपनी प्रकृति के अनुकूल बादाम आदि कोई अन्य चिकना व मधुर तरल पदार्थ खाना या पीना लाभदायक है। परंतु व्यायाम के फौरन ही बाद अर्थात् जब तक सांस की साधारण गति न हो जाय, तब तक कुछ न खाना या पीना चाहिए। कसरत करने या खेलने के बाद पानी, सोडावाटर या लेमनेड आदि पीना बहुत हानिकारक है। यदि दूध या अन्य चिकना पदार्थ न मिल सके तो जब तक खूब भूख न मालूम पड़े, भोजन न करना चाहिए। ऐसा करने से कुछ समय में, उस बढ़ी हुई गर्मी के शांत हो जाने पर, खूब तेज भूख लगेगी और उस समय का किया हुआ भोजन रुचिकारक मालूम होगा और शरीर को लगेगा भी।

तैरना

तैरना एक प्रकार का व्यायाम है। निर्मल जल वाली नदियों में तैरने के जो लाभ है, वे इतने अधिक हैं कि वर्णन नहीं किये जा सकते। शरीरशास्त्र के पंडितों का कहना है कि तैरने से शरीर के अंग-प्रत्यंगों में नवीन जीवन का संचार होता है, बल बढ़ता है और मनुष्य अद्भुत स्वास्थ्य-लाभ करता है। अन्य व्यायामों की भांति तैरने के कपड़े भी चुस्त, शरीर से सटे हुए और मजबूत बंधे होने आवश्यक हैं। धोती या अन्य ढीले कपड़ों को लसटम-पसटम बांधकर तैरने से बहुत-से लोग डूब गये हैं। यदि तैरते-तैरते कभी थक जायें तो घबराना न चाहिए, बल्कि विश्वास रखना चाहिए कि मैं डूबूंगा नहीं और यह भूल जाना चाहिए कि मैं थक गया हूं। अगर आत्मविश्वास खो दिया तो डूबने में देर न लगेगी।

जिस जगह मगर रहता हो वहां कभी तैरना या नहाना नहीं चाहिए। यदि आप बहुत अच्छे तैराक नहीं हैं तो चढ़ी हुई नदी में अथवा ऐसे तालाब या नदी

आदि में जिनकी थाह आपको मालूम नहीं है, घुसने या तैरने की कोशिश नहीं करनी चाहिए।

डूबते हुए आदमी को बचाने के लिए उसी को जाना चाहिए जो तैरना और डूबने से बचाने की विद्या को जानता हो, नहीं तो रस्सी आदि फेंककर बचाने का प्रयत्न करो।

टहलना

जैसे पहले लिखा जा चुका है, टहलने का व्यायाम बड़ा लाभप्रद है। यह जितना सरल है उतना ही गुणकारी भी है। बालक व बालिकाओं से लेकर स्त्रियों व पुरुषों तथा बड़े-बूढ़ों तक, सभी को समान रूप से इससे लाभ पहुंचता है और इसका प्रभाव किसी एक अंग पर ही नहीं होता वरन पूरे शरीर भर में यह अपना असर पैदा करता है। इसके संबंध में प्रसिद्ध डाक्टर शेवेस लिखते है :

"टहलने की कसरत के समान दूसरी कोई भी क्रिया स्वास्थ्य को सुधारने वाली नहीं है। इससे छाती चौड़ी होती है, कंधे पीछे की ओर हटते हैं, पिंडलियां होती हैं, पाचनक्रिया तेज़ होती है और प्राय: सब प्रकार का भोजन पच जाता है। मजबूत जुल्लाब के लिए जितनी दवायें सोची गई हैं सब इस चलने की कसरत के सामने निकम्मी हैं। इससे मुख की श्री बढ़ती है, गालों पर सुर्खी और आंखों में चमक आती है। थोड़े में, मतलब यह है कि शरीर की सुंदरता बढ़ाने वाली सबसे अच्छी औषधि चलने की कसरत है। इसकी जितनी तारीफ की जाय उतनी थोड़ी है। स्वास्थ्य, बल और सुंदरता प्राप्त करने के लिए इसके बिना काम नहीं चल सकता।"

जाहिर होता है कि डाक्टर शेवेस के इस कथन में कुछ अतिश्योक्ति दिखाई पड़ती है लेकिन अनुभव इसकी यथार्थता को सिद्ध करता है।

परंतु घूमने का पूरा लाभ तब ही होगा जबकि सूर्योदय से पहले, शौच आदि से निबटकर शुद्ध वायु में, आबादी से बाहर, कम-से-कम चार मील अथवा जितनी दूर की सामर्थ्य हो उतना, आरंभ से अंत तक एक-सी तेज़ गति से नित्य प्रति भ्रमण किया जाय। ढीले-ढाले चलने से कोई लाभ नहीं है, चलना-फिरना और चीज़ है और टहलने का व्यायाम और। इसीलिए टहलते वक्त समग्र शरीर को धड़, सिर, पांव आदि को तना हुआ और सिर से पैर तक सारे शरीर को सीधा रखना चाहिए। हाथ सीधे नीचे को लटकते हुए अथवा हिलते रहें। साथ ही चलते हुए नाक से लंबी और गहरी सांस भी ज़रूरी हैं।

नंगे पांव हरी अथवा ओस वाली घास पर घूमने से नेत्र, दिल व दिमाग को फायदा पहुंचता है। नित्य प्रति ऐसी घास पर टहलने से प्रमेह के रोगी को तो विशेष लाभ होता है।

खेल

अकेले व्यायाम करने से बहुधा लोगों का जी ऊब जाता है, परंतु खेलते समय साथियों के साथ हेलमेल रहना, एक-दूसरे की सहायता करना, अपना कर्तव्य पूरा करना और नियम पालन व आज्ञा मानने में अपना सम्मान समझना ऐसी उत्तम बातें हैं जिनके सीखने और नित्य व्यवहार में लाने से. बालकों के स्वभाव और चरित्र पर बड़ा अच्छा प्रभाव पड़ता है। सबसे अपूर्व गुण जो इस प्रकार खेलने से प्राप्त होता है वह अपने स्वार्थ और श्रेय के विचार पर विजय पाकर, अपने साथियों की सहायता से अपनी टोली के अभ्युदय और कीर्ति की लालसा है। इसलिए अपने साथियों के साथ हाकी फुटबाल, क्रिकेट, कबड्डी आदि ऐसे खेल खेलना जिनमें केवल मनोरंजन ही नहीं होता वरन् जिनमें चरित्र भी बनता है, यह अति लाभदायक हैं, क्योंकि इस प्रकार के खेलों से शरीर के सब अंग-प्रत्यंगों की कसरत नहीं होती; पूर्ण आरोग्य हासिल करने और उसको स्थिर रखने के लिए मनुष्य को प्रातःकाल के समय कोई अन्य व्यायाम भी करना चाहिए।

खेल में समय से पांच-सात मिनट पहले पहुंचना चाहिए। खेल के समय मध्यस्थ के निर्णय और अपने कप्तान की आज्ञा को मानना चाहिए चाहे वह आपकी सम्मति में गलती भी करते हों। ध्यान रहे कि वह भी मनुष्य है, किसी समय उनसे गलती भी हो सकती है।

मध्यस्थ और कप्तान को उचित है कि वह क्रमशः किसी दल या टोली अथवा अपनी टोली के किसी सदस्य के साथ पक्षपात न करें, सबको समदृष्टि से देखें।

खेल में सदा एक अच्छा साथी बनने का प्रयत्न करना चाहिए, औरों को भी खेलने का अवसर देना चाहिए और यथासंभव किसी को चोट नहीं लगने देना चाहिए।

खेलते समय आपस में बातें न करनी चाहिए, ऐसा करने से आपसे या आपके साथी के हाथ से कोई अवसर निकल जाएगा।

यदि अपनी टोली का कोई खिलाड़ी अच्छा खेले तो शाबाशी देकर उसका उत्साह बढ़ाना चाहिए। अगर कोई खिलाड़ी गलती करे तो कप्तान को ऐसी आलोचना या भर्त्सना नहीं करनी चाहिए जिससे कि उसकी हिम्मत टूटे।

हारते समय क्रोध करना, धांधली मचाना, बेईमानी करना, विरोधी दल के चोटें मारना, लड़-झगड़कर खेल खराब कर देना अति अनुचित है। हारते समय बिना घबराये अधिक परिश्रम, उत्साह और साहस के साथ खेलना चाहिए। ऐसा करने से संभव है कि आप हारा हुआ खेल भी जीत जायें।

आप खेल में यदि हार जायें तो विरोधी या मध्यस्थ का दोष नहीं बतलाना

चाहिए, यदि जीत जायें तो विरोधी के सामने अपनी तारीफ नहीं करनी चाहिए। हारने वाले से ऐसा प्रेम का व्यवहार करना चाहिए कि जिससे उसे हारने की शर्म न मालूम हो। हारने वाली टोली का मान रखने और उसका उत्साह बढ़ाने के लिए ही यह नियम है कि खेल के अंत में जीतने वाली टोली का सरदार दूसरी टोली का तीन बार नाम लेकर अपने खिलाड़ियों के साथ करतल ध्वनि करता है।

ताश और शतरंज के खेल मनोरंजन के लिए तो अच्छे हैं परंतु क्योंकि इनमें बहुत समय नष्ट होता है, इसलिए इनसे जहां तक बचा जाय उतना ही अच्छा है। विद्यार्थी को तो ऐसे खेलों से सर्वथा दूर रहना चाहिए।

ताश के पत्ते उंगली से थूक लगाकर कभी नहीं खिसकाने चाहिए। कभी भूलकर भी किसी प्रकार का जुआ नहीं खेलना चाहिए।

१९

लिखना-पढ़ना और नेत्र-रक्षा

वाचनालय व पुस्तकालय में पुस्तक या समाचारपत्र चुपचाप पढ़ना और पढ़ने के बाद उनको इधर-उधर न फेंककर यथास्थान रख देना चाहिए। यदि कोई सज्जन किसी किताब या समाचारपत्र को देख रहे हों, तो उसके लेने की बेचैनी प्रकट न करनी चाहिए और न पास या पीछे खड़े होकर ही पढ़ने की चेष्टा करनी उचित है।

पुस्तकालय की पुस्तकें सदैव समय पर वापस कर देनी चाहिए, उनमें चित्र आदि निकालने का तो शिष्ट जन कभी स्वप्न में भी विचार नहीं करते।

पुस्तकालय की अथवा मांगी हुई पुस्तक पर अपना नाम अथवा और कोई बात न लिखनी चाहिए और न उस पर पैंसिल या रोशनाई का निशान लगाना चाहिए। न उसको किसी अन्य प्रकार मैली होने देना ही उचित है।

यह जानने के लिए कि किताब कहां तक पढ़ी गई है, पन्ने न मोड़ने चाहिए न किताब के अंदर कोई मोटी चीज़ रखना या उसे खोलकर उलटा करके रखना उचित है, बल्कि कागज़ का एक टुकड़ा चिह्न के तौर पर उस जगह रख देना चाहिए। इससे किताब भी खराब न होगी और मतलब भी पूरा हो जाएगा।

किताबों को और विशेषतया दूसरों की किताबों को सावधानी के साथ इस्तेमाल करना चाहिए। किताब हाथ में लेने से पहले यह देख लेना चाहिए कि आपके हाथ साफ और उजले हैं। पन्नों को इस तरह संभालकर उलटना चाहिए कि वह मुड़ न जायें। पन्ना पलटने में थूक का कदापि प्रयोग न किया जाय। किताब को दोहरी करके भी न पढ़ना चाहिए।

अनेक लोगों की आदत होती है कि हाथ में कलम या पैंसिल आते ही कुछ न कुछ लिखना आरंभ कर देते हैं और जो चीज़ सामने आई उसी पर लिख डालते हैं। यह आदत अच्छी नहीं है।

अगर किसी से पढ़ने के लिए अखबार लिया है तो आपका कर्तव्य है कि पढ़ने

के बाद अखबार के पृष्ठ ठीक-ठीक लगाकर वापस कर दें। उलटे-सीधे पृष्ठ लगाकर अखबार को अव्यवस्थित दशा में वापस करना असभ्यता है।

छोटे बच्चे स्लेट को साफ करने के लिए कभी-कभी पानी की बजाय थूक का इस्तेमाल करते हैं और पेंसिल की नोक से थूक लगाकर लिखते हैं, ये दोनों आदतें बहुत गंदी हैं।

अक्षरों को स्याही-सोख के स्थान पर आस्तीन और दीवार से चिपकाकर नहीं सुखाना चाहिए।

कलम से रोशनाई ज़मीन या दीवार पर छिड़कना और उसको सिर के बालों से पोंछना उचित नहीं है।

झुककर, कोहनी टेककर या फर्श पर पुस्तक आदि रखकर न लिखना-पढ़ना चाहिए, इससे कंधे झुक जाते हैं, कमर मुड़ जाती है और फेफड़े खराब हो जाते हैं। आगे मेज़, डैस्क या चौकी रख लेनी चाहिए जिस पर पुस्तक आदि रखी जा सके और सिर व कमर झुकानी न पड़े।

चलती हुई सवारी में बैठकर पढ़ना विशेषकर महीन अक्षरों का समाचार-पत्र या पुस्तक पढ़ना हानिकारक है, क्योंकि इस प्रकार निगाह अक्षरों पर नहीं जा सकती। हिल-हिलकर पढ़ना भी अच्छा नहीं है।

यदि दृष्टि में किसी प्रकार का दोष नहीं है तो आंखों के बहुत निकट या आंखों से बहुत दूर कागज अथवा पुस्तक ले जाकर पढ़ना या लिखना अच्छा नहीं हैं, इससे आंखें कमज़ोर होती हैं।

लिखते समय कलम के बिंदु पर दृष्टि रखनी और उसको कलम के साथ लेते चलना चाहिए। यह न हो कि आगे लिखते जायें और साथ ही पीछे के अक्षर पढ़ते चलें। इसी प्रकार सुई आदि का काम करते वक्त भी दृष्टि को सुई की नोक के साथ रखना चाहिए।

देखने के समय आंखें अधखुली रखनी चाहिए अर्थात् ऊपर के पलक नीचे पड़े रहें। सामने या ऊपर देखने के समय ऊपर के पलक को नहीं उठाना चाहिए, परंतु ठोड़ी को ऊपर उठाकर देखना चाहिए। यह स्वयंसिद्ध बात है कि पलकों को नीचा कर रखने से आंखों पर थोड़ा ज़ोर पड़ता है। पढ़ते समय भी किताब को ठोड़ी के नीचे रखना चाहिए जिससे ऊपर के पलकों को न उठाना पड़े।

बिजली चमकने के समय व संध्या में अर्थात् जब कभी रोशनी कम हो और बहुत तेज रोशनी में लिखने-पढ़ने अथवा सीने-पिरोने का काम न करना चाहिए। बारीक अक्षरों की पुस्तक पढ़ने से भी विशेषकर रात्रि में दृष्टि कमज़ोर होती है।

धूप में रखकर किताब न पढ़नी चाहिए, कागज की चौंध से आंखों को हानि पहुंचती है।

बिजली की बत्ती या लैंपों की रोशनी बिना व्यवधान आंखों पर न पड़नी

चाहिए, लैंपों पर साया यानी शेड लगाना चाहिए।

सरसों के देशी तेल का दीपक जलाकर लिखने-पढ़ने से आंखों को बहुत लाभ होता है। इसके विपरीत मिट्टी के तेल की रोशनी में लिखना-पढ़ना आंखों के लिए बहुत हानिकर है, विशेषकर लालटेन की रोशनी में।

लिखते-पढ़ते समय इस प्रकार और ऐसे स्थान पर न बैठना चाहिए जहां प्रकाश सम्मुख या पीछे से आता हो। क्योंकि सामने के प्रकाश से आंखों पर चमक पड़ेगी और पीछे से प्रकाश आने में अपनी परछाईं पड़ने से प्रकाश रुकेगा। लिखते-पढ़ते समय इस प्रकार या ऐसे स्थान पर बैठना चाहिए जहां प्रकाश दाहिने या बायें से आये।

आंख की बीमारी के कारण कुछ लोगों की आंखों से पानी अथवा कीचड़ निकलता रहता है। ऐसे लोगों के रूमाल, तौलिये और अन्य वस्त्रों से बचना चाहिए। जिन बालकों की आंखों में कोई विशेष रोग हो, उनके साथ खेलने से दूसरों की आंखों में भी रोग पहुंच जाता है। इस कारण ऐसे बालकों से दूर रहना चाहिए।

गंदे कपड़े से आंखों को कभी न पोंछना चाहिए।

गर्मी में तपते हुए शरीर से एकाएक शीतल जल में घुस जाने या धूप में तपते हुए सिर पर ठंडा पानी डालने, बिना छाता लगाए या बिना सिर पर कपड़ा डाले तेज धूप में देर तक रहने व आग से तपने के बाद तुरंत ही आंखों को धोने, बहुत तेज धूप में देर तक चलने-फिरने, बिना जूता पहने चलने-फिरने, आग को मुख से फूंकने या आग से पांव तपाने, गर्म पानी से नहाने, दिन में सोने या रात को जागने अथवा नींद आने पर न सोने या पेट के बल सोने, सिनेमा देखने, रोने, शोक या क्रोध करने, तेल, बैंगन, भुने हुए चने, आरनाल नामक कांजी, खटाई, कुलफी, लाल मिर्च आदि अधिक खाने, मल-मूत्र, अधोवायु, वमन, आंसू आदि शारीरिक वेगों को रोकने, अधिक पसीना लेने, आंखों में धूल गिरने या धुआं लगने, अत्यंत वमन करने, किसी ज़हरीली चीज़ की भाप लेने, नाक के बाल उखाड़ने, तंबाकू सेवन करने अथवा अधिक नशा करने और दिमाग में अधिक गर्मी या सर्दी पहुंचने से नेत्र-ज्योति मंद पड़ जाती है।

बिना पलक मारे अर्थात् टकटकी लगाकर देखने से दृष्टि कमज़ोर हो जाती है विशेषकर सूर्य व आग आदि लाल रंग वाली और बारीक अथवा शीघ्रगामी या चक्कर खाई हुई चीज़ों को निगाह बांधकर न देखना चाहिए। ग्रहण के समय में भी सूर्य की ओर टकटकी लगाकर न देखना चाहिए। बुद्धिमान को चाहिए कि निकलते हुए और छिपते हुए सूरज का जबकि वह केवल एक लाल आग की भांति हो, न देखें। सूरज को ग्रहण पड़ने पर, जल के अंदर और जब बीच आकाश में हो, तब कभी नहीं देखना चाहिए। इससे नेत्रों में बीमारी हो जाती है। इंद्रधनुष

को देखने से भी आंखों में विकार हो जाने की आशंका रहती है।

आजकल काजल या अंजन लगाने का चलन घट रहा है। अंजन लगाना एक प्रकार जनाना श्रृंगार और फैशन के विरुद्ध वस्तु समझी जाती है। लेकिन इसमें संदेह नहीं कि नियमपूर्वक सुरमा आदि लगाने से आंखों के अनेक प्रकार के रोग नष्ट होते हैं और जवानी में ही चश्मा लगाने की आवश्यकता नहीं पड़ती। इसलिए माताओं को छोटे बच्चों की आंखों में नित्य प्रति काजल लगाना चाहिए और बड़ों को भी सप्ताह में कम-से-कम दो बार रात्रि में ऐसा सुरमा लगाना चाहिए जिससे आंखें अधिक काली न हों। सुरमा डालने में इस बात का ध्यान रखने की ज़रूरत है कि दूसरे की इस्तेमाल की हुई सलाई अपनी आंखों में न डाली जाय।

त्रिफले के जल से नियमपूर्वक नेत्र धोते रहने से ज्योति बनी रहती है। आंवला नेत्रों का खास पोषक है, इसे जिस प्रकार, जिस अवस्था में भी हो सके, नित्य सेवन करते रहना चाहिए।

प्रातःकाल, भोजन करने से पूर्व, शौच के उपरांत, सोते समय और दिन में कई बार शीतल जल से आंख, मुंह और पैर धोने से आंखों को बड़ा लाभ पहुंचता है। आंखों को छपके दे-देकर धोना चाहिए। साफ पानी में तैरना और उसमें आंखें खोलना भी आंखों के लिए लाभदायक है। जब कभी आंखों में खारिश हो तो उनको उंगलियों से न मलकर साफ ताज़े पानी से अच्छी तरह धो डालना चाहिए। इससे ठंडक पड़ सकती है।

भोजनोपरांत नियम से सदा सौंफ चबाना मनुष्य को नेत्रों के रोगों से आयु पर्यंत सुरक्षित रखता है। गाय का धारोष्ण दूध पीना व घी का सेवन करना और सफेद मिर्चों के साथ मक्खन-मिश्री खाना भी आंखों के लिए बहुत उपयोगी है।

प्रसिद्ध आयुर्वेद-विशेषज्ञ भावमिश्र जी लिखते हैं कि "जो व्यक्ति प्रातः उठकर नित्य प्रति नासिका द्वारा जल पीता है, वह दृष्टि में गरुड़ के समान दूरदर्शी हो जाता है।"

पैरों के तलवे और सिर में तेल की मालिश करने व बालों में कंघी करने से नेत्रों की ज्योति बढ़ती है। हरी चीज देखने से नेत्रों का तेज बढ़ता है, इसलिए बाग की सैर या हरियाली आंखों के लिए गुणकारी है।

नेत्र-व्यायाम

आंखों की मांसपेशियों और स्नायुओं की पुष्टि और निर्बलता पर नेत्रों की दृष्टि की अच्छाई और बुराई निर्भर है। अतएव जिस प्रकार शरीर के अन्य अवयवों की उन्नति के लिए भिन्न-भिन्न प्रकार के व्यायाम किए जाते हैं, उसी

प्रकार आंखों की शक्ति बढ़ाने के लिए नेत्र-व्यायाम ज़रूरी है। डाक्टर मेकफेडन के बताए हुए नेत्र-व्यायाम की विधि इस प्रकार है :

एकांत में सीधे बैठो। चेहरा सीधा सामने रहे। सामने 'अ आ' के समान एक सीधी रेखा की कल्पना करो और उसी रेखा में ऊपर से नीचे और नीचे से ऊपर अपनी दृष्टि घुमाओ। पांच-छह बार 'अ आ' में घुमाने के पश्चात् इसी प्रकार 'इ ई' में दाहिनी से बायीं ओर और बायीं से दाहिनी ओर घुमाना चाहिए, फिर 'उ ऊ' रेखा पर निचले कोने से ऊपर वाले कोने तक पांच-छह बार घुमाओ। तत्पश्चात् 'ए ऐ' रेखा के अनुसार ऊपर के कोने से नीचे और नीचे के कोने से ऊपर, अपने नेत्रों को घुमाओ। किंतु ध्यान रहे कि किसी प्रकार भी सिर न घुमाते हुए केवल आंख की पुतली को ही ऊपर-नीचे, दायें घुमाना चाहिए और प्रत्येक बार ऊपर से ऊपर, नीचे से नीचे, दायीं से दायीं, बायीं से बायीं और तिरछी से तिरछी जितनी पुतली जा सके, उतनी ले जाने का प्रयत्न करना चाहिए। इस अभ्यास के बाद सामने बड़े से बड़े गोल चक्कर की कल्पना करो। पहले पांच-छह चक्कर दायीं से बायीं ओर खींचो। फिर उतने ही दायीं से बायीं ओर। दृष्टि से खींचे जाने वाले चक्कर केवल कल्पना के होंगे। तात्पर्य केवल इतना है कि सिर न हिलाते हुए पुतली को जितना घुमा सको, घुमाओ। यदि बीच में आंखें थक जायें, तो ज़ोर से बंद कर लो और पुनः खोलकर शेष क्रिया पूरी करने का अभ्यास करो। अभ्यास समाप्त होने पर सामने देखो और प्रयत्न करो कि दूर की वस्तु साफ-साफ दिखाई पड़ रही है। नेत्र-व्यायाम करने के लिये प्रातःकाल का समय अच्छा होता है। आरंभ में अधिक न करना चाहिए, नहीं तो आंखों को अधिक परिश्रम करने से कष्ट होगा। इस व्यायाम से नेत्र पुष्ट, सुंदर और रोगरहित हो जाते हैं। यदि ८ वर्ष की आयु से ही यह अभ्यास नियमपूर्वक किया जाय तो उम्र भर ऐनक लगाने की आवश्यकता ही न पड़े और वृद्धावस्था में भी दृष्टि उत्तम बनी रहे। बड़ी उम्र से भी यदि निगाह अधिक कमज़ोर न हो, तो इस अभ्यास से ऐनक छूट सकती है, अन्यथा कम-से-कम नेत्रों की कमजोरी कदापि बढ़ेगी ही नहीं।

२०

घर की सफाई

मकान में ज्यादा ताक या आले न रखने चाहिए क्योंकि उनमें प्राय: धूल जमी रहती है। दस आलों के बदले एक अलमारी बनवा लेना मकान की सफाई की दृष्टि से कहीं अधिक अच्छा है।

हर छठे महीने न हो सके, तो साल भर में बरसात के बाद एक बार तो अपने रहने के मकान में चूने-कलई से जरूर ही सफेदी कर देनी चाहिए। कलई में बीमारी पैदा करने वाले कीड़ों को मार डालने की शक्ति होती है। कलई में संखिया डालकर पुतवाओ तो और अच्छा है।

मकान का फर्श पत्थर या चूने का हो तो अच्छा है। फर्श पक्का हो तो उसे बहुधा धुलवाते रहना चाहिए। ऐसी पक्की दीवारों या फर्श से, जो कभी धुलता न हो या जिसकी मरम्मत न होती हो अथवा जिन पर सफेदी न होती हो, वह कच्चा फर्श या दीवारें अच्छी हैं जिनकी लिपाई-पुताई पर ध्यान दिया जाता है।

रहने अथवा सोने के कमरे में बहुत सामान रखना ठीक नहीं। जितनी ज़्यादा चीजें कमरे में रहेंगी उतनी ही गर्द भी इधर-उधर जमा होगी और कमरे को साफ रखना कठिन हो जायेगा।

मकान की सफाई और व्यवस्था उसमें रहने वाले मनुष्य के स्वभाव की परिचायक है। गृह उपकरण को व्यवस्थित रखना ही सफाई है और इधर-उधर अव्यवस्था फैलाए रखना गंदगी है। इसलिए घर में हर चीज़ के लिए स्थान नियत होना चाहिए, चीजें इधर-उधर डालना उचित नहीं है। जो चीज जहां से ली जाय, इस्तेमाल के बाद वहीं रख देना चाहिए। बहुत-से घरों में वस्तु भंडार की हालत बहुत ही खराब होती है। तमाम जिस खुली हुई, अनाज के बर्तन बिखरे हुए और घी का कनस्तर भी खुला पड़ा रहता है। ऐसा कुप्रबंध गृहिणी के फूहड़पन का सूचक है।

निकम्मी और गंदी चीजें बटोरकर घर में रखना अच्छी बात नहीं है। फूटी

हंडियां, फटे और मैले चिथड़े, टूटी-टाटी लाठियां, फटे-पुराने जूते, टूटी चारपाई या अन्य रद्दी व पुरानी चीजों को घर में इकट्ठी करने से मकान की हवा तथा व्यवस्था खराब होती है। कोई उन्हें मांगता हो तो दे दो। फेंकने लायक हों तो फेंक दो या जला दो और काम में लाने योग्य हों तो काम में लाओ। यदि इस विचार से कि शायद भविष्य में कभी काम में आ जायं, पुरानी चीजें फेंकना नहीं चाहते तो उनको रहने के मकान से अलहदा किसी कोठरी में रखवाना चाहिए और उस कोठरी को भी बहुधा साफ करते रहना चाहिए।

सामान को मकान के कोनों में अथवा दीवारों से इस तरह सटाकर न रखना चाहिए कि उनकी आड़ में चूहे, सांप, बिच्छू, बर्रें, मच्छर, पिस्सू, मकड़ी और बीमारी पैदा करने वाले दूसरे जंतु छिपकर रह सकें। बक्सों को ईंट आदि पर इस प्रकार रखना उचित है कि उनके नीचे झाड़ू डालकर प्रत्येक दिन आसानी से सफाई की जा सके।

घरों के कोनों में गड्ढे या बिल न हों। इनमें विषैले जीव सांप, बिच्छू आदि घुस जाते हैं और इनसे पृथ्वी के अंदर की मिट्टी और बदबू निकलकर घर में गंदगी फैलाती हैं। बिलों में अगर कांच के टुकड़े ठोक दिए जायं तो फिर जानवर उस जगह छेद नहीं करेंगे।

घर को नित्य प्रति एक बार अवश्य बुहारना चाहिए और आठ-दस दिन में एक बार सारे मकान की दीवारों, छतों, फर्श, दरी और किताबों और दूसरी नित्य प्रति साफ न की जाने वाली सब चीजों को अच्छी तरह झाड़ देना चाहिए। ज़मीन में बिछने वाले फर्श को साल में कम-से-कम तीन-चार बार धुलवा डालना आवश्यक है।

मकान में जाले आदि कदापि न लगने देने चाहिए और रोज़ाना झाड़ू देते समय घर के कोनों में, कोठियों के नीचे, चक्कों के आसपास और किवाड़ों के पीछे देख लेना चाहिए कि कूड़ा तो नहीं रह गया है।

मेज़-पोश को उठाकर मेज़ साफ करो। अकसर मेज़-पोश तो ऊपर से झाड़ दिया जाता है लेकिन उसके नीचे धूल जमी रहती है।

झाड़ू देने से खिड़कियों, दरवाज़ों व मेज, कुर्सी आदि अन्य सामान पर धूल जम जाती है। कमरे में झाड़ू देने के उपरांत यह धूल झाड़न से साफ कर देनी चाहिए। झाड़ू देने से पूर्व यदि पानी के हल्के-हल्के छींटे छिड़क दिए जायं तो धूल कम उड़ेगी।

हर घर में कूड़ा डालने के लिए एक, दो या अधिक कूड़ेदान का होना आवश्यक है। कागज़ के टुकड़े, तिनके, पत्ते, फलों के छिलके, गुठली सहन में ही या मकान के बाहर इधर-उधर फेंक देना ठीक नहीं है। कूड़ेदान का प्रबंध रखने से मकान हर समय स्वच्छ रहेगा और उसको दिन में कई-कई बार बुहारने की

आवश्यकता न होगी। कूड़ेदान में जो कूड़ा जमा हो जाय उसको प्रत्येक दिन उठवाकर कूड़ेदान को भी अंदर से साफ करा देना चाहिए। दफ्तर के कमरे में एक डलिया रखना ज़रूरी है और फटे, रद्दी व अनावश्यक कागज़ आदि डलिया में ही डालना उचित है न कि फर्श पर। प्रत्येक बैठक में मेज़ आदि पर एक क्षार पात्र का रखना भी मुनासिब है जिसमें दियासलाई व सिगरेट आदि के जले हुए टुकड़े, सिगरेट की राख, इलायची के छिलके और अन्य इसी प्रकार की छोटी-मोटी चीज़ें रखी जा सकें, क्योंकि ऐसी चीज़ों को फर्श अथवा दरी आदि पर फेंकने या उनपर राख झाड़ने से गंदगी फैलती है।

अगर किसी जगह क्षार पात्र (राखदानी) का प्रबंध न हो और इलायची आदि पेश की जाय तो सभ्य मनुष्य को चाहिए कि वह फर्श पर या इधर-उधर फेंकने की अपेक्षा इलायची के छिलके आदि को उस समय अपनी जेब में रख ले और फिर किसी उपयुक्त स्थान अथवा सार्वजनिक या अपने निजी मकान के कूड़ेदान आदि में डाल दें।

घर में हर जगह जूते नहीं ले जाने चाहिए। जीने में, कमरे के बाहर एक तरफ या ऐसे स्थान में जो जूतों के लिए विशिष्ट कर दिया गया हो, उतार देने चाहिए। जो लोग अंग्रेजी तरीके से रहते हैं, उनकी कोठियों में साधारणतः इस प्रकार की पाबंदी नहीं होती।

थूकना

कुछ लोगों को जहां-तहां थूकने की लत होती है। उससे घर की सफाई रखने में बड़ी बाधा पड़ती है। घर में या घर के आंगन में नाक साफ करना,कफ डालना या थूकना गंदगी पैदा करता है। अक्सर देखा गया है कि लोग थूकते और नाक साफ करते समय कुछ भी सावधानी नहीं बरतते। जहां भी चाहा थूक दिया और जहां मन में आया नाक साफ कर दी। इससे दुर्गंध और बीमारियां फैलती हैं और दूसरे आदमियों को इससे घृणा होती है। क्षय जैसा भयंकर रोग केवल थूक से ही एक से दूसरे को लगता है। बार-बार थूकने से पाचन-शक्ति भी कमज़ोर होती है। थूकने व नाक साफ करने के लिए अपने घर में एक स्थान-विशेष नियुक्त कर लेना चाहिए। सार्वजनिक स्थानों में कभी थूकना नहीं चाहिए और न ही नाक साफ करनी चाहिए और अगर आवश्यकता ही हो तो ऐसी जगह यह कार्य करना चाहिए जहां किसी की नज़र न पड़े, जिस जगह को लोग बहुत कम इस्तेमाल करते हों अथवा जो जगह ऐसे सार्वजनिक स्थानों में ऐसे काम के लिए उपयुक्त मालूम होती हो या निश्चित कर दी गई हो। यूरोपियन देशों के बाजारों में नाक साफ करना या थूकना अपराध है। बाल्टियों में राख, लकड़ी का बुरादा, फिनाइल या ऐसी ही दूसरी चीजें रख दी जाती है जो कफ वगैरह से पैदा होने वाली दुर्गंध

को मार देती हैं। जो मनुष्य बाल्टी में न थूककर इधर-उधर थूक देता है, वह दंड पाता है।

थूकते समय ध्यान रखना चाहिए कि थूक की छींट किसी साफ बर्तन, वस्त्र या किसी निकटस्थ व्यक्ति पर न जा पड़े। हवा का रुख देखकर ही थूकना चाहिए।

पान की पीक घर की दीवार, कोने और किवाड़ों के पीछे अथवा दरवाज़े या खिड़कियों में थूकना बहुत बुरा है। पान खाने वालों के लिए उचित है कि ढक्कनदार पीकदान का वह फिनाइल आदि डालकर इस्तेमाल करें, जिसे नित्य प्रति दो बार साफ करा लेना चाहिए।

इस तरह कुछ नई आदतों के अभ्यास से घर-बाहर की सफाई को बखूबी बनाये रखा जा सकता है।

२१

वायु

मनुष्य को जीवित रखने के लिए आकाश, वायु, अग्नि अथवा प्रकाश, जल और भोजन की आवश्यकता है। अंतिम तीन विषयों का वर्णन आगे किया जायेगा। मनुष्य के जीवन के लिए आकाश का महत्त्व वर्णनातीत है, आकाश के बिना मनुष्य या किसी भी प्राणी के शरीर का अर्थात् उसके अस्तित्व की कल्पना ही नहीं हो सकती। अतएव मनुष्य जितने अधिक खुले स्थान में रहेगा, उतना ही स्वस्थ रहेगा।

यह बात वायु की है। आकाश के बाद वायु का ही स्थान आता है। यहां हम वायु की चर्चा करेंगे। प्राणी जीवन के लिए इसकी आवश्यकता को दृष्टि में रखकर परमेश्वर ने, आकाश के समान ही, इतनी अधिक वायु उत्पन्न कर दी है कि जो हमको बिना मूल्य या परिणाम के मिल सके। भोजन के बिना मनुष्य सप्ताहों तक जीवित रह सकता है, जल के बिना कई दिन तक, परंतु वायु के बिना पांच मिनट भी जिन्दा नही रह सकता। स्पष्ट है कि वायु जितनी अधिक उपयोगी है उतनी ही अधिक उसके शुद्ध होने की आवश्यकता है। शुद्ध वायु में आक्सीजन (Oxygen) की आवश्यकता होती है जो श्वास द्वारा फेफड़ों में जाकर रक्त को शुद्ध करती है और रोग के कीड़ों से लड़ने और उनको नष्ट करने की क्षमता रखती है। अशुद्ध वायु में इसी आक्सीजन नामक तत्त्व की कमी होती है।

जो लोग दूषित वायु में रहते हैं, निर्बल हो जाते हैं। उनके मुखमंडल पर चमक-दमक नहीं रहती, देह पीली और जर्जर हो जाती है। मस्तिष्क अकर्मण्य हो जाता है, क्षुधा मंद पड़ जाती है और बीमारियां बढ़ जाती हैं। इसीलिए कहा जाता है कि शुद्ध वायु हमारे शरीर के लिए सुधा है और दूषित वायु हलाहल विष।

रोग का सामना करने और उस पर विजय पाने के लिए भी साफ ताजी

हवा परमावश्यक है। केवल वायु-परिवर्तन से बहुत-से रोग जाते रहते हैं, परंतु इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि परिवर्तन अच्छे स्थान में हो। ऐसा कोई रोग संसार में नहीं है जिसके निराकरण के लिए साफ हवा औषधि का काम न करती हो। सवेरे-शाम की हवा में टहलने या उसका सेवन करने से हर प्रकार के रोगियों को आराम पहुंचता है और स्वास्थ्य-लाभ होता है। अतएव प्रत्येक व्यक्ति को, विशेषकर शहरों की गलियों में रहने वालों को शुद्ध वायु सेवन के लिए प्रातःकाल और सायंकाल दूर तक, आबादी से बाहर, उद्यान आदि में या खुले मैदान में जाना चाहिए।

परंतु जैसे स्वच्छ और शीतल वायु लाभदायक है और उसका सदैव ही स्वागत करना चाहिए, वैसे ही गर्मी में दोपहर की लू में घूमना-फिरना हानिकरक है और उससे सिर, गुद्दी और कानों को बचाना बहुत आवश्यक है, ऐसा न करने से तेज लू लगने के कारण बहुत-से आदमियों की मृत्यु हो जाती है।

वायु की शुद्धि-अशुद्धि की ओर से हम लोग प्रायः लापरवाह रहते हैं। यहां पर कुछ साधारण बातों का ज़िक्र किया जाता है जिनकी ओर यदि हम ध्यान दें तो हमको बहुत कुछ शुद्ध वायु मिल सकती है।

रहने-सहने का घर, पशु बांधने के बाड़े या घेर से अलग होना चाहिए। अर्थात् जिस मकान में मनुष्य रहते हों उसमें पशु नहीं बांधने चाहिए। गाय, भैंस, बैल, घोड़े व बकरी आदि किसी भी पशु के सांस लेने से व मल-मूत्र से हवा बिगड़ जाती हैं। अगर पशु रहने के कमरों के पास रखे ही जाएं तो उनके गोबर, लीद आदि उठवाने की ओर बहुत ध्यान देना चाहिए।

घरों के बाहर पास ही में कूड़ा-ककंट, गोबर, लीद, घास-फूंस का ढेर लगा रहना ठीक नहीं है। गोबर व कूड़ा गांव से बाहर एक गड्ढा खोदकर जिस पर छप्पर पड़ा हो, डालना चाहिए।

बरसात में उग आने वाली घास-फूंस, धतूरा, कटेली आदि को अपने आंगन या घर के आसपास से खोदकर साफ कर देना चाहिए क्योंकि ऐसी घास-फूंस में मच्छर अपना अड्डा बना लेते हैं।

घर के निकट ही पाखाना या पेशाब नहीं करना चाहिए और न दूसरे लोगों को ही अपने घर के पास गंदगी फैलाने देनी चाहिए। बहुत-से लोग, देहात में ही नहीं वरन् नगरों में भी, अपने बाल-बच्चों को सड़कों पर या गलियों में मल-मूत्र त्यागने के लिए बैठा देते हैं। यह अत्यंत बुरी बात है, इससे सारे शहर व गांव में बदबू फैलती और बीमारी होती है।

श्मशान और मरे हुए ढोरों के फेंकने की जगह बस्ती से ऐसी दिशा में और इतनी दूर पर कायम करनी चाहिए जिधर से बस्ती की ओर हवा न चलती हो या जहां से गांव व नगर तक बदबू न आ सके।

मकानों में ऐसी खिड़कियां, रोशनदान और दरवाज़े अवश्य बनवाने चाहिए और खुले रखने चाहिए, जिनसे हवा मकान के प्रत्येक कमरे में से इधर से उधर अच्छी तरह निकल सके। जिस कमरे या मकान में एक ही दरवाज़ा होता है, उसकी वायु स्वच्छ नहीं रह सकती।

मकान या मकान के दरवाज़े नीचे बनाने से उसमें साफ हवा का आना-जाना नहीं हो सकता। खपरैल या छप्पर के मकान नीचे हों तो अधिक हानि नहीं, क्योंकि उनकी छत के छेदों में से थोड़ी-बहुत हवा गुज़रती रहती है, लेकिन पक्के मकान की ऊंची छत रखना अत्यावश्यक है।

भीगे, गीले कपड़ों को अपने बैठने तथा सोने के कमरों में सूखने के लिए नहीं डालना चाहिए, विशेषकर बरसात और जाड़ों में, क्योंकि इससे हवा नम और खराब होती है।

रहने के कमरों के अंदर या उनके निकट दुर्गंध पैदा करने वाली चीज़ें नहीं रखनी चाहिए, जैसे तंबाकू की गुच्छियां। जहां तक बन पड़े मिट्टी का तेल काम में नहीं लाना चाहिए और अगर काम में लाया जाय तो सफेद और अच्छा तेल लाया जाय। पत्थर के धुएंदार कोयले अथवा मिट्टी के तेल का चूल्हा यथासंभव इस्तेमाल न करना चाहिए, इनका धुआं घर की हवा को बिगाड़ता है और स्वास्थ्य के लिए विशेषतः आंखों और फेफड़ों के लिए अत्यंत हानिकारक है। मुलायम कोयला अर्थात् वह कोयला जिसमें धुआं न निकलता हो, इस्तेमाल करने में कोई हानि नहीं है।

बरसात में और जब कभी घर की हवा खराब मालूम पड़े तब गंध, गूगल, धूप, कपूर, नीम की पत्तियां या लोबान जलाकर हवा साफ कर देनी चाहिए। आर्यों में नित्य प्रति हवन करने के आदेश का मुख्य प्रयोजन वायु-शुद्धि ही है।

हो सके तो आंगन में या घर के आसपास रजनीगंधा, तुलसी, सूर्यमुखी, मरवा आदि ऐसे पौधों को लगाना चाहिए जो हवा को साफ करने में सहायता देते हों।

मकान ऊंचे स्थान पर बनाना चाहिए, न कि नीची और सीली जगह पर और अंदर का सहन ढालू रखना ज़रूरी है ताकि वहां एक बूंद भी पानी न ठहरे। घरों के आसपास की जगह समतल होनी चाहिए, गड्ढे रहने देना ठीक नहीं, क्योंकि इन गड्ढों में वर्षा में पानी इकट्ठा होकर कीचड़ हो जाती है, जो सड़कर हवा को खराब करती है। घर में से जल के निकास के लिए ऐसी, यथासंभव पक्की, नालियां बनवानी चाहिए जिनमें रुककर पानी न सड़े। जहां पर पानी के निकलने का प्रबंध न हो, वहां पर घर के बाहर पानी सोखने वाला गड्ढा बनवा देना चाहिए अथवा केले के पौधे लगवा देने चाहिए। जिस घर में सील होती है, उसकी वायु दुर्गंधमय रहती है और जहां मोरी व नाली अथवा गड्ढों में पानी

जमा रहता है, वहां मलेरिया तथा बुखार पैदा करने वाले जहरीले मच्छर पैदा हो जाते हैं। ऐसे घर में रहने वाले प्रायः तरह-तरह के रोगों से पीड़ित रहते हैं।

सांस लेना

सांस मुंह से न लेकर सदैव नाक से लेनी चाहिए। मुंह के द्वारा ठंडी हवा जाने से जुकाम और गले में दर्द हो जाने की संभावना रहती है और कीटाणु व धूल के कण भी मुख से फेफड़े में पहुंचकर हानि पहुंचाते हैं। इसी कारण मुंह के द्वारा सांस लेने वालों को क्षय और टांसिल का रोग जल्दी होता है। नाक द्वारा सांस लेने से छाती चौड़ी और मजबूत होती है क्योंकि नाक के द्वारा वायु मुंह की अपेक्षा धीमे-धीमे भीतर जाती है, दूसरे वायु नाक के अंदर के बालों में से छनकर शुद्ध हो जाती है और कोई अनुपयोगी वस्तु अंदर नहीं जाने पाती। तीसरे यह कि नाक द्वारा प्रवेश करके वायु फेफड़ों में पहुंचते-पहुंचते गर्म हो जाती है और इस तरह शरीर के भीतरी अवयवों में ठंड नहीं लगने पाती।

प्राणायाम

स्वस्थ रहने की इच्छा रखने वाले प्रत्येक मनुष्य को एकांत स्थान में जहां की वायु अत्यंत शुद्ध हो, प्रातःकाल कुछ देर नियम से प्राणायाम करना चाहिए। अपने धड़, सिर और गर्दन को अचल और सीधा धारण किए हुए ऐसा आसन लगाना चाहिए, जिससे अधिक देर तक सुखपूर्वक सुस्थिर, निश्चल बैठ सकें। अच्छा तो यही है कि प्राणायाम बैठकर किया जाय, परंतु अगर इच्छा हो तो बिल्कुल सीधे खड़े रहकर भी प्राणायाम किया जा सकता है। प्राणायाम आरंभ करने से पूर्व अभ्यासी के लिए आवश्यक है कि अपने चित्त की संपूर्ण वृत्तियों तथा मन और इंद्रियों की चंचलता और चेष्टा को शिथिल कर दे। इसके बाद स्वास्थ्य के निमित्त निम्नलिखित विधिवत् दो प्रकार का प्राणायाम करें :

प्रथम व्यायाम की विधि यह है कि जैसे अत्यंत वेग से वमन होकर अन्न-जल बाहर निकल जाता है, उसी प्रकार नासिका के अग्र भाग में ध्यान ठहराकर वायु को बल से बाहर फेंककर बाहर ही यथाशक्ति रोक देवें। जब घबराहट हो तब धीरे-धीरे भीतर वायु को लेवें। जितनी सामर्थ्य और इच्छा हो उतनी देर तक बारंबार इसी प्रकार अभ्यास करें।

द्वितीय प्राणायाम की विधि यह है कि नाभि के नीचे ध्यान लगाकर वायु उदर में भरें, जब नाभि से लेकर कंठ तक भर जाय, तब जल्दी से ध्यान को कंठ में लाकर वायु बंद कर दें। जब जी घबराने लगे तब धीरे-धीरे ध्यान के साथ छोड़ दें। इसी प्रकार बारंबार वायु भरें और जितनी देर तक सहन कर सकें, उतनी देर तक बंद रखें।

ऊपर निर्देशित विधियों में सर्वत्र ध्यान ठहराकर, ज्ञान दृष्टि द्वारा प्राणायाम करना बताया गया है, न कि अंगुलियों या अंगूठें से नकसोरे दबाकर या अन्य प्रकार श्वास खींचकर।

प्रथम व्यायाम के द्वारा, जब श्वास बाहर रोक दिया जाता है, मनुष्य के हृदय में श्वास लेने की प्रबल इच्छा उत्पन्न होती है। उसका फल यह होता है कि भीतर श्वास लेने पर श्वास आंधी के सदृश फेफड़े में पहुंचता है और जिस प्रकार आंधी या तेज हवा नगर के कोने-कोने में प्रवेश करती है, उसी प्रकार श्वास द्वारा भीतर लिया हुआ वायु वेग के साथ फेफड़ों के एक-एक कोष तक पहुंच जाता है जिससे तपेदिक, दमा, निमोनिया आदि फेफड़ों का कोई रोग नहीं होने पाता। द्वितीय प्राणायाम द्वारा वायु नाभि से कंठ पर्यंत भर जाने से निर्बल फेफड़े मज़बूत तथा मज़बूत फेफड़े और अधिक मज़बूत और छाती चौड़ी हो जाती है। हमारे फेफड़ों के नीचे का हिस्सा पूरा, गहरा श्वास न लेने के कारण बेकार-सा पड़ा रहता है। उसके कोष्ठों में रक्त-संचार होना बंद हो जाता है। प्राणायाम से वह भी ठीक-ठीक काम करने लगता है और इस प्रकार शरीर को पूर्णतया विकसित फेफड़ों का लाभ पहुंचाता है। शुद्ध तथा प्राणप्रद वायु का रक्त के साथ संबंध होने से रक्त शुद्ध होता है और उसमें खाज आदि का कोई विकार उत्पन्न नहीं होने पाता। रक्त में बहने वाले मलों के नष्ट होते ही शरीर नीरोग हो जाता है। इसीलिए प्राणायाम के गुणों-का वर्णन करते हुए मनु भगवान कहते हैं कि :

दह्यन्ते ध्मायमानानां धातूनां हि यथा मलाः।
तथेन्द्रियाणां दह्यन्ते दोषाः प्राणस्य निग्रहात्॥

अर्थात् "जिस प्रकार अग्नि में तपाने से धातुओं के मल नष्ट हो जाते हैं, उसी प्रकार प्राणायाम करने से इंद्रियों के दोष नष्ट हो जाते हैं।"

क्योंकि प्राणियों की आयु प्राणों पर ही निर्भर है, अतः दीर्घ-जीवन प्राप्त करने का सबसे बड़ा साधन प्राणायाम है। जो प्राणी जितने ही कम श्वास अर्थात् जितनी देर में श्वास लेता है वह उतना ही अधिक जीता है। कछुआ सबसे कम श्वास लेता है, वह उतना ही अधिक जीता भी है। अस्तु, प्राणायाम शारीरिक उन्नति का मुख्य सेतु है।

यूरोप में प्राणायाम का प्रचार बढ़ रहा है। पाश्चात्य विद्वानों ने एक यंत्र भी बना लिया है, जिससे प्राणायाम सीखने में सुगमता होती है। यूरोप के कई एक स्थानों की शिक्षा-प्रणाली में भी प्रायायाम जोड़ दिया गया है और यह यंत्र भी काम में लाया जाता है।

प्राणायाम के संबंध में पूर्णतया स्मरण रखना उचित है कि प्राणायाम से उत्साह और विलक्षण अभौतिक आनंद प्राप्त होता है; इसलिए कई लोगों की शक्ति से

अधिक प्राणायाम करने की ओर प्रवृत्ति लक्षित होती है। इस प्रवृत्ति को रोकना चाहिए। प्राणायाम का अभ्यास शनैःशनैः करने से दीर्घ आयुष्य, आरोग्य आदि की प्राप्ति होती है, परंतु अविचार से यदि आप शक्ति से अधिक प्राणायाम करेंगे तो शरीर रोगी बनेगा और आयु का नाश होगा। जो सज्जन प्राणायाम के विषय में अधिक जानकारी या अभ्यास प्राप्त करना चाहें, तो उन्हें उचित है कि किसी विशेषज्ञ के समीप जायें।

२२

प्रकाश

सूर्य प्रकाश का अटूट कोष है। यही जगत् को जीवन, पोषण तथा आरोग्य और सुख देने वाला है। यदि सूर्य न हो तो संसार का एक भी प्राणी जीवित न रहे।

हवा की तरह प्रकाश या उजाला भी प्राणियों के लिए ही नहीं प्रत्युत वनस्पति के लिए भी आवश्यक चीज़ है। जो पेड़ अंधेरे में लगाये जाते हैं, सफेद और पीले दीख पड़ते हैं। उजाला मन को भाता है। पिंजरे को कपड़े से ढकने पर चिड़ियां भी नहीं बोलतीं, क्योंकि अंधेरे में उनका मन मर जाता है। प्रकाश से हवा की दुर्गंध दूर होती है। अंधेरे घरों में प्रकाश न पहुंचने से वायु अशुद्ध होने के कारण सदा बीमारी बनी रहती है। कहावत भी है कि जहां उजाला नहीं जाता, वहां वैद्य अवश्य जाता है। हंगरी में सन् १८४८ ई० की क्रांति में १५७ आदमियों को एक ऐसे कैदखाने में रखा गया था जहां बिल्कुल अंधेरा था। चंद वर्षों के बाद देखा गया तो उनमें १५ पागल हो चुके थे और बाकी की हालत निहायत खराब थी।

उजाले से दुर्गंध दूर होने के साथ-साथ, सांप कीड़े, मकोड़े भी दूर भागते हैं। इसलिए, सदैव ऐसे मकानों में रहना चाहिए, जिनके प्रत्येक भाग अथवा कमरे में धूप व प्रकाश अच्छी तरह पहुंचता हो। जिस स्थान में सूर्य का प्रकाश न आता हो, वह चाहे जैसा सुंदर और सुहावना लगता हो उसमें कभी न रहना, सोना या बैठना चाहिए।

मछलियां जो अंधेरे गड्ढों में रहती हैं, अंधी हो जाती हैं, यही दशा आदमियों की है। खानों में रहने वाले आदमी आमतौर पर नेत्र-रोग से बीमार रहते हैं। जो मनुष्य अपनी आंखों को रोशनी से बचाने के लिए धूप की ऐनक या अंधेरे कमरे का इस्तेमाल करते हैं, अक्सर नेत्र-रोग की शिकायत करते रहते हैं। उनके नेत्रों में रोशनी सहन करने की शक्ति कम हो जाती है और रोग के कीड़े जल्दी से अपना असर कर जाते हैं। नेत्रों का स्वास्थ्य ठीक रखने के वास्ते सूर्य के

प्रकाश की अत्यंत आवश्यकता है क्योंकि सूर्य की किरणों में नेत्र-रोग के कीड़ों का नाश करने की शक्ति होती है। परंतु अगर नेत्रों में कोई रोग ही हो जाय अथवा एकदम बहुत तेज धूप में बाहर जाना पड़े, तो उसकी चौंध से और अगर आंधी या बहुत तेज धूल वाली हवा चल रही हो तो धूल से आंखों को बचाने के लिए बढ़िया प्रकार की ऐनक इस्तेमाल की जा सकती है। घटिया किस्म की धूप-ऐनक प्रयोग करने से आंखों को उलटी हानि ही पहुंचती है।

प्रातःकाल सारे शरीर को धूप लगाना स्वास्थ्य के लिए लाभप्रद है, इससे शारीरिक और मानसिक उन्नति होती है और बहुत-सी बीमारियां दूर होती हैं। बाल रवि की ओर आंखें बंद करके कुछ देर नित्य प्रति बैठना आंखों के स्वास्थ्य के लिए तो बहुत ही लाभकर है। किंतु तेज धूप में सिर को नंगा रखना हानिकारक है।

२३

पानी

हमारे शरीर में अधिक भाग पानी का है, अर्थात् ७५ प्रतिशत। जाहिर है कि अगर साफ पानी न मिले तो हम रोगी हो जाएं। जिस पानी में बदबू न हो, किसी प्रकार का रस, मिट्टी व कूड़ा आदि न हो, जो शीतल, प्यास मिटाने वाला, हल्का और हृदय को प्यारा मालूम हो, वही जल गुणकारी और अच्छा होता है।

जब पानी में चूना या किसी अन्य प्रकार का नमक या धातु मिली रहती है, तब उसे भारी पानी कहते हैं और जब उसमें किसी धातु या नमक आदि का अंश नहीं होता या बहुत कम होता है, तब उसे हल्का पानी कहते हैं। भारी पानी से साबुन में फेन नहीं निकलता और उसका स्वाद कुछ खारा होता है। हल्का पानी मीठा व स्वादरहित होता है। पीने या शाक आदि पकाने के लिए भारी पानी की अपेक्षा हल्का पानी कहीं अधिक उपयोगी है। भारी या खारी पानी दृष्टि तथा बल का नाश करने वाला है। इसके पीने से पाचनशक्ति कमजोर हो जाती है और पथरी का रोग हो जाता है।

जहां तक हो सके, पानी सदैव छानकर ही पीना चाहिए। बहुधा बाल, कीड़े, तिनके आदि पानी में आ जाते हैं जो पेट में जाकर दुःख देते हैं। जहां तक हो सके मशक का पानी न पीना चाहिए क्योंकि मशक प्रायः गंदी रहती हैं।

सवेरे-सवेरे नल का पानी जो पहले निकले उसे न पीना चाहिए। रात भर जो पानी नल में जमा रहता है, उसके निकल जाने पर ही पानी को पीने के काम में लाना उचित है।

नदी या राजबाहे आदि का पानी यथासंभव न पीना चाहिए क्योंकि प्रायः उसमें मिट्टी मिली हुई होती है और लोग नदी आदि के तट पर मल-मूत्र का त्याग करते हैं, उनमें कपड़े धोते और मुर्दे बहाते हैं।

पानी व दूध आदि में उंगली डालना उचित नहीं है। अगर चीनी घोलनी हो

तो चम्मच से काम लेना या दो बर्तनों में उलट-फेर कर लेना चाहिए।

जिस बर्तन में पीने का पानी आदि कोई पेय पदार्थ रखा हो उसको ढकना न भूलना चाहिए। उसको जमीन से कुछ ऊपर रखना अच्छा है। बर्तन ऐसा होना चाहिए जो हाथ डालकर अंदर से अच्छी प्रकार साफ किया जा सके।

पानी आदि निकालने के लिए जिस लोटे या अन्य बर्तन को बाल्टी आदि में डालो, उसकी पेंदी पहले धो लेनी या साफ कपड़े से पोंछ लेनी चाहिए। बेहतर तो यही है कि लोटा पानी के अंदर न डाला जाय।

डोल, बाल्टी या घड़े आदि के पास हाथ धोने के लिये सदैव भरा हुआ लोटा रखना अच्छा है और इस्तेमाल करने वाले का कर्तव्य है कि खाली होने पर फिर लोटे को भर दे।

पानी साफ रखने के लिए परमावश्यक है कि जलाशयों पर और उनके पास बहुत सफाई रखी जाय और निम्नलिखित बातों का ध्यान रखा जाय :

(१) उनमें किसी प्रकार का कूड़ा-कर्कट, धूल-मिट्टी, थूक, खून, विष या मल-मूत्र आदि न गिरने दिया जाये और न उनके किनारे आदमियों या जानवरों का मल-मूत्र इकट्ठा होने दिया जाये।

(२) नदियों में मुर्दों को विशेषकर हैज़े से मरे हुओं को न बहाया जाय और उनके किनारे मुर्दे गाड़े भी न जायें।

(३) किसी गंदी नाली या नाले का पानी उनमें न गिरने दिया जाये।

(४) जिस तालाब का पानी पीने के काम आता हो, उनमें मैले कपड़े न धोये जायं, न स्नान किया जाय और न उसमें मवेशियों को पानी पिलाया जाय;

(५) अगर कुएं पर नहाओ या कपड़े धोओ तो इस प्रकार नहाना और धोना चाहिए कि छींटे कुएं में न जायें। बेहतर तो यही है कि कुएं पर न नहाया जाय और न कपड़े धोये जायें। कुओं के पास जानवरों को भी नहलाने-धुलाने नहीं लाना चाहिए;

(६) कुओं में चमड़े का डोल जिसमें काई जमी हो और अस्वच्छ अथवा मिट्टी लगा हुआ लोटा व डोल नहीं डालना चाहिए।

(७) कुएं कीचड़ या ढलाव के अथवा गंदे स्थान पर न बनाये जायं। उनके चारो ओर मण अर्थात् कुछ उठी हुई पक्की चबूतरी बनवा देना आवश्यक है ताकि उसमें गंदा या मेह का पानी बहकर न जा सके। उस पर टीन का छप्पर भी डाल दिया जाय तो अच्छा है जिससे उनके अंदर पत्ते आदि न गिरें। कुओं को साल या दो साल में एक बार पानी व कीचड़ निकलवा कर साफ करवा देना चाहिए।

यदि पानी की निर्मलता में संदेह हो तो कमल या शिवाल की जड़, जरा-सी फिटकरी या निर्मली की गिरी पीसकर उसमें डाल देना चाहिए, थोड़ी देर रखा

रहने से पानी साफ हो जाएगा। अगर कुछ भी न हो सके तो विशेषकर महामारियों के समय पानी को उबाल और ठंडा करके बिना हिलाये दूसरे बर्तन में मोटे और साफ कपड़े से छान लेना चाहिए, क्योंकि औटाने से पानी की बुरी हवा निकल जाती है, हानिकारक पदार्थ जो उसमें घुले रहते हैं, नीचे बैठ जाते हैं, छोटे-मोटे कीड़े जो आंखों से नजर नहीं आते, मर जाते हैं। परंतु फिल्टर द्वारा पानी साफ करने की तरकीब सर्वोत्तम है, जो निम्न प्रकार है :

एक तिपाई पर तीन या चार घड़े तले ऊपर रख लो। ऊपर के दो या तीन घड़ों की पेंदी में बारीक-बारीक छेद कर दो। सबसे ऊपर के घड़े में साफ पक्का कोयला, दूसरे में कंकर और बालू अथवा दूसरे में कंकर और तीसरे में बालू भर दो और नीचे का घड़ा खाली रखो। अब सबसे ऊपर के घड़े में आहिस्ता जल भर दो। ऊपर के दो या तीन घड़ों में से होकर जो पानी नीचे के घड़े में भर जायेगा, वह पानी अत्यंत ही स्वच्छ होगा। अगर पानी औटाकर घड़े में भरा जायेगा तो बहुत ही उत्तम जल तैयार होगा।

उपर्युक्त प्रकार छानकर पानी साफ करने में इस बात की बहुत सावधानी चाहिए कि घड़े नित्य प्रति साफ किये जायें और उनका कोयला, कंकर व रेत दूसरे-तीसरे दिन बदल दिया जाया करे। क्योंकि अगर ऐसा न किया जाएगा तो पानी छनकर साफ मिलने की जगह खुद छन्ना गंदा होने के कारण और अधिक गंदा हो जाता है।

पीने के लिये धारा जल अर्थात् बरसात का पानी सर्वोत्तम होता है विशेषतया क्वांर के महीने का। इसके पीने से थकावट, प्यास, जम्हाई और जलन दूर होती है, खून साफ होता हैं और पाचनशक्ति बढ़ती है। वर्षा के दिनों में पहली बौछार के बाद ऊंचे पर साफ सफेद कपड़ा तानकर छना हुआ पानी इकट्ठा करना चाहिए। यह पानी कभी नहीं सड़ता। अगर सोने, चांदी के बर्तनों में बरसात का पानी जमा किया जाय तो उसमें अनेक गुण आ जाते हैं।

पानी के रखने के लिए मिट्टी के बर्तन सर्वोत्तम हैं। हमारे देश में मिट्टी के घड़ों में पानी भरकर रखने का रिवाज बहुत अच्छा है। इन घड़ों के छिद्रों व रंध्रों द्वारा पानी सोखते रहने के कारण पानी की एक प्रकार की गंदगी दूर होती रहती है। परंतु घड़ों या सुराहियों का पानी साफ रखने के लिए यह ज़रूरी हैं कि उन्हें पंद्रह-बीस दिन बाद बदल दिया जाए और प्रति दिन एक बार अच्छी प्रकार धो दिया जाय और साफ कर दिया जाय। यदि घड़े आदि अधिक दिन तक इस्तेमाल करना चाहो, तो उन्हें दूसरे-तीसरे दिन धूप में सुखा लेना चाहिए।

प्यास बुझाने के लिए बर्फ और बाज़ारू लेमनेड व शर्बत आदि की जगह शुद्ध, ठंडा पानी पीना चाहिए। यह सच है कि शीतल जल मनुष्य के दिल को प्यारा लगता है और शीतल जल से ही मनुष्य की प्यास बुझती है। परंतु बर्फ डालकर

पानी ठंडा करना गलती है। बर्फ का पानी प्यास नहीं बुझाता प्रत्युत गले को खराब और पाचनशक्ति को निर्बल करता है। गर्मी के मौसम में अथवा जब आवश्यक हो मिट्टी के साफ कोरे घड़े में पानी भरने से अथवा किसी चौड़े और बड़े बर्तन में बर्फ का जल भरकर उसमें पानी का भरा हुआ बर्तन रख देने से, पानी के भरे हुए घड़े को बालू में गाड़ देने से पानी ठंडा किया जा सकता है।

बाज़ार में शुद्ध लेमनेड आदि मिलना प्रायः असंभव है, अतएव जब मन चाहे गर्मी प्रतीत होते ही एक गिलास ठंडे पानी में नीबू या संतरे का रस निचोड़कर उसमें एक चम्मच पिसी हुई मिश्री डालकर पी लेना चाहिए। इससे शरीर की गर्मी कम होती है, प्यास बुझती है और तबियत प्रसन्न होती है। गर्मी के दिनों में इसका इस्तेमाल दिन में कई बार किया जाय तो भी गुणकारी है। जाड़े के मौसम में गन्ने के रस में नीबू का रस मिलाकर पिया जाय तो इससे अच्छा कोई शर्बत नहीं है।

भोजन करते समय जल या अन्य कोई प्रवाही पदार्थ अधिक नहीं पीना चाहिए, क्योंकि प्रवाही पदार्थ के आमाशय में जाने से पाचन-रस पतला पड़ जाने के कारण जठराग्नि मंद पड़ जाती है और भोजन के ऊपर पानी पीने से कफ भी बढ़ता है। भोजन करने के आधे घंटे पहले से और भोजन के उपरांत डेढ़ घंटे तक कुछ नही पीना चाहिए। परंतु जिस मनुष्य की गर्म प्रकृति हो अर्थात् जिसके कोष्ठ में गर्मी हो या जो अधिक मसालेदार भोजन कर रहा हो, अगर वह प्यास लगने पर भोजन के बीच में थोड़ा-सा पानी पी ले तो कोई हानि नहीं है। परंतु अधिक पानी किसी हालत में भी नहीं पीना चाहिए। जब मुंह में ग्रास हो तब भी पानी, दूध या मट्ठा पीना ठीक नहीं है अर्थात् पेय के सहारे ग्रास गले से नीचे नहीं उतारना चाहिए।

पानी मनुष्य का प्राण है, इसलिए प्यास पर अवश्य पीना चाहिए। परंतु अधिक पानी पीना या एक ही बार लोटा चढ़ा जाना उचित नहीं है और हानि करता है।

भूख के समय अथवा शौच के उपरांत अर्थात् खाली पेट पानी पीना जठराग्नि को नाश व जलोदर आदि रोग पैदा करता है, अतः थोड़ा-बहुत खाकर ही पानी पीना चाहिए अन्यथा दूध, मट्ठा शर्बत आदि पी लो। अगर कोई खाद्य पदार्थ न मिले और पानी पीना ही पड़े तो चूसने की रीति से थोड़ा-सा पी लेना चाहिए।

तरबूज आदि तर फल व चने या भुट्टे आदि खाने के उपरांत, शारीरिक परिश्रम और व्यायाम के फौरन बाद अथवा दूर से पैदल चलकर आने पर जल पीना बहुत ही अवगुण करता है। ऐसी अवस्था में कम-से-कम १५ मिनट टहर कर आराम करने के बाद ही पानी पीना चाहिए।

पानी, दूध, मट्ठा आदि धीरे-धीरे पीना चाहिए अर्थात् गटागट- गिलास या लोटा भरकर न चढ़ा जाना चाहिए बल्कि ठहर-ठहरकर दो-तीन सांस में पीना चाहिए जिससे उसमें पाचक-रस मिल जाय। परंतु पेय को सटकने, अर्थात् गले में उतारने से पहले, उसको मुंह में कुल्ले की मानिंद रोके रखना अशिष्टता है। यथासंभव अंजलि से पानी न पीना चाहिए, क्योंकि इससे मनुष्य जल्दी-जल्दी और अधिक पानी पी जाता है और फंदा लगने का भी डर रहता है।

पानी के बर्तन में सांस नहीं लेनी चाहिए, इससे पानी में खराब हवा मिल जाती है जिससे पानी पीने के योग्य नहीं रहता। पानी आदि इस प्रकार पीना चाहिए कि होंठ के अधिक न लगे, अगर अधिक लग भी जाय तो पीने के बाद सदैव रूमाल आदि से होंठ पोंछ लेने चाहिए। सहभोज व जलपान की पार्टी में इसका विशेष ध्यान रखने की ज़रूरत है।

पानी या कोई भी चीज़ खड़े-खड़े अथवा चलते-चलते या लेटे नहीं पीनी चाहिए, इससे प्रायः पेट में दर्द हो जाता है।

किसी को पानी दो तो गिलास को ऊपर तक न भर लो जिससे पानी छलके और उसके सिरे को अपनी अंगुलियों से इस प्रकार पकड़कर मत दो कि गिलास हथेली के नीचे आ जाय अथवा पानी लेने वाले को गिलास पकड़ने के लिए आपके हाथ से नीचे स्थान मिले। पीने के बाद गिलास लेना या उठाना मत भूल जाइए। दूसरों के घर जिस पात्र में मुंह लगाकर पानी पिया हो और पानी देने वाला आयु में आपके बराबर का अथवा बड़ा हो, तो उस पात्र को उसके हाथ में न देकर जमीन या मेज़ पर रख देना चाहिए।

कुएं, जलाशय आदि से जब अपने स्थान पर लौटें और हाथ में लोटा, डोल आदि हो तो उसको पानी से भरकर लाना चाहिए।

२४

भोजन

भोजन एक महत्वपूर्ण विषय है। भोजन शरीर के लिए वही काम देता है जो कोयला और पानी इंजिन के लिए देते हैं। इसके बिना जीवन का यंत्र चल नहीं सकता। शरीर और मन की रचना बहुत कुछ भोजन के प्रकार पर निर्भर है। भोजन की महिमा का इससे अनुमान लगाया जा सकता है कि संसार का प्रत्येक प्राणी भोजन के अर्थ ही आयुपर्यंत पुरुषार्थ करता है। परंतु जहां भोजन एक गंभीर विषय है, वहां संसार के विद्वानों में हर बड़े प्रश्न की भांति इसके संबंध में परस्पर उतना ही मतभेद है, कब खायें व कब न खायें? कितना खायें और क्या खायें अथवा क्या न खायें? संसार में बहुत ही कम ऐसे विशेषज्ञ हैं जो इन समस्याओं पर एकमत हों। साथ ही, रसना कुछ ऐसी प्रबल है कि मनुष्य बहुधा यह जानता है कि अमुक वस्तु खाने से, अधिक भोजन करने से अथवा अमुक समय कुछ भी खाने से उसको हानि होगी, परंतु फिर भी गलती करता है और पछताता है। प्रत्येक व्यक्ति को चाहिए कि वह अनुभव से अपने लिए कुछ नियम बना ले और दृढ़ता के साथ उन पर अमल करे। पाठकों के पथप्रदर्शनार्थ हम इस अध्याय में कुछ नियम लिखते हैं।

कब भोजन किया जाय

शौच और स्नान आदि परिकर्म के अनंतर ही भोजन करना उचित है, परंतु यदि शरीर अस्वस्थ हो या यात्रा कर रहे हों और स्नान के लिए पर्याप्त समय व उपयुक्त स्थान न मिले तो बिना स्नान किए ही भोजन किया जा सकता है।

यों तो स्नान सूर्योदय से पहले, अर्थात् भोजन करने से बहुत पहले, कर लेना चाहिए, परंतु अगर स्नान बाद को किया जाय तो भी स्नान और भोजन में कम-से-कम आध घंटे का अंतर होना चाहिए। स्नान के बाद तुरंत ही भोजन करने

से शरीर की वह शक्ति, जो स्नान के समय ऊष्णता लाने के लिए त्वचा में एकत्र हो जाती है, जठर में नहीं आ पाती और पाचनशक्ति निर्बल पड़ जाती है।

सदैव नियत समय पर भोजन करना चाहिए। इससे पाचनशक्ति तो ठीक रहेगी ही, परंतु स्वयं व घरवालों को भी सुविधा रहेगी।

प्रातराश अर्थात् प्रातःकाल कलेऊ या नाश्ते के तौर पर कुछ खाना नितांत आवश्यक ही नहीं बल्कि हानिकर भी है। सवेरे के समय जब पेट खाली रहता है, तब शरीर और मन काम करने के लिए जैसे सचेत और क्रियाशील होते हैं, वैसे पेट भरा होने पर नहीं होते। सोने के समय इंद्रियां अपना काम करना बंद कर देती हैं और शरीर को परिश्रम नहीं करना पड़ता। इसलिए रक्त-कणों अर्थात् शक्ति का व्यय नहीं होता जिसे फिर से पूरा करने की आवश्यकता हो। उलटे, सोने से शरीर में नई शक्ति का संचार हो जाता है जो कि मनुष्य को अधिक काम करने के योग्य बना देती है।

लेकिन जो लोग दोपहर का भोजन बारह-एक बजे करते हैं, यदि वह प्रातः-काल अर्थात् सात-आठ बजे सूक्ष्म, यथासंभव फल अथवा फल और दूध का आहार कर लेवें तो कोई हानि नहीं है। अगर जरा-सा भी भारी प्रातराश कर लिया तो दोपहर को अच्छी भूख न लगेगी। अन्न के संबंध में निम्न संस्कृत उद्धरण ध्यान देने योग्य है :

ओं अन्नपते अन्नस्य नो देहि अनमीवस्य शुष्मिणः।
प्रपदातारं तारिष उर्ज्जं नो देहि द्विपदे शं चतुष्पदे॥

अर्थात् "हे अन्नपते ! हमें अन्न दे, ऐसा अन्न जो रोग के कीड़ों से रहित हो, बल तथा ओज देनेवाला हो और दुपायों व चौपायों के लिए कल्याणकारी हो। जो अन्न का दान दे, उसे तू भवसागर से पार कर दे।"

बहुत-से लोगों का विचार है कि आठ पहर में एक बार ही भोजन करना पर्याप्त है और सिर्फ एक बार ही भोजन करनेवाले पूर्ण स्वस्थ रहते और दीर्घायु होते हैं। इसमें कोई सहमत हो या न हो, परंतु इसमें संदेह नहीं कि दो बार से अधिक भोजन करना तो अनावश्यक ही नहीं परंतु हानिकर है, क्योंकि कोई मनुष्य कितना भी शारीरिक या मानसिक परिश्रम करे, उसे स्वाभाविक भूख दिन में दो बार से अधिक नहीं लग सकती। भगवान् बुद्ध का वचन है, "एक बार सात्त्विक आहार करने वाला महात्मा है। दो बार आहार करने वाला बुद्धिमान तथा भाग्यवान है। इसके विपरीत अधिक, अनुपयुक्त भोजन करने वाला बड़ा मूर्ख तथा पशु से भी निकृष्ट है।"

जो सज्जन दिन में एक से अधिक बार भोजन करते हैं, उन्हें सप्ताह में एक

वक्त उपवास करना स्वास्थ्य के लिए हितकर है। जिन लोगों को अपनी रोटी कमाने के लिए दोपहर के समय काम करना पड़ता है, उदाहरणार्थ, वकील, क्लर्क आदि अथवा जो भोजन के बाद आराम नहीं कर सकते, उन्हें दिन में दोपहर से पूर्व हल्का भोजन करना चाहिए और पूरा भोजन शाम या रात्रि को करना चाहिए। भरे पेट पर काम करने से सिर-दर्द, कब्ज व जिगर आदि अनेक रोग हो जाते हैं।

शाम या रात का भोजन सोने से कम-से-कम तीन घंटे पूर्व कर लेना चाहिए। वैसे तो, अगर निभ सके, सूर्यास्त होने से पूर्व भोजन करने का नियम अति लाभकारी है, विशेषकर वर्षा ऋतु में। परंतु ठीक सूर्यास्त के समय भोजन करना अच्छा नहीं है।

ग्रहण के समय भोजन नहीं करना चाहिए।

कुछ माताएं अधिक मोहवश बच्चों को सोते से जगा-जगाकर भोजन कराती हैं। परंतु इस प्रकार किया हुआ भोजन अच्छी तरह नहीं पचता।

दोपहर और रात्रि के भोजन के बीच में हरगिज फल आदि कुछ भी नहीं खाना चाहिए।

बिना भूख के और भोजन करने के तुरंत बाद कदापि कुछ न खाना चाहिए। एक बार पूरा भोजन करने के बाद सात घंटे से पहले कुछ भी थोड़ी मात्रा में भी खाना ठीक नहीं। करारी, स्वाभाविक भूख मेंही भोजन करना चाहिए। पहले खाया हुआ भोजन पच जाने के बाद ही सच्ची भूख लग सकती है। उत्तम स्वास्थ्य-लाभ करने के लिए यह अत्यंत आवश्यक है कि कोई मनुष्य बिना स्वाभाविक भूख लगे, भोजन कभी न करे। जीवन का यह नियम सदैव एक-सा होना चाहिए। अन्य सब नियमों की अपेक्षा इस नियम के ऊपर स्वास्थ्य अधिकतर अवलंबित है। यदि स्वाभाविक भूख दिन में दो बार लगे तो दो बार और एक वार लगे तो एक ही बार भोजन करना चाहिए। अगर किसी दिन भूख बिल्कुल न लगे तो यह समझकर कि क्योंकि बिना सच्ची भूख लगे अन्न नहीं पचेगा और शरीर को उससे पोषण नहीं मिलेगा, उस दिन उपवास करना उचित है। भोजन भूख की तृप्ति के लिए करना चाहिए, न कि केवल भोजन का समय हो जाने के कारण। वास्तविक भूख का अनुभव बहुत कम लोगों को है और इसका कारण यह है कि हम लोग भूख लगने का मौका ही नहीं आने देते।

परंतु भूख को मारना भी हानिकारक है। जिस तरह भौतिक आग बिना ईंधन के बुझ जाती है, उसी तरह भूख लगने पर भोजन न करने से जठराग्नि मंद हो जाती है। उस समय से घंटों पीछे जो अन्न खाया जाता है, वह अग्नि के नष्ट हो जाने या मंद पड़ जाने के कारण बड़ी कठिनाई से पचता है और फिर दूसरे वक्त भोजन करने की इच्छा नहीं होती। भूख में भोजन न करके, केवल जल

द्वारा ही पेट भर लेने से 'जलोदर' रोग हो जाता है। इसलिए, भूख लगने पर भोजन के समय को टालना अक्लमंदी नहीं है। आयुर्वेद में कहा है :

न पीडयेत् इंद्रियाणि न चैतान्यतिलालयेत्।

रात को अंधेरे में अर्थात् बिना रोशनी के भोजन करना ठीक नहीं होता। भोजन में अगर तिनका, कीड़ा आदि पड़ा हो या खाने के समय पड़ जाय तो अंधकार के कारण मालूम न पड़ेगा।

मल-मूत्र की शंका में भोजन नहीं करना चाहिए, ऐसी शंका से निवृत्त होकर ही भोजन करना उचित है।

जब थकान अधिक हो उस समय भोजन कदापि न करना चाहिए, क्योंकि पाचनशक्ति समय-विशेष की शारीरिक शक्ति के अनुपात से दृढ़ या निर्बल होती है। अतिशय थकान में भोजन करने से कितने ही मनुष्यों की जान चली गई है, इसलिए थकान के समय आराम करना या सो लेना चाहिए और फिर भोजन करना चाहिए।

भोजन और शुद्धता

भोजन की शुद्धि के लिए यह परम आवश्यक है कि जिस वस्तु की दाल, तरकारी और जिस अन्न के आटे का भोजन बनाना है, वह साफ हो। अन्न घुना न हो, उसमें दुर्गंध न आती हो और मिट्टी-कंकड़ आदि न मिले हों। अगर आटा शुद्ध सौर साफ अन्न का न होगा, तो उसके खाने से कुछ दिन में पेट में कीड़े पड़ जाते है, पांडु रोग हो जाता है, अग्नि मंद हो जाती है और शरीर दिन-पर-दिन दुबला होता चला जाता है।

पाकशाला या रसोईघर लिपा-पुता, साफ और हवादार हो; उसमें अंधेरा और मकड़ी के जाले आदि न हों और उसकी छत व दीवारें धुएं से काली न हो रही हों। आसपास शौचालय व पेशाब की मोरियां न हों। भोजन बनाने के लिए आग जलाने से कारबोनिक एसिड आदि गैस उत्पन्न होती है और आसपास की ओर विशेष रूप से रसोईघर की हवा गंदी हो जाती है। इसलिए रसोईघर रहने के कमरों से दूर होना चाहिए और उसमें हवा आने-जाने के लिए दरवाज़े और खिड़कियां भी काफी होनी चाहिए। धुआं निकलने के लिए ऐसे रास्ते बने हों कि धुआं बिना रुके निकल जाय। अगर छत में से चूल्हे के ऊपर ही एक चौड़े नल में होकर बाहर धुआं निकल जाने का प्रबंध कर दिया जाय तो न तो रसोईघर में अधिक धुआं फैलने से छत और दीवारें मैली होंगी और न धुआं लगने से खाना पकाने वालों की आंखों, कंठ और फेफड़ों को हानि पहुंचेगी। पाकशाला की ओर आसपास की मोरियां ऐसी होनी चाहिएं कि पानी डालते ही बह जाय, सेजिस

मच्छर आदि जीव पैदा न हों। यदि रसोईघर की खिड़कियां और किवाड़ जाली के हों या अन्य कोई ऐसा प्रबंध हो कि बाहर से मक्खियां वगैरह भी रसोई में न आने पायें तो बहुत ही उत्तम है।

प्रायः हिंदुओं में रसोईघर को मिट्टी से पोतने का चलन प्रचलित है। मगर पोता बहुत दिनों तक नहीं बदला जाता जिससे उसमें पीड़े पड़ जाते है और दुर्गंध आने लगती है; इससे सफाई होने की अपेक्षा अस्वच्छता फैलती है। अतः अगर रसोईघर का फर्श कच्चा हो तो पोते को साफ रखना अत्यंत आवश्यक है, वरन् फर्श पक्का करा लिया जाय जिससे वह धोया जा सके और पोतने की जरूरत ही न रहे।

फोड़ा, फुंसी, खांसी, जुकाम या खाज आदि संक्रामक रोग वाली स्त्री से पाचक भोजन नहीं बनवाना चाहिए। पाचक मैला-कुचैला, क्रोधी और यथासंभव हुक्का पीने वाला न हो परंतु वह नित्य प्रति स्नान करने वाला, वस्त्र और हाथों को साफ रखने वाला, मीठा बोलने वाला, शांत स्वभाव वाला और उदार हो। वह अपने नख बढ़े हुए न रखता हो। उसके लिए भोजन बनाते समय नाक या कान में अंगुली डालना, बहुत बोलना अथवा बीच में कुछ खाना उचित नहीं है। नाक आदि साफ करने की आवश्यकता हो तो उसे रसोई से बाहर, अलग जाकर साफ करनी चाहिए और हाथ आदि को धोकर साफ तौलिये से पोंछ लेना चाहिए। पाचक को चाहिए कि हर चीज चतुराई, साफ विधि और धैर्य के साथ बनाए।

भोजन और पानी उस आदमी के हाथ का नहीं खाना-पीना चाहिए जिसको ऐसा रोग हो कि उसका बुरा असर उस भोजन या पानी में चले आने की आशंका हो, जैसे कुष्ठी, श्वासी, व्राणी और गर्मी की बीमारी वाला। ऐसे रोगियों के शरीर से, वायु के साथ निकले हुए विषैले परमाणु खाद्य वस्तु व पेय में चले आते हैं और उसके द्वारा खाने या पीने वाले के शरीर में प्रवेश कर अनेक रोग पैदा कर देते हैं।

भोजन परसने या खिलाने वाले को उचित है कि खाद्य पदार्थ तश्तरी आदि में रखकर देवे, न कि हाथ में लेकर और अगर दूर ले जाना हो तो साफ कपड़े से ढककर ले जाये। गिलास में पानी इस तरह डालना चाहिए और शाक आदि प्रत्येक वस्तु इस प्रकार देनी चाहिए कि भोजन करने वाले के कपड़े खराब न हों।

बाजार की मिठाई और चाट वगैरह जहां तक हो सके, न खानी चाहिए और अगर खाओ तो जो दुकानदार साफ रहता है और अपनी वस्तु को ढककर रखता है, उसकी दुकान से ही लेकर खाना उचित है। जो दुकानदार अपनी चीजों को मक्खी और धूल से बचाने के लिए सफाई से ढककर नहीं रखता, अपने बदन

को खुजलाता रहता हैं या अपना कपड़ा व शरीर मैला रखता है, उसकी दुकान से लेकर तो हर्गिज़ कुछ न खाना चाहिए।

खाने-पीने की वस्तुओं को कभी खुला न रखना चाहिए क्योंकि खुला रखने से उन पर मक्खियां बैठती हैं और कूड़ा-कर्कट, धूल, मकड़ी के अंडे आदि गिर जाते हैं तथा छोटे-छोटे कीड़े, सुरेहरी, घुन आदि घुस जाते हैं, जो पेट में जाकर अपच आदि अनेक प्रकार के रोग उत्पन्न करते हैं। उनको किसी बर्तन में रखकर छींके पर या किसी ऐसी अलमारी में रखना चाहिए, जहां साफ हवा जा सके। खाद्य पदार्थ कटोरदान आदि ऐसे बर्तनों में, जिसमें हवा न आ-जा सकती हो, बंद रखने से जल्द खराब हो जाते है और इस्तेमाल करने योग्य नहीं रहते। जालीदार अलमारी इस काम के लिए अच्छी रहती है। इसमें हवा भी आ-जा सकती है और खाद्य पदार्थ मक्खियों आदि से सुरक्षित भी रहते हैं।

खाने-पीने की चीजों को कभी नहीं लांघना चाहिए; इससे उनमें गर्द पड़ सकती है।

खाद्य सामग्री कभी भूमि पर रखना उचित नहीं हैं; यदि कोई वस्तु गिर जाए तो उसको फेंक देना चाहिए और अगर धोकर व्यवहार में लाई जा सकती हो तो धो लेनी चाहिए।

भोजन पकाने, रखने या खाने के पात्र अति स्वच्छ होने चाहिए अन्यथा भोजन दूषित हो जाएगा और शरीर को हानि पहुंचाएगा। एल्यूमीनियम के बर्तन इस्तेमाल करना ठीक नहीं है क्योंकि वे अच्छी प्रकार साफ नहीं किए जा सकते और भोजन को जहरीला कर देते हैं। पीतल, तांबे या कांसे के बर्तन में खटाई के पदार्थ बिगड़ जाते हैं; उनमें अधिक अरसे तक रखा हुआ घी भी बिगड़ जाता है। पत्थर, मिट्टी, कांच, काठ, सेलखड़ी, चीनी व फूल के बर्तनों में भोजन खराब नहीं होता, इसलिए इनका प्रयोग किया जाए तो अच्छा है। मनु कहते हैं कि "तूम्बे, लकड़ी, मिट्टी और बांस के ही बर्तन होने चाहिए।" अगर अन्य धातु के बर्तन हों तो उन पर बहुधा कलई करा लेते रहना चाहिए। फूटे बर्तनों में भोजन न करना चाहिए।

धोने या मांजने के उपरांत बर्तनों को सदैव स्वच्छ कपड़े से साफ कर देना चाहिए और उस कपड़े को रोज अच्छी प्रकार धो डालना चाहिए। अगर बर्तनों को मांजे हुए कुछ देर हो गई हो तो भोजन परसने के समय भी उनको एक बार फिर साफ कपड़े से पोंछ लेना चाहिए, क्योंकि चाहे वह कितने ही धो और साफ करके रखे गए हों, उन पर कुछ-न-कुछ धूल जम ही जाती है।

जिस बर्तन में एक बार पानी पी लिया हो या खाना खा लिया गया हो, उसको मांजकर ही दुबारा काम में लाना ठीक है। जब बर्तन झूठा हो जाय तो उसको अलग, एक तरफ रख देना चाहिए। यदि वह बर्तन मिट्टी का हो तो उसको

एक बार से अधिक इस्तेमाल नहीं करना चाहिए, क्योंकि एक के साथ दूसरे का स्वभाव और प्रकृति नहीं मिलती, इसलिए अनेक मनुष्यों को एक पात्र से भोजन नहीं करना चाहिए। छोटे-छोटे बच्चों को भी अपने साथ एक पात्र में खिलाना ठीक नहीं है। जूठन अर्थात् दूसरे के भोजन से बचे हुए पदार्थ अथवा उसके साथ खाने से बहुत-से रोग एक से दूसरे में पहुंच जाते हैं। अगर पात्र की कमी हो और भोजन खुश्क हो तो इस नियम का उल्लंघन हो सकता है। स्वास्थ्य की दृष्टि से दूसरे के हुक्के का भी प्रयोग नहीं करना चाहिए, न ही दूसरे के जूठे बाजे को बजाना चाहिए।

भोजन करने का स्थान अर्थात् भोजनशाला साफ-सुथरी और हवादार होनी चाहिए और अगर पाकशाला अलहदा और कुछ दूरी पर हो तो अति उत्तम है। भोजनशाला के अतिरिक्त जहां पर भी अच्छा रमणीय सुंदर स्थान दीखे अथवा जहां मन प्रसन्न हो, वहां ही भोजन किया जा सकता है।

बैठक में या ऐसी जगह भोजन करना ठीक नहीं है जहां अन्य मनुष्य आ-जा सकते हों या जहां बहुत आदमियों का जमघट हो। न ही चारपाई या बिस्तर पर बैठकर भोजन करना उचित है। सामान्यतया, राह चलते या हर जगह बाजार आदि में खाने लगना भी अच्छा नहीं है।

किस प्रकार भोजन किया जाय

भोजन करने से पहले हाथ और मुंह धो, दांत साफ और कुल्ला कर लेना चाहिए। अगर हो सके तो जूता उतारकर ही, पैर धोकर भोजन करना ठीक है। इससे चित्त प्रसन्न होता है और पाचनशक्ति बलवती हो जाती है।

भोजन करने के समय साफ और ढीले कपड़े पहनने चाहिए। खड़े-खड़े खाना अशिष्टता है। लेटकर खाना-पीना भी अच्छा नहीं, परंतु बीमारी की अवस्था में ऐसा कर सकते हैं। साधारण दशा में हाथ में भोजन-पात्र लेकर अथवा खाद्य वस्तु को गोद में रखकर खाना असभ्यता है।

भोजन अगर ज़मीन में बैठकर किया जाय तो पालथी लगाकर बैठना चाहिए या एक पांव खड़ा करके और दूसरे पांव को गिराकर उसी पर बैठा जाए। हाथ की टेक लगाकर बैठना अनुचित है और उकडूं अर्थात् दोनों पैर या घुटने खड़े करके बैठने से पेट दबता है जो स्वास्थ्य के लिए हानिकर है।

थाल के ऊपर अधिक न झुकना चाहिए और न ही प्रत्येक ग्रास लेने के लिए हर बार अपने सिर को नीचे करना चाहिए। न ही सिर को पीछे की ओर मोड़कर, मुंह में ग्रास रखकर ही पानी पीना चाहिए। सहज, स्वभाव, सीधे बैठे रहना उचित है।

बहुत झुककर भोजन करना, अशिष्ट होने के अतिरिक्त, पाचक अंगों के लिए

हानिकर है। अतएव थाली रखने के लिए यदि थालीदान या छोटी-सी चौकी हो तो खाने में सुविधा रहेगी अर्थात् बहुत न झुकना पड़ेगा।

खाने के बर्तन आपके करीब होने चाहिए और भोजन इस प्रकार करना चाहिए कि कोई चीज थाली के बाहर ज़मीन, पहनने के वस्त्र या दस्तरख्वान पर न गिरने पावे। अच्छा तो यह है कि खाना खाते समय अपने आगे की ओर घुटनों पर कोई साफ कपड़ा इस प्रकार डाल लिया जावे कि यदि कोई जूठन गिर जावे तो पहनने के कपड़े खराब न हों। अगर पत्तल या थाली स्वयं उठाओ तो उसके नीचे की जगह भी साफ कर लेनी चाहिए।

भोजन आरंभ करने से पहले पानी का गिलास अपने पास बायीं ओर रख लेना और पीना हो तो बायें हाथ से उठाकर पीना चाहिए। दायां हाथ इस्तेमाल करोगे तो गिलास का बाहरी हिस्सा खराब हो जाएगा। अन्य समय में दायें हाथ से ही गिलास लेकर पानी पीना चाहिए और दायें हाथ से ही गिलास पेश करना चाहिए।

खाना शुरू करने से पहले गला साफ करने के लिए एक या दो घूंट पी लेना चाहिए, लेकिन इससे अधिक हरगिज़ नहीं।

सब पदार्थों को परस्पर मिलाकर भोजन का रंग-रूप न बिगाड़ना चाहिए जिससे कि औरों को ग्लानि हो।

फलों की गुठलियां व छिलके या खाद्य पदार्थ का कोई अंश थाली या फर्श पर न थूकना चाहिए; इससे अन्य लोगों को घृणा होती है और गंदगी फैलती है। अगर आवश्यक हो तो बहुत शांति और तरकीब के साथ ऐसी चीज़ें तश्तरी अथवा थाली में एक तरफ को रख देनी चाहिए।

भोजन सदैव दायें हाथ से करना चाहिए; दोनों हाथ इस्तेमाल करना उचित नहीं है। भोजन इस प्रकार करना चाहिए कि वह मूंछ व दाढ़ी में न लगने पाए।

भोजन करते समय दाल, चावल आदि से सारा हाथ सान लेना फूहड़पन प्रकट करता है। अंगुलियों की दो जोड़ों के उपर भोजन न लगना चाहिए। भोजन के बीच में या उसके बाद बार-बार होंठ या अंगुलियां चाटना सभ्यता के विरुद्ध है।

जब हाथ मुंह के करीब आए तब मुंह खोलना चाहिए, यह नहीं कि अभी ग्रास थाली ही में है और मुंह पहले से खोल दिया जाय। मुंह में इतना ग्रास भी न भरना चाहिए कि मुंह का चलाना कठिन हो जाय। भोजन का ग्रास न बहुत बड़ा हो और न बहुत छोटा ही।

भोजन इस प्रकार नहीं करना चाहिए और न पानी या दूध इस प्रकार पीना चाहिए कि दांत बजें या मुंह अथवा गले से 'डचक-डचक' या किसी अन्य प्रकार

की आवाज निकले। ग्रास मुंह बंद कर चबाना उचित है। मुंह भी जल्दी-जल्दी न चलाना चाहिए।

जब ग्रास मुंह में हो तो उस समय किसी से बातचीत नहीं करनी चाहिए। अगर कुछ कहना हो तो ग्रास खा चुकने के बाद ही कहना उचित है। ग्रास मुंह में होते हुए हंसने से तो बिल्कुल परहेज़ करना चाहिए।

यदि भोजन करते समय खांसने या छींकने की ज़रूरत पड़े तो मुंह को थाल या पत्तल से परे फेरकर संभलकर खांसना या छींकना चाहिए।

भोजन करने में जल्दी न करनी चाहिए; खूब चबाकर खाना आवश्यक है। ग्रास इतना चबाना चाहिए कि उसका रस बन जाय और वह स्वतः ही अर्थात् निगलने के यत्न किए बिना ही, हलक के नीचे उतर जाय। मुंह में दांत इसलिए हैं कि खाद्य पदार्थ खूब महीन होकर पेट के अंदर जाये। चबाने से मुंह की लार खाई हुई वस्तु से मिल जाती है। इस तरह ग्रास के महीन हो जाने और उसमें लार मिल जाने से भोजन के पचने में मदद मिलती है। जल्दी-जल्दी भोजन निगल जाने से आमाशय पर बड़ा जोर पड़ता है और वह धीरे-धीरे निर्बल होकर खराब हो जाता है। बहुत जल्द खाने वाला मनुष्य प्रायः अधिक भी खा लेता है। यदि चबाने के लिए समय न हो तो उस समय न खाना चाहिए क्योंकि अधचबे खाने से न खाना अच्छा है। अगर मनुष्य इसी एक नियम का पालन करता रहे तो वह कभी बीमार न होगा। स्मरण रखना ज़रूरी है कि भोजन दोनों ओर से चबाना चाहिए, क्योंकि जिस ओर की पंक्ति का प्रयोग न करोगे, उसी ओर के दांत खराब हो जाएंगे। यदि आप कुछ समय तक ऐसा भोजन करें जिसको चबाने की ज़रूरत न पड़े तो थोड़े ही दिनों में आपके दांत बेकार रहने के कारण कमज़ोर पड़ जाएंगे और हिलने लगेंगे।

जहां एक दूसरे का जूठा या एक पात्र में खाना वर्जित है, वहां यह वांछनीय है कि कुटंब के सब आदमी, छोटे और बड़े, स्त्री व पुरुष, एक साथ बैठकर भोजन करें। इससे सबको एक-सा भोजन मिलेगा, भोजन करने का समय निश्चित हो जाएगा और भोजन करने में अधिक आनंद आएगा। इससे पाचक और परोसने वाले को भी आसानी रहेगी। गुजरात आदि प्रांतों में यही रिवाज है। उत्तर भारत के निवासियों की यह धारणा, कि पत्नी का पति के सामने अथवा पुत्रवधू का ससुर के सामने भोजन करना भारतीय संस्कृति के विरुद्ध है, बिल्कुल निराधार है।

अगर भोजन साथ न किया जाय, तो पहले, बच्चे, गर्भवती स्त्री, रोगी, मेहमान व वृद्ध को खिलाना चाहिए।

जब आप दस्तरख्वान पर बैठकर किसी बर्तन में से खाना निकालें या अपने साथियों को खाने की वस्तुएं बांटें, तो अपने लिए अधिक भाग या अपेक्षाकृत अधिक

चीज़ न लेनी चाहिए; ऐसा करना परले दर्जे का स्वार्थ है।

अपने साथियों की प्रकट या अप्रकट अनुमति के बिना बेर, खजूर या अनार आदि को एक साथ दो-दो नहीं खाना चाहिए क्योंकि इससे हिरस और लालच साफ जाहिर होता है।

अगर ऐसी जगह भोजन करना पड़े जहां और लोग भी उपस्थित हों, तो उन्हें भी भोजन में शरीक होने का निमंत्रण देना चाहिए। साथ ही, निकट बैठने वालों का कर्तव्य है कि वह खाद्य वस्तु की ओर घूर-घूरकर न देखें और अगर कोई खाद्य वस्तु लोगों में बांटी जा रही हो तो स्वयं न मांगें।

जब कोई भोजन कर रहा हो या करने के लिए बैठा हो और आपको भोजन पेश करे अथवा शरीक होने को कहे और आपको खाना स्वीकार न हो तो इस तरह का वाक्य कहना चाहिए, 'धन्यवाद, मुझे भूख नहीं है' अथवा 'धन्यवाद, इस समय इच्छा नहीं है।' यह कहना उचित नहीं है कि 'मुझे यह भोजन पसंद नहीं है' या कि वह आपके धार्मिक विश्वास अथवा सिद्धांतों के विरुद्ध है। अगर कोई सिगरेट या पान पेश करे और आप सिगरेट न पीते हों अथवा पान न खाते हों तो 'धन्यवाद, क्षमा चाहता हूं' आदि वाक्य कहकर शिष्टता से मना कर देना चाहिए।

सिख लोग तंबाकू से बहुत परहेज़ करते हैं, अतएव किसी सिख मित्र को सिगरेट या सिगार आदि न पेश करना चाहिए।

भोजन और मन

भोजन करते समय एकाग्रचित्त रहना उचित है। जिस तरह व्यायाम करते समय मन शरीर पर रहे तो अधिक लाभ देता है, उसी तरह भोजन करते समय मन भोजन पर ही रहे तो वह शरीर को अधिक लगता है। इसीलिए किसी मनुष्य से उसका भोजन छुड़ाकर बीच में कोई काम लेना अथवा भोजन करते समय अखबार पढ़ना, अधिक बोलना और वाद-प्रतिवाद या बहुत हंसी-मजाक करना ठीक नहीं है। साथ ही, बिल्कुल चुप्पी साधना या मातमी शक्ल बनाए रखना भी बुरा है। छोटी-मोटी मन प्रसन्न करने वाली बातें करते रहने से भोजन में आनंद आता है।

भोजन करते समय शांत और प्रसन्नचित्त रहने की आवश्यकता है, क्योंकि विश्वास और विचारों का प्रभाव शरीर पर तुरंत हो जाता है अर्थात् उस समय जैसी आपकी मनोवृत्ति रहेगी वैसा ही गुण उस खाद्य द्रव्य में से उत्पन्न होगा। जल्दी-जल्दी घबराहट में, चिंतित या क्रोधित मन से जो भोजन किया जाता है, उससे शरीर को, चाहे भोजन कैसा ही अच्छा क्यों न हो, समुचित लाभ नहीं पहुंचता। इसलिए भोजन के समय मरने आदि का समाचार सुनाना ठीक नहीं; न

ही ऐसी बातें या ऐसा व्यवहार करना चाहिए जिससे क्रोध या घृणा आदि उत्पन्न हो। मन की अशांत अवस्था में भोजन करने से उल्टे हानि होती है।

भोजन करते समय अपच, आंव इत्यादि पेट के रोगों की चर्चा करना भी उचित नहीं है और न ही मनुष्य को यह समझना चाहिए कि मेरा मेदा ठीक नहीं है। केवल यह विचार ही स्वस्थ मेदे को भी बीमार कर देगा।

जो लोग खाद्य पदार्थों को खराब बतलाते है और उनमें अनेक त्रुटियां निकालते हुए, अप्रसन्नता के साथ भोजन करते हैं, उन्हें वह भोजन पचता नहीं। यदि किसी अच्छे अन्न को बुरे भाव से खाया जाएगा और मनुष्य को पक्का विश्वास हो जाएगा कि यह खाया हुआ अन्न मेरे पेट में विकार उत्पन्न करेगा तो अवश्य बीमारी पैदा होती है। इसलिए उपनिषद् में कहा है कि :

"अन्नं न निन्द्यात् तद्व्रतम्।" तै० उप० ३.७

अर्थात् "अन्न की कभी निंदा न करो।" अतएव भोजन करने के समय यही भावना रखनी चाहिए कि "यह अन्न बड़ा अच्छा है और इससे मेरे शरीर में बल, स्वास्थ्य और सौंदर्य का प्रवेश हो रहा है।" यदि यह भावना दृढ़ होगी तो साधारण, बुरा अन्न भी अथवा वह भोजन भी जो आपकी रुचि के अनुकूल न हो, बाधक न होगा। जो अन्न की बात है वही जल अथवा सब पदार्थों के विषय में ठीक है।

कितना भोजन किया जाय

भोजन चाहे कितना ही स्वादिष्ट, गुणकारी या स्वास्थ्यप्रद क्यों न हो, भूख से अधिक कभी न खाना चाहिए। सात्विक आहार भी अधिक खा लेने पर राजसी हो जाता है। अतः पेट को इतना न भर लेना चाहिए कि उसमें जगह ही न रहे। प्राकृतिक चिकित्सकों का कहना है कि यदि मनुष्य आदर्श स्वास्थ्य रखता है तो पहली डकार इस बात की सूचक है कि जितना उसे खाना चाहिए था उतना खा चुका, परंतु अधिकतर विशेषज्ञ इससे सहमत नहीं हैं। कभी किसी के अतिथि बनकर संकोचवश अथवा होड़ लगाकर भी ज्यादा न खाना चाहिए। व्यापार, धंधे व रोज़गार आदि में संकोच व प्रतिस्पर्धा हो सकती है, खाने-पीने में नहीं। अगर आदमी सही प्रकार का भोजन करे और भूख से ज्यादा न खाये तो वह कभी बीमार न हो। अधिक न खाने से मनुष्य स्वस्थ तो रहता ही है परंतु दीर्घजीवी भी होता है। अधिक भोजन करना ही बाह्य एवं आंतरिक व्याधियों का कारण है। आयुर्वेदज्ञों ने लिखा है :

"जो लोभी मनुष्य जिह्वा के वश होकर पशु के समान अधिक परिमाण में

भोजन करते हैं, उनके सब रोगों का कारण अजीर्ण रोग शीघ्र उत्पन्न हो जाता है।"

नब्बे प्रतिशत रोग अधिक या अनुपयुक्त भोजन करने से पैदा होते हैं। विशेषज्ञों का कहना है कि भूख से अधिक भोजन करना, दुर्भिक्ष और महामारी की अपेक्षा अधिक मौतों के लिए उत्तरदायी है। ठूंस-ठूंसकर खाना ब्रह्मचर्य के लिए भी हानिकर है। आवश्यकता से अधिक खाने वाले कभी सुखी नहीं देखे गए। उनके शरीर में बल, वीर्य, स्फूर्ति और शांति नहीं मिल सकती। वे सदा दुखी, रोगी, आलसी और अल्पायु होते हैं। उनका शरीर उदास, मन चिड़चिड़ा और क्रोधी हो जाता है। इस प्रकार उनको युवावस्था में ही वृद्धता के दुःख उठाने पड़ते हैं।

लेकिन बिल्कुल कम भी न खाना चाहिए, क्योंकि मात्रा से कम खाने के कारण शरीर दुर्बल हो जाता है। विदुर जी धृतराष्ट्र को उपदेश करते हैं:

गुणाश्च षण्मितभुक्तं भजन्ते आरोग्यमायुश्च बलं सुखं च।
अनाविलं चास्य भवत्यपत्यं न चैनमाद्यून इति क्षियन्ति॥ उद्योगपर्व

अर्थात् "मिताहारी, आवश्यकता से न न्यून और न अधिक खाने वाले मनुष्य की ये ६ गुण सेवा करते हैं—अर्थात् उसका आरोग्य, आयु, बल व सुख बढ़ता हैं, उसके पवित्र संतान होती है और वह पेटू होने के आक्षेप से बच जाता है।"

कैसा भोजन किया जाय

हिताहारोपयोगः एकः एव पुरुषवृद्धिकरो भवति।
अहिताहारोपयोगः पुनर्व्याधिनिमित्त इति॥

—च० स० २५।३१

अर्थात् "हितकर आहार का उपयोग ही शरीर की वृद्धि का एकमात्र कारण है; इसके विपरीत अहितकर आहार का सेवन विभिन्न व्याधियों का कारण है।" स्वास्थ्य के दूसरे हेतु भी हैं, परंतु उन्हें गौण ही समझना चाहिए।

कुनूर में भारत सरकार द्वारा स्थापित आहार-अन्वेषक संस्था (Nutritional Research Pasteur Institute) के अध्यक्ष, महाशय मैककैरीसन ने वर्षों के परीक्षणों से सिद्ध किया हैं कि बंगाली, गुजराती, पंजाबी, मद्रासी आदि की प्रकृति अथवा स्वभाव का कारण उनका परंपरागत आहार ही है; अर्थात् यदि आहार में समुचित परिवर्तन किया जाए तो मनुष्य के शरीर का ढांचा ही समूचा बदला जा सकता है और अस्वास्थ्यकर कहे जाने वाले जलवायु प्रदेश गुजरात, बंगाल आदि के निवासी भी वैसे ही पुष्ट, स्वस्थ और बलवान हो सकते हैं, जैसे स्वास्थ्यकर कहे जाने वाले राज्यों, पंजाब, सरहद आदि के निवासी होते हैं।

यद्यपि इस प्रकार आयुर्वेद के उक्त कथन की पुष्टि आधुनिक विज्ञान भी करता है, परंतु हो सकता है कि कुछ विशेषज्ञों की राय में इसमें कुछ अतिशयोक्ति हो तथापि इसमें संदेह नहीं कि हितकर आहार स्वास्थ्य का प्रधान कारण है।

अतएव आरोग्य के इच्छुक मनुष्य को चाहिए कि बार-बार अनुभव द्वारा निर्णय कर ले कि कौन आहार तथा द्रव्य उसके लिए हितकर हैं तथा कौन अहितकर।

रसना पर काबू पाना पवित्र जीवन की पहली और अनिवार्य कुंजी है; जो अपनी जिह्वा को काबू में कर सकता है वह सब इंद्रियों को वश में कर सकता है। मनुष्य जैसा भोजन करता है वैसा ही उसका मन व शरीर बन जाता है। अतएव भोजन सादा, हल्का व सात्त्विक ही करना चाहिए; खाद्य पदार्थ जितने अधिक अपनी प्राकृतिक दशा के निकट होंगे, उतना ही गुण करेंगे। भिन्न-भिन्न स्वाद के और बहुत प्रकार के पदार्थ खाना ठीक नहीं; ऐसा करने से अधिक खाने का स्वाद पड़ जाता है और भोजन में विषमता भी आ जाती है। जहां बनावटी स्वाद है वहां तंदुरुस्ती नहीं। शारीरिक शक्ति भोजन के प्रकार और परिमाण पर निर्भर नहीं हैं, किंतु मनुष्य कितना और क्या पचा सकता है, इस पर निर्भर है। इसलिए अधिक मसालेदार अथवा पेचीदा तरीके से पकाये हुए अत्यंत स्निग्ध व गरिष्ठ भोजन खाने से लाभ के बदले हानि की ही संभावना अधिक रहती है।

फल, मेवा तथा दूध मनुष्य का सर्वोत्तम आहार है। प्राकृतिक चिकित्सकों का मत है कि मनुष्य फलाहारी है और उसके पचाने वाले यंत्रों की बनावट फल और मेवा चबाने के लिए ही उपयुक्त है। संसार भर के विद्वानों का अनुभव बतलाता है कि फल खाने से बुद्धि अत्यंत तीव्र और निर्मल हो जाती है, जठराग्नि प्रबल रहती है, शरीर लचीला और फुर्तीला हो जाता है और काम-क्रोध आदि मानसिक वेग बहुत कम सताते हैं।

फलाहार से मनुष्य दीर्घायु, दीर्घकाय और बलवान भी हो सकता है। जो लोग समझते हैं कि फलाहार से मेहनत करने की ताकत नहीं रह जाती, वे गलती पर हैं। अंतर्राष्ट्रीय खेल और दौड़ों में सिद्ध हो चुका है कि फलाहार करने वाले खिलाड़ी ही सर्वप्रथम पुरस्कार प्राप्त करते हैं, उनमें सबसे अधिक सहनशक्ति होती है, उनका दम बहुत कम फूलता है और वह अत्यंत स्फूर्तिवान होते हैं। इनके बाद दूसरा स्थान शाकाहारियों का आता है और सबसे अंत में मांसाहारियों का।

वेद में लिखा है कि "स्वादोः फलस्य जगध्वाय" अर्थात् मोक्षमार्गी को सुस्वादु फलों का आहार करना चाहिए। यह सब ही जानते हैं कि हमारे प्राचीनकालीन ऋषि-मुनि अधिकतर फल व कंद-मूल तथा गाय के दूध पर ही निर्वाह करते थे।

कोई मनुष्य यदि ब्रह्मचारी रहना चाहे तो उसे फलाहार ही करना चाहिए। फलाहार से कामचेष्टा कम हो जाती है। इसलिए विधवा स्त्रियों को फलाहार के

द्वारा काम को शरीर में ही शोषण करने के लिए मनु भगवान् ने विधान किया है :

कामं तु क्षपयेद्देहं पुष्पमूलफलैः शुभैः।
न तु नामापि गृहणीयात् पत्यौ प्रेते परस्य तु॥

फलों को प्राकृतिक अवस्था में ही खाना चाहिए। जो फल बिना छिलका उतारे खाये जा सकते हैं, उन्हें खाना श्रेष्ठ है। सुखाने, कृत्रिम उपायों से पकाने या सुरक्षित करने से उनके गुण कम हो जाते हैं। खाने के योग्य फल पके हुए तो हों, परंतु अधिक पके हुए न हों। प्रसिद्ध जर्मन डाक्टर जस्ट की सम्मति में तो अधपके फल खाना ही अधिक लाभकारी है। रसीले फल अपेक्षतया अच्छे होते हैं। ज्यादा खट्टे फल अधिक खाना ठीक नहीं है। फल ताज़ा होने चाहिए और उनको भी अन्न की तरह अच्छी तरह चबाना चाहिए। उचित है कि इस्तेमाल करने से पूर्व फलों को ताज़ा पानी से खूब धो लिया जाय।

जो फल बर्फ से, आग से, खराब हवा से, सांप से अथवा कीड़े वगैरह से बिगड़ गया हो, बिना समय अर्थात् बेमौसम फला हो, खराब जमीन में पैदा हुआ हो या पककर बिगड़ गया हो, वह कभी न खाना चाहिए।

दूध पूर्ण भोजन है अर्थात् दूध में वे सब अंश मौजूद हैं जो मनुष्य के स्वास्थ्य के लिए आवश्यक हैं। शतपथ ब्राह्मण २।५।१६ में लिखा है कि :

एतद्वै पय एव अन्नं मनुष्याणाम्।

अर्थात् "यह दूध ही मनुष्य का अन्न है।" गाय और बकरी का दूध हल्का और नीरोग होता है। भैंस का दूध ताकतवर किंतु भारी होता है। अतएव रोगी अथवा दुर्बल आदमियों को भैंस का दूध नहीं पीना चाहिए।

दूध देने वाला जानवर स्वस्थ और नीरोग होना आवश्यक है; रोगी जानवर का दूध पीने से मनुष्यों को क्षय आदि भयंकर रोग हो जाते हैं। गाय-भैंस के ब्याने अर्थात् बच्चा देने के दस दिन के बाद ही उसका दूध मनुष्य को इस्तेमाल करना चाहिए। बाज़ारू दूध बीमारियों की जड़ है; इससे जहां तक हो सके, बचना चाहिए। स्वस्थ गाय का तत्काल थन दुहा, धारोष्ण दूध अर्थात् जिसकी स्वाभाविक गर्मी न निकल गयी हो, मन को शांत व बुद्धि को पवित्र करने वाला, बल बढ़ाने वाला, हल्का और अग्निदीपक होता है। वह आग पर गर्म किए हुए दूध की अपेक्षा जल्द पच जाने वाला और कहीं अधिक लाभप्रद होता है। ठंडा, देर तक रखा हुआ दूध बिना गर्म किए न पीना चाहिए, लेकिन एक से अधिक उबाल कदापि न देना चाहिए क्योंकि अधिक उबाल से उसका पोषक अंश नष्ट हो जाता है।

गाय का दही और मट्ठा बहुत गुणकारी है, विशेषतया पेट के रोगियों के लिए। अगर दोपहर को भोजन कर लेने पर सेंधा नमक और भुना हुआ सफेद

जीरा डालकर प्रत्येक दिन मट्ठा पी लिया जाय, तो कभी उदर-संबंधी रोगों में वैद्य का मुंह ही न देखना पड़े। साधारणतया मट्ठा दोपहर के बाद न पीना चाहिए।

चोकर या छान आटे से अलहदा न करना चाहिए। यह अन्न का एक हिस्सा है और मनुष्य के शरीर के लिए अति उपयोगी है। चोकर समेत खाने से अन्न जल्द पच भी जाता है। इसलिए हाथ की चक्की के पिसे हुए और बिना छने अर्थात् मोटे आटे की रोटियां अच्छी होती हैं और मैदे की रोटियां या पकवान हानिकर होता है। इसी प्रकार हाथ अर्थात् ओखली का कुटा हुआ और बिना मांड निकला हुआ चावल खाना चाहिए; मशीन द्वारा कुटा हुआ अथवा सफेद पालिश किया हुआ चावल, जो बाजार में मिलता है, स्वास्थ्य के लिए अच्छा नहीं होता। दाल भी साबुत ही अर्थात् बिना छिलका उतारे खाना अधिक लाभकारी है।

वैसे तो जिस भोजन का गुण अपने स्वभाव से मिल जाए, जो अपने शरीर को लाभ करे वही भोजन उत्तम और अनुकूल रहता है, परंतु लाल चावल, सांठी चावल, जौ, गेहूं, मूंग, अरहर, सेंधा नमक, अनार, आंवला, मुनक्का, खजूर या छुहारे, फालसे, खिरनी, बिजौरा, नीबू, संतरा, आम, मीठे रस वाली चीजें बथुआ, जीवंती, लौकी, पोई, परवल, ज़िमीकंद, गाय का दूध, दही, घी मट्ठा व तिल का तेल व शहद ये पदार्थ स्वभाव से हितकारी अर्थात् आरोग्यजनक हैं। इनके सेवन सें लाभ के अतिरिक्त हानि का खटका नहीं; किंतु अन्य नियमों की भांति यह नियम भी तंदुरुस्तों के लिए है, बीमारों के लिए नहीं।

हमेशा एक ही तरह की चीज़ें न खानी चाहिए। अदल-बदल या हेर-फेर कर भोजन करना चाहिए जिससे मेदे को हर प्रकार के पदार्थ पचाने की आदत और शक्ति बनी रहे।

ठोस भोजन की ओर अधिक रुचि होनी चाहिए। जो चीज़ें निगलने से पहले खूब चबानी पड़ती है, वे तरल, पतले या मुलायम भोजन की अपेक्षा शीघ्र और आसानी से पचने वाली होती हैं, क्योंकि खूब चबाने से ही मुंह की लार उचित परिमाण में मिलती है और वही भोजन को पचने योग्य बनाती है।

भोजन किंचित् गर्म अर्थात् भोजन का तापक्रम शरीर के तापक्रम के बराबर होना चाहिए। ऐसा भोजन स्वादिष्ट होता है, जल्द पच जाता है, वात को शांत करता और कफ को सुखा देता है। परंतु बहुत गर्म या बहुत ठंडा भोजन मेदे के लिए ज़हर का काम देता है। बहुत गर्म दूध और चाय भी हानि करती है। अत्यंत उष्ण आहार वीर्य को पतला कर देता है, नाड़ियों में खुश्की करता तथा दांतों में अनेक प्रकार के रोगों को बढ़ाकर उन्हें निर्बल कर देता है। इसी प्रकार मलाई की बर्फ या कुलफियां और बासी अर्थात ३ घंटे से पहले का पका हुआ भोजन, जहां तक बन पड़े, न खाना चाहिए। बासी भोजन को गर्म करके भी खाना ठीक नहीं

है। अगर भोजन बहुत गर्म हो तो उसमें फूंक न मारनी चाहिए। इतनी देर सब्र करना चाहिए।

अधपके या जले हुए, सड़े बुसे, सत्त्व निकाले हुए, रूखे और स्वादरहित अथवा ऐसे भोजन को जिसमें बाल या मक्खी आदि गिर गयी हो, न खाना चाहिए। ऐसा भोजन करने से चित्त अप्रसन्न होता है और अच्छी प्रकार न पकने के कारण स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ता है। अगर दूध आदि कोई पतला व चिकना पदार्थ भी साथ में प्रयोग किया जाय तो रूखे-सूखे पदार्थ के खाने में कोई हानि नहीं है।

कृत्रिम अथवा अपवित्र खाद से उत्पन्न किये गए अन्न और फल यथासंभव नहीं खाने चाहिए क्योंकि वे उतने गुणकारी नही होते जितने स्वाभाविक दशा में अथवा पत्तों और पशुओं के गोबर-मूत्र प्राकृतिक खाद से उत्पन्न किए अन्न और फल। वैज्ञानिक रीति से सिद्ध हो चुका है कि रासायनिक और मनुष्यों के मल-मूत्र व मछली आदि से तैयार किया गया मलिन खाद अन्न को दूषित कर देता है और वह दूषित अन्न खाने वाले को हानि पहुंचाता है और रोग पैदा करता है। इसीलिए मनु भगवान कहते हैं कि :

'अमेध्यप्रभवाणि च।'

अर्थात् "अपवित्र स्थानों में उत्पन्न होने वाला अन्न न खाना चाहिए।"

प्याज़, लहसुन आदि पदार्थ यद्यपि अनेक रोगों के नाशक हैं, तथापि तमोगुण प्रधान होने के कारण विद्यार्थी के लिए त्याज्य हैं। अगर गृहस्थ खाए तो इस प्रकार खाये कि मुंह से दुर्गंध न आए।

वैदिक व बौद्ध धर्मावलंबियों और बहुत-से चिकित्सकों का मत है कि मांस व अंडा मनुष्य का भोजन नहीं है; परंतु इस्लाम, ईसाई मत और कुछ चिकित्सक भी इनके खाने की आज्ञा देते हैं।

जिज्ञासा भाव से किए गए वादविवाद अथवा सार्वजनिक व्याख्यान आदि के अवसर को छोड़कर किसी व्यक्ति के खाद्य-पदार्थों की निंदा न करनी चाहिए। हो सकता है कि मांस खाने वाला आपकी राय में गलत रास्ते पर हो, परंतु वह भोजन उसको रुचिकर है और शिष्टाचार का तकाजा है कि आप, दूसरों की भावनाओं का मान करें। अतएव किसी मांसाहारी के सामने बेमौका मांस आदि के विषय में अपशब्द कहना असभ्यता में शामिल हैं।

साथ ही मांसाहारी लोगों को चाहिए कि वह भी निरामिषभोजियों की भावनाओं का आदर करें और यथासंभव उनके बहुत निकट बैठकर भोजन न करें, क्योंकि ऐसा करने से उनको ग्लानि होती है; विशेषकर जबकि वह स्वयं भी भोजन कर रहे हों।

हर प्रकार का नशा, अर्थात् शराब, ताड़ी, तंबाकू, भांग, गांजा, चरस,

कोकेन आदि स्वास्थ्य के बैरी हैं। इनसे बहुत दूर रहना चाहिए, नशीली चीज़ों के प्रयोग से शारीरिक और मानसिक हानि के अतिरिक्त धन का नाश, चरित्र का बिगाड़ और आत्मसंयम की क्षति होती है।

चाय या कहवा

यद्यपि आजकल जलपान के रूप में अथवा मित्र-मंडलियों में समय काटने व मनोरंजन के अर्थ चाय और कहवे का इस्तेमाल बहुत बढ़ गया है, परंतु ये वस्तुएं स्वास्थ्य के लिए अच्छी नहीं हैं। अतएव अगर पी भी जायं तो कम मात्रा में पीना आवश्यक है। चोकर व तुलसी की चाय अच्छी होती है; इसलिए जो लोग चाय के बिना नहीं रह सकते, उन्हें चाहिए कि इनका ही प्रयोग करें।

अगर चाय आदि पीना हो तो दाहिने हाथ से प्याला अपने होंठों तक ले जाना, तश्तरी को बायें हाथ से उसके नीचे रखना और पेय को सरलता से पीना चाहिए। एक सांस में ही नहीं बल्कि धीरे-धीरे ठहरकर पीना चाहिए। चाय की तश्तरी में लेकर अथवा चम्मच से घूंट-घूंट पीना ठीक नहीं है। चम्मच से चीनी घोलने के बाद उसको प्याले में छोड़ देना अशिष्टता है, बल्कि तश्तरी में उठाकर रखना चाहिए। प्याले में इतनी चाय भरना उचित नहीं है कि दूध मिलाने अथवा चीनी घोलने से वह लबरेज़ होकर तश्तरी में गिरने लगे।

अगर दो-चार व्यक्ति एक साथ बैठकर चाय पीते हों और उनमें गृहस्वामिनी भी हो तो यह उसका कर्तव्य है कि चाय बनाये अथवा परसे।

भोजन के उपरांत

भोजन करने के बाद नाली, मोरी या उस स्थान पर जो इस कार्य के लिए नियुक्त हो, हाथ धोकर, अच्छी प्रकार दांत साफ करके तथा कुल्ला करके मुंह और हाथों को किसी साफ अंगोछे से पोंछ लेना चाहिए। जूठे मुंह व हाथ कहीं जाना या काम करने बैठ जाना अच्छा नहीं है।

अगर गर्म दूध या गर्म भोजन किया हो तो गर्म पानी से कुल्ला करना चाहिए, वरन् थोड़ी देर ठहरकर ही ठंडा पानी इस्तेमाल करना चाहिए।

भोजन करने के बाद अंगड़ाई अथवा जोर से डकार लेना अच्छी आदत नहीं है और सभ्य समाज में बहुत बुरी समझी जाती है।

भोजन करने के बाद फौरन पेशाब करना स्वास्थ्य के लिए अच्छा है। इस नियम के पालन से कमर और गुर्दे के दर्द की बहुत कम आशंका रहती है।

भोजन करने के बाद दूसरे लोगों के सामने दांतों को कुरेदना अच्छा नहीं है। अगर दांत साफ करने की ज़रूरत ही हो तो दूसरे लोगों से अलग होकर स्वच्छ, मुलायम तिनके या टूथपिक से साफ कर लेने चाहिए। अन्यथा दांत

कुरेदने की आदत ही बुरी है; इससे दांत छर्रेरे व निर्बल हो जाते हैं। दांतों को सुई, आलपीन या और किसी कठोर चीज़ से कुरेदना तो दांतों के लिए बहुत ही हानिकारक हैं।

दोपहर के समय भोजन करने के बाद सो जाना पाचनक्रिया और फलतः स्वास्थ्य के लिए हानिकर है। रात को भी भोजन करने के तीन घंटे बाद ही सोना चाहिए।

भोजन करने के शीघ्र उपरांत बेंच, स्टूल, कुर्सी आदि पर अधिक देर तक बैठने, एक आसन बैठने, स्नान करने, धूप में अथवा तेज़ चलने, घोड़ा या घोड़ी की सवारी करने, साइकिल पर चढ़ने अथवा अन्य व्यायाम या कड़ा शारीरिक अथवा मानसिक परिश्रम करने आदि से नाना प्रकार के रोग हो जाते हैं। इसलिए कम से कम आध घंटे शांति के साथ विश्राम करने की आवश्यकता है।

भोजन करने के बाद चित्त को अप्रसन्न करने वाली और चिंता पैदा करने वाली बातें सुनना और बदबूदार व मन बिगाड़ने वाली चीज़ें देखना, छूना या सूंघना अच्छा नहीं है। बुरी चीज़ें देखने व सूंघने से बहुधा वमन हो जाता है।

यदि आप पान खाते हैं तो कम खाने चाहिए। जिनके दांत निर्बल हों, नेत्र रोग से पीड़ित हों, भूखे हों तथा जिन्हें दस्त आते हों, उन्हें पान न खाना चाहिए। यह कामोद्दीपक है, अतः विद्यार्थी और विरक्त को इससे दूर रहना चाहिए।

बीमारी की अवस्था को छोड़कर, पाचन के अर्थ कोई चूर्ण व शर्बत आदि न प्रयोग करना चाहिए। दस्तावर या हाज़मा करनेवाली औषधियों से लाभ के बदले उलटे हानि होती है। अगर इस्तेमाल की ही जाय तो किसी चतुर चिकित्सक के मशवरे से करनी चाहिए।

२५

सोना

प्राणी सारे दिन रोजी के लिए दौड़धूप अथवा अन्य प्रयोजन के लिए परिश्रम करता है। इससे वह थक जाता है और आगे, अधिक काम नहीं कर सकता। परिश्रांत होने पर उसे आराम करने की आवश्यकता होती है। प्रकृति ने नींद के रूप में इस शरीर-रूपी यंत्र को विश्राम देने का प्रबंध किया है। रात को सोने के अनंतर प्रातःकाल उठने पर मनुष्य और अन्य हर प्राणी ताजा और फिर काम करने के योग्य बन जाता है। नींद कितनी आवश्यक है, इसका अनुमान एक रात बिल्कुल न सोकर लगाया जा सकता है। २४ घंटे जागते रहने से अगले दिन मनुष्य का किसी काम में मन नहीं लग सकेगा। उसका सिर भारी हो जाएगा, दिमाग काम करना छोड़ देगा, शरीर में अंगड़ाइयां आयेंगी और स्वास्थ्य को प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से बहुत प्रकार की हानि पहुंचेगी। हर विषय की भांति सोने के भी कुछ नियम हैं, जो नीचे दिए जाते हैं।

स्वप्नरहित गहरी नींद ही सुखदायक व स्वास्थ्यवर्द्धक है, दिन में खूब परिश्रम करोगे तो नींद अच्छी आयेगी। जो लोग अधिक भोजन करते हैं, जिनको कब्ज होता है या जिनकी पाचन क्रिया में अन्य गड़बड़ होती है, जो रात को देर में भोजन करते हैं और जो सोने से पहले चाय, कहवा या तंबाकू पी लेते हैं, उन्हें अच्छी नींद नहीं आती।

खाना खाकर तुरंत सो रहने से खाना अच्छी तरह नहीं पचता और रात को स्वप्न भी दिखाई देते हैं। अगर पानी या दूध भी पीना हो, तो सोने से कम से कम एक घंटा पूर्व पी लेना चाहिए। शाम या रात्रि को ऐसा भोजन न करना चाहिए जिससे अधिक प्यास लगे और नींद में उठकर पानी पीना पड़े।

सोने की तैयारी

रात को सोने से पहले लघुशंका कर लेनी चाहिए, इससे मसाना हल्का हो

जाता है, नींद अच्छी आती है और रात को पेशाब करने के लिए नहीं उठना पड़ता।

जैसा पहले लिखा जा चुका है, रात को सोने के पहले दांत साफ कर लो तो बहुत अच्छा है। जिनको स्वप्न अधिक और नींद कम आती हो, उनको सोने से पहले मुंह-हाथ और पांवों को ठंडे जल से धोकर सोना लाभदायक है।

सोने से ठीक पहले कोई ऐसा मानसिक प्रयत्न करना ठीक नहीं है जिससे मस्तिष्क थक जाय अथवा जिससे मन में किसी प्रकार की चंचलता पैदा हो जाय, वरन् अच्छी नींद नहीं आयेगी और तद्विषयक स्वप्न दिखेंगे। ऐसी पुस्तक या अखबार आदि पढ़ते-पढ़ते सो जाने में कोई हर्ज नहीं है जिससे मस्तिष्क पर जोर न पड़े और जो मन में अशांति पैदा न करे। सोने से पहले मन को छुट्टी दे देना और संसार की समस्त चिंताओं को छोड़ देना चाहिए, क्योंकि चिंता और नींद का परस्पर वैर है। अगर नींद न आती हो तो दस-पंद्रह मिनट खुली हवा में टहल लेना चाहिए, इससे नींद आने में आसानी होगी।

नींद बुलाने के लिए बिना डाक्टर की आज्ञा के नशीली चीजें खाना या पीना बड़ी गलती है। बहुत-सी माताएं छोटे बच्चों को सुलाने के लिए अफीम खिला देती हैं, इससे बच्चों को भारी शारीरिक व मानसिक हानि पहुंचती है।

सोने से पहले प्रतिदिन अपने ओढ़ने और बिछौने का हर एक कपड़ा झाड़ लेना चाहिए।

चारपाई

ज़मीन पर सोना अच्छा नहीं है, तख्त, चारपाई या चबूतरे पर सोना चाहिए, क्योंकि सांस के ज़रिये निकलने वाली दूषित हवा भारी होती है और ज़मीन पर ठहरे रहने के कारण पुनः फेफड़ों में जाती है। इसके अतिरिक्त और कीड़े-मकोड़े के काट खाने तथा कान और नाक में घुस जाने का भय रहता है। ज़मीन की सील से कई प्रकार के रोग हो जाते हैं। चारपाई को दीवार से मिलाकर न बिछाना चाहिए क्योंकि दीवार के सहारे चारपाई पर जीव-जंतु चढ़ जाने की संभावना रहती है। जिस चारपाई की अदवायन सख्त कसी हुई हो, उसी पर सोना चाहिए क्योंकि ढीली चारपाई पर नींद अच्छी नहीं आती।

चारपाई को अक्सर धूप और खुली हवा में डालते रहना चाहिए, जिससे खटमल पैदा न हों।

सोने का स्थान और वायु

खूब गहरी नींद के लिए यह आवश्यक है कि सोने का स्थान शांतिपूर्ण व अंधकारमय हो और जिसमें हवा खूब आती-जाती हो। ऐसे कमरे या तहखाने में

न सोना चाहिए जहां दिन में कुछ देर के लिए भी धूप न आती हो और जहां सील रहती हो।

यदि कमरे के अंदर सोना हो तो उसके दरवाज़े और खिड़कियां हर मौसम में खुली रखनी चाहिए जिससे स्वच्छ हवा आती-जाती रहे।

स्वच्छ हवा का आवागमन तो आवश्यक है, परंतु जहां ठंडी हवा के सीधे व अत्यंत तेज़ झकोरे देह में लगें, वहां न सोना चाहिए। इससे शरीर की गर्मी निकल जाती है और बीमारी दबा लेती है।

कमरे में आग, सुलगती अंगीठी, मोमबत्ती या मिट्टी के तेल का दीपक जला छोड़कर न सोना चाहिए। ऐसा करने से एक तो आग लगने का डर रहता है और दूसरे कमरे की हवा दूषित हो जाने से सोने वाले की मृत्यु तक हो जाती है।

अधिक मनुष्यों को एक कमरे में नहीं सोना चाहिए वरन् हवा गंदी हो जाएगी। प्रत्येक के लिए ४८ वर्ग और आठ फुट ऊंची जगह होनी आवश्यक है।

एक बिस्तरे या चारपाई पर दो मनुष्यों को एक साथ नहीं सोना चाहिए। इस प्रकार सोने से हवा दूषित होती है और अपेक्षतया अधिक शक्तिमान की शक्ति क्षीण होती है। बच्चों को भी अलहदा सोने की आदत डालनी चाहिए।

रात के समय पेड़ों में से दूषित वायु निकलती है और दिन के समय शुद्ध। अतएव रात को पेड़ के नीचे सोना हानिकारक है और दिन में पेड़ के नीचे उठना-बैठना अच्छा है।

सोने के स्थान में कोई पशु न बांधना चाहिए क्योंकि उसके श्वास और गोबर व मूत्र से हवा गंदी होती है।

ओस में कभी न सोना चाहिए, क्योंकि ओस की ठंडक फेफड़े में घुस कर खांसी या दमे का रोग उत्पन्न कर देती है। सवेरे उठकर शरीर अकड़ने लगता है। देह टूटती है और सारे दिन आलस्य छाया रहता है। इसलिए ओस पड़ते समय बाहर सोना हो तो शबनमी या शामियाना अवश्य तान लेना चाहिए। ऐसी छत पर न सोना चाहिए जिस पर मुंडेर या जाली न लगी हो, क्योंकि अगर रात को लघुशंका आदि के लिए उठना पड़ा तो ज़मीन पर गिर पड़ने की आशंका रहती है।

ऐसे खुले स्थानों में, जहां पुरुषों की दृष्टि जाती हो, स्त्रियों को नहीं सोना चाहिए। उनके लिए उचित है कि वह सदैव एकांत में शालीनता के साथ सोने का विशेष ध्यान रखें।

सोने का समय

सदैव नियत समय पर सोना और सूर्य निकलने से पूर्व नियत समय पर उठ

जाना चाहिए। आधी रात के पहले जितना सो लो और जितना सवेरे उठो, उतना अच्छा है। डाक्टरों का मत है कि आधी रात से पहले एक घंटा सोना आधी रात के बाद दो घंटे सोने के बराबर है।

कम सोना स्वास्थ्य के लिए बहुत हानिकर है। बड़ों के लिए छह-सात घंटे व कम उम्र वालों के लिए आठ-नौ घंटे सोना ज़रूरी है। बहुत छोटे बच्चों को दिन-रात में लगभग १५ घंटे सोने की आवश्यकता है, लेकिन ज्यों-ज्यों बच्चे बड़े होते हैं, उनकी नींद कम होती जाती है। बच्चों और बूढ़ों को, जवानों को और मानसिक कार्य करने वालों को शारीरिक काम करने वालों की अपेक्षा अधिक नींद की जरूरत है।

जागते ही दो-चार मिनट बाद चारपाई छोड़कर खड़े हो जाना चाहिए, आलस्य में पड़े रहना ठीक नहीं। बिस्तरे पर पड़े-पड़े रोगों को दावत देना है।

दिन में यथासंभव न सोना चाहिए, दिन परिश्रम और रात विश्राम के लिए बनाई गई है। दिन में सोने से कफ कुपित होकर जठराग्नि नष्ट हो जाती है। अगर गर्म ऋतु में सोना ही चाहो तो भोजन करने के पूर्व या तीन घंटे बाद थोड़ा-सा सो लेना चाहिए, क्योंकि दिन में भोजन करने के फौरन ही बाद सोने से जिगर कमजोर और दिमाग में गर्मी हो जाती है, शाम तक आलस्य दबाये रहता है और रात को अच्छी नींद नहीं आती। परंतु बच्चे, बूढ़े, रोगी, परिश्रांत और जो मनुष्य रात को अच्छी तरह अथवा पर्याप्त काल तक न सो सका हो या शोक से पीड़ित हो, उसके लिए दिन में सोना मना नहीं है।

धूप में सोना तो अति हानिकर है।

दूसरों का कर्तव्य

गाढ़ी नींद में सोते हुए को कुसमय, बिना अति विशेष कारण के अथवा एकाएक चिल्लाकर न जगाना चाहिए।

सोये हुए आदमी के पास ऐसा कोई काम न करना चाहिए जिससे उसकी नींद में विघ्न पड़े।

जो मनुष्य नींद में अचेत हो, उसके साथ किसी भी तरह की छेड़छाड़ व हंसी-दिल्लगी करना असभ्यता है। इसका कभी-कभी भयंकर परिणाम निकलता है।

सोने का प्रकार

सोते वक्त, गर्मी को दूर करना या पसीना रोकने के विचार से, कपड़ों को भिगोकर ओढ़ना ठीक नहीं है।

बिल्कुल नंगा सोना ठीक नहीं है, प्रत्येक अवस्था में धोती, पाजामा आदि कुछ वस्त्र पहनकर ही सोना चाहिए। अगर रात में अचानक उठना पड़ा तो जल्दी

में धोती आदि न बांध सकोगे। केवल चादर ओढ़कर एकदम नंगा सो जाने से बेपर्दगी हो जाने की भी संभावना रहती हैं।

अपने से बड़ों की ओर पैर करके न सोना चाहिए, ऐसा करना मानो बड़ों का अपमान करना है।

उत्तर या पश्चिम की ओर सिर करके न सोना चाहिए, इससे बुद्धि और बल क्षीण होते हैं।

चारपाई सिर की ओर कुछ ऊंची तथा पैरों की ओर नीची होनी चाहिए। अगर तकिया इस्तेमाल किया जाय तो बहुत मोटा न हो। सिर के नीचे कई-कई तकिये या ऊंचा तकिया लगाने से गर्दन ऊंची हो जाती हैं और रक्त के संचार में बाधा आने से मस्तिष्क को उतनी ताज़गी नहीं मिलती जितनी मिलनी चाहिए।

सोते समय खुर्राटे लेने, दांत पीसने या बड़बड़ाने की आदत हो, तो उसे ध्यान रखकर छोड़ देने का प्रयत्न करना चाहिए। खुर्राटे वही लोग लेते हैं जो नाक की बजाय मुंह से सांस लेते हैं।

औंधा अर्थात् पेट के बल न सोना चाहिए। औंधा सोने से आंतों को हानि होती है, बुरे-बुरे स्वप्न दीखते हैं और हाज़मा जल्दी बिगड़ जाता है।

सोते समय इस बात का ध्यान रखना आवश्यक है कि हाथ छाती पर न रखा हो। इस प्रकार हाथ रखने से बुरे-बुरे स्वप्न दीखते हैं।

सोते समय नाक खुली रखकर सोना चाहिए। नाक ढककर सोने का अर्थ यह है कि आप उस दूषित वायु को, जो फेफड़ों से निकलती है, उस को फिर अंदर लेते हो। जिस प्रकार वमन किया हुआ अन्न-जल कोई मनुष्य पुनः नहीं खाता, उसी प्रकार सांस द्वारा बाहर फेंकी हुई दूषित हवा के विषय में भी समझना चाहिए।

२६

मन और शरीर

केवल वही मनुष्य नीरोग है, जिसके स्वस्थ शरीर में शुद्ध मन का वास है। मन और शरीर का परस्पर गहरा संबंध है अर्थात् एक का दूसरे पर प्रभाव पड़ता है। इनमें यदि एक रोगी है तो दूसरा स्वस्थ नहीं रह सकता। परंतु मन का प्रभाव शरीर पर उस प्रभाव की अपेक्षा कहीं अधिक होता है जो शरीर का मन पर पड़ता है।

अंग्रेजी कहावत है कि "स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ मन होता है" और हमारे देश की कहावत है कि "तन चंगा तो मन चंगा" शिक्षा देती है कि शरीर का मन पर असर पड़ता हैं। यह आम तौर पर देखने में आता है कि बलवान और स्वस्थ मनुष्य शांत स्वभाव के होते है और निर्बल व अस्वस्थ मनुष्य मिजाज के चिड़चिड़े व क्रोधी होते हैं। इसी प्रकार किसी रोगी को देखिए। अगर उसकी शारीरिक निर्बलता बढ़ जाती है तो वह निराश हो जाता है। वही मनुष्य जब उसकी हालत सुधरने लगती है, आशावादी हो जाता है। जिन लोगों को अजीर्ण अथवा कोष्ठबद्धता की शिकायत रहती है, वह बहुधा बहुत निराश और मुरझाये हुए रहते हैं और उनका मस्तिष्क ठीक काम नहीं करता। उनका मन उनके काबू में नहीं रहता और वह अपने संकल्पों पर दृढ़ नहीं रह सकते। जहां उनकी पाचन-क्रिया ठीक हुई और पेट साफ हुआ अथवा भोजन पचने लगा कि उनके चेहरे पर प्रसन्नता झलकने लगती है, हंसकर बातें करते हैं, काम करने में मन लगता है और उनकी इच्छाशक्ति बढ़ जाती है।

इसी प्रकार शरीर पर मन का प्रभाव सिद्ध किया जा सकता है। एक जर्मन विद्वान एडोल्फ जस्ट 'प्रकृति की ओर लौटो' नामक पुस्तक में लिखता है :

"यह मानी हुई बात है कि मानसिक विकार, खुदगरजी, अभिमान, ईर्ष्या, द्वेष, अनुदारता और क्रोध आदि का भयंकर असर शरीर पर पड़ता है। काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर, डर, पछतावा, आशा, निराशा, लज्जा, शोक, प्रसन्नता

आदि सब मनोभाव या मानसिक दशाएं हैं, जिनका उनकी प्रबलता के अनुपात से हमारे शरीर पर सीधा और शीघ्र प्रभाव पड़ता है। वैसालियस नामक एक मशहूर डाक्टर, यह देखकर कि वह शरीर जिसकी वह चीरफाड़ कर रहा था, अभी जीवित है, इतना शोकातुर हुआ कि फौरन मर गया। एक प्रसिद्ध लेखक, सोफौक्लीज़, यह जानकर कि उसकी रचित पुस्तक को सर्वप्रथम पारितोषिक मिल गया, खुशी के आवेश में मर गया। अत्यंत शोक और अत्यंत प्रसन्नता दोनों में आदमी मर जाता है। इसका कारण केवल आकस्मिक आश्चर्य है जो दोनों हालतों में एक समान होता है। अगर मानसिक वेग अधिक प्रबल नहीं है तो मृत्यु न होकर शरीर में बहुत-से रोग हो जाते हैं। सन् १८७० ई० में स्ट्रासवर्ग नामक जर्मन नगर पर गोलाबारी किये जाने के बाद वहां के बहुत-से नागरिकों को डर और चिंता के मारे मधुमेह का रोग हो गया था। सभी डाक्टरों का अनुभव है कि विशूचिका और ताऊन से उतने आदमी नहीं मरते, जितने उनके भय से।

कुछ ऐसे मनोभाव हैं जो शरीर के लिए अति हितकर है। प्रसन्नता और सुख, अगर सीमा के अंदर रखे जायें, तो स्वास्थ्य के लिए अत्यंत लाभप्रद हैं। आशा, ईश्वर-विश्वास या किसी भी ऐसे सिद्धांत में विश्वास जिससे मन को शांति प्राप्त होती हो, मनुष्य को नीरोग रखने में बड़े सहायक होते हैं।

मन में यह शक्ति है कि वह शरीर की त्रुटियों और उसके प्रभावों के ऊपर उठ सकता है। इस शक्ति की सच्चाई को सिद्ध करने के लिए संसार के उन वीर पुरुषों और शहीदों के उदाहरण पर्याप्त हैं जिन्होंने अपने देश अथवा धर्म या किसी भी सिद्धांत के भ्रमवश शारीरिक यातनाओं की परवाह नहीं की, जो हंसते-हंसते सूली पर चढ़ गये और जिनके दृढ़ मानसिक संकल्प ने शारीरिक निर्बलताओं पर विजय पाई। इसके विरुद्ध ऐसे भी उदारहण हैं कि तगड़े से तगड़ा विशालकाय मनुष्य डर के वशीभूत होकर कांपने लगा या क्रोधवश अपनी शक्ति का इस्तेमाल नहीं कर सका और प्रत्येक दिन देखने में आता है कि लोहे के समान बलिष्ठ शरीरों को चिंता घुन की तरह खा जाती है।

स्पष्ट है कि मनुष्य का स्वास्थ्य उसके मन अथवा मस्तिष्क की दशा पर निर्भर है और रोग हमारे शारीरिक कर्म ही नहीं, विचारों तक के परिणाम हैं। आरोग्य का दृढ़ साधन हमारा मन ही है, इसकी शुद्धि के बिना सच्चा आरोग्य प्राप्त नहीं हो सकता। पाश्चात्य देशों में तो इस मत के चिकित्सकों का एक पंथ ही है कि जिसका मन शुद्ध होता है उसको कोई रोग नहीं हो सकता। और, अगर किसी मनुष्य को रोग हो भी जाय तो वह शुद्ध मन के जोर से—मनोबल से अपना शरीर नीरोग कर सकता है।

सार यह निकला कि जो मनुष्य कामी है या क्रोधी है, पछताता या कुढ़ता

रहता है, शोकाकुल अथवा चिंताग्रस्त रहता है, वह कभी नीरोग नहीं रह सकता। उसका शरीर तरह-तरह की बीमारियों का घर बनकर रहेगा। इसके विपरीत जो मनुष्य विषयों के प्रलोभन में नहीं फंसता और क्रोध को अपने पास नहीं फटकने देता; जो मनुष्य जो कुछ बीत गया उसको विचार कर दुखी होने की अपेक्षा वर्तमान और भविष्य की सुध लेता है और संतोषी है अर्थात् अपनी अवस्था सुधारने का प्रयत्न तो करता है परंतु कुढ़ता नहीं; जो मनुष्य आशावादी है और विपत्तियों की परवाह न कर सदैव प्रसन्नचित्त और हंसमुख बना रहता है, वह सदा स्वस्थ रहेगा, उसका शरीर कभी जवाब नहीं देगा अर्थात् आत्मा की आज्ञा पालन में सर्वदा समर्थ रहेगा।

अच्छे स्वास्थ्य का रहस्य ब्रह्मचर्य

यह सर्वसम्मत बात है कि ब्रह्मचर्य ही स्वास्थ्य की वास्तविक भित्ति है। जो अपने वीर्य का महत्त्व न समझकर उसको अनियमित प्रकार से अपने शरीर से अलग करता है, वह रोग से बच नहीं सकता। ब्रह्मचर्य सब औषधियों का पिता है। स्वच्छ वायु, निर्मल जल और पथ्य भोजन का सेवन करते रहने पर भी ब्रह्मचर्य का पालन न करने वाला पुरुष आरोग्यवान नहीं हो सकता। भगवान् धन्वंतरि अपने शिष्यों से कहते हैं :

"मैं इस बात को तुम लोगों से सत्य-सत्य कहता हूं कि मरण, रोग तथा वृद्धता का नाश करने वाला अमृतरूप और बहुत बड़ा उपचार, मेरे विचार से ब्रह्मचर्य है। जो मनुष्य शांति, सुंदरता, स्मृति, ज्ञान, स्वास्थ्य और उत्तम संतति चाहता है, वह इस संसार के सर्वोत्तम धर्म ब्रह्मचर्य का पालन करे।"

ब्रह्मचर्य ही सारे पुरुषार्थों का मूल है। जो मनुष्य ब्रह्मचारी नहीं है वह कभी सफल मनोरथ नहीं हो सकता। इसी अमोघ शक्ति के बल से महापुरुषों ने संसार में विजय पाई है। संक्षेप में कहा जा सकता है कि मनुष्य के विकास का माप उसका विषयेंद्रियों पर काबू है। जो मनुष्य विषयी है वह सभ्य नहीं कहा जा सकता और जिस मनुष्य अथवा समाज ने ब्रह्मचर्य की अवहेलना की और विलासितापूर्ण जीवन ग्रहण किया, वही रसातल को प्राप्त हो गया।

ब्रह्मचर्य-पालन का यह अर्थ नहीं है कि मनुष्य मरण पर्यंत अविवाहित रहे अथवा स्त्रीगमन न करे। सारी आयु काम के वेग को थाम के इंद्रियों को अपने वश में रखना बड़ा कठिन काम है। पूर्ण विद्या वाले, जितेंद्रिय और निर्दोष योगी जिस स्त्री-पुरुष ने कम-से-कम क्रमशः सोलह व पच्चीस वर्ष तक विवाह नहीं किया और जो संतानोत्पत्ति के अर्थ अथवा काम के वास्तविक वेग को शांत करने के लिए ही विधिवत् संभोग करते हैं, न कि केवल विषय-वासना की तृप्ति के लिए ही, वे भी ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं। मनु महाराज कहते हैं :

ऋतुकालाभिगामी स्यात् स्वदारनिरतः सदा।
ब्रह्मचर्येण भवति यत्र तत्राश्रमे वसन्॥

अर्थात् "जो अपनी ही स्त्री से प्रसन्न और ऋतुगामी होता है, वह गृहस्थ भी ब्रह्मचारी के सदृश है।"

अब प्रश्न यह उठता है कि मनुष्य ब्रह्मचर्य का पालन कैसे करे? उत्तर में कहा जा सकता है कि जिसके विचार शुद्ध और पवित्र हैं, वही ब्रह्मचारी रह सकता है, अन्य नहीं। मनुष्य भावनामय है अर्थात् अपने हृदय में जो जैसे विचार रखता है वैसा ही बन जाता है। वाह्य साधन तो प्रायः व्यर्थ हैं। जिसका मन कलुषित विचारों से शून्य हो, जिसके हृदय में कभी बुरी वासना प्रवेश नहीं करती, जो गंदे विचारों से ऐसे बचता है जैसे विषैले नाग से और जिसकी वाणी उसके मन का प्रतिबिंब बनकर सदा शुद्ध और निर्मल भावों से संपृक्त रहती है, वह मनुष्य धन्य है, क्योंकि ऐसा मनुष्य ही ब्रह्मचारी अर्थात् सच्चरित्र बनकर संसार में कुछ कर सकेगा। जिस मनुष्य के विचार पवित्र नहीं, वह कभी ब्रह्मचारी नहीं रह सकता, क्योंकि विचारों का प्रभाव जैसा हम पहले देख चुके हैं, शरीर पर अवश्यमेव पड़ेगा और विचार कर्म की पृष्ठ भूमि है। विचार गंदे है, तो मनुष्य कर्म भी गंदे ही करेगा।

वाह्य साधनों के विषय में संकेत के रूप में कहा जा सकता है कि ब्रह्मचारी रहने के इच्छुक युवक को सत्संग में बैठना और सद्ग्रंथ ही पढ़ने चाहिए, उसको उचित है कि शृंगाररसप्रधान काव्य या उपन्यास आदि न पढ़ें, गंदे सिनेमा व नाटक-तमाशे आदि से बचे, अनावश्यक स्त्रीचर्चा में भाग न ले, ब्रह्ममुहूर्त्त में उठे, समुचित व्यायाम करे, सारे दिन मानसिक व शारीरिक परिश्रम में लगा रहे और सात्त्विक आहार करे।

२७

औषधि और रोगी की सेवा

संसार में पांच तत्त्व आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी माने गए हैं। इस तथ्य का वर्णन एक दोहे में इस प्रकार किया गया है :

क्षिति जल पावक भवन, पुनि पंचम गगन विचार।
पंच तत्त्व के पिंड को, नाम भयो संसार ॥

संसार जिन चीजों से बना है, उन्हीं पांचों से मनुष्य का शरीर बना है। कहावत है कि "यथा पिंडे तथा ब्रह्मांडे।" इसलिए मनुष्य के शरीर को शुद्ध मिट्टी, भोजन, निर्मल जल, समुचित अग्नि, धूप या प्रकाश, स्वच्छ वायु और खुली जगह की आवश्यकता है। इनमें से शरीर के प्रमाण अनुसार किसी तत्त्व की कमी हो जाते ही शरीर में रोग हो जाता है। इस प्रकार यही तत्त्व सर्वोत्तम औषधियां ठहरती हैं जो सब रोगों को अच्छा कर सकती है।

रोग उत्पन्न होने पर उपचार के लिए दौड़-धूप करने की अपेक्षा पहले से रोग उत्पन्न न होने देना ही बुद्धिमत्ता है। यदि रोग उत्पन्न हो जाय तो, बिना औषधि के ही, प्रकृति के सिद्धांतों पर अवलंबित स्वास्थ्य के नियमों का पालन करके आरोग्य प्राप्त करना चाहिए। बहुधा देखा गया है कि जो मनुष्य-औषधियों का अधिक सेवन करते हैं, वही अधिक बीमार रहते हैं।

औषधि की आवश्यकता होने पर, चाहे जिसकी बताई हुई या विज्ञापन की औषधि कभी प्रयोग न करनी चाहिए। सदैव सुयोग्य, अनुभवी उपचारक द्वारा इलाज कराना उचित है। आजकल विज्ञापन की दवाओं ने रोगियों की तादाद बहुत बढ़ा दी है। ऐसी दवाओं से अगर एक रोग का नाश होता है तो अन्य दस रोग पैदा हो जाते हैं।

घर में यदि कोई बीमार हो तो उसकी सेवा करना आपका कर्तव्य है। क्योंकि प्रायः इस हालत में वह अपनी देखभाल और सेवा आप नहीं कर सकता।

बुखार के रोगी को लाल कमरे में रखना उचित नहीं है, क्योंकि अधिक समय तक लाल रंग के कमरे में रहना बुखार के रोगी में पागलपन पैदा कर सकता है।

रोगी के कमरे में साफ हवा और रोशनी का आना अत्यंत आवश्यक है लेकिन रोगी को हवा के सीधे झोंकों से बचाना चाहिए। कमरा आम सड़क या रास्ते से कुछ हटा हुआ हो जिससे कि धूल उड़कर कमरे में मेज़, कुर्सी आदि पर न जम जाये। कमरे में बक्स आदि अधिक सामान भरा हुआ न हो, अच्छा तो यह है कि केवल वही चीज़ें हों जिनकी आवश्यकता उपचार में पड़े।

रोगी का बिछौना, ओढ़ना और पहनने के वस्त्र अत्यंत साफ रखना और यथासंभव रोज़ बदलना आवश्यक है। बिछौना नर्म, गुदगुदा और आराम देने वाला होना चाहिए।

कमरे के फर्श पर रोगी का कुल्ला करना, थूकना, नाक साफ करना व वमन करना बीमारी को बढ़ाता है। इसलिए एक सिलमची अर्थात् चौड़े मुंह का बर्तन, जिसमें थोड़ा-सा फिनाइल का पानी या लाल दवा का का पानी अथवा कीड़े मारनेवाली कोई दवा पड़ी हो, रोगी की चारपाई के पास रखना चाहिए जिससे कि जब आवश्यकता हो रोगी उसी को इस्तेमाल करे। रोगी के पास सफाई पर विशेष ध्यान देना चाहिए क्योंकि यह रोगी को दवा के बराबर लाभदायक है। छूत के रोगी के अच्छा हो जाने पर अथवा चिकित्सक के मशवरे से रोग के दौरान में भी, कमरे धोकर उसमें गंधक, लोबान या नीम के पत्ते आदि जला देने चाहिए। इससे रोग के कीड़े मर जाते हैं और वायु स्वच्छ हो जाती है। रोगी के कपड़े भी पानी में उबाल डालने चाहिए।

संक्रामक अर्थात् छूत के रोग में बड़ी सावधानी की ज़रूरत है। अतएव ऐसे रोगी से सेवा-सुश्रूषा करने वालों के अतिरिक्त दूसरों, विशेषतया बच्चों को यथासंभव दूर रखना चाहिए। अच्छा तो यह है कि ऐसा रोगी अस्पताल में रखा जाय।

रोगी के मित्रों को उससे मिलने के लिए यथासंभव रात में न जाना चाहिए क्योंकि साधारणतया रोगी की हालत रात को अच्छी नहीं होती और उसको अपेक्षतया अधिक विश्राम की भी आवश्यकता होती है। रोगी से मिलने के लिए सबसे अच्छा समय प्रातःकाल का है।

साधारण रोगी के पास भी उनको ही जाना चाहिए जो उसकी सेवा करना चाहें। रोगी के पास भीड़ लगाना या करना, काना-फूसी करना, उससे अधिक सवाल करना या उसकी इच्छा के विरुद्ध बातचीत करना अच्छा नहीं है। चिल्ला-कर बोलना अथवा कोलाहल रोगी को नहीं भाता; उसके सामने किसी भी प्रकार की बहस छेड़ना भी अत्यंत अनुचित है क्योंकि रोग के कारण रोगी का मिज़ाज

चिड़चिड़ा हो जाता है। न ही रोगी के सामने किसी ऐसे विषय पर बातचीत की जाय जो रोगी को अप्रिय लगे।

किसी रोगी की दशा पर दुःख प्रकट कर तथा निराशाजनक शब्द कहकर अथवा रोग की भयंकरता बतलाकर उसको और अधिक दुखी तथा निराश न करना चाहिए। अच्छा यही है कि उसके सामने किसी भी प्रकार की कोई खेदजनक बात न कही जाय और सच होने पर भी यह कभी न कहा जाय कि अमुक मनुष्य इस रोग से मर गया बल्कि शीघ्र स्वस्थ हो जाने की आशा बंधाकर धीरज देना चाहिए। अगर रोगी की दशा कुछ खराब हो या रोग कुछ भयंकर हो तो उचित यही है कि रोगी के संबंध में प्रश्न उससे बिल्कुल न पूछे जायें बल्कि उसके कुटुंबियों और परिचारकों से ज्ञात कर लिए जायें। अगर चिकित्सक ने मना कर दिया है तो मित्रों को चाहिए कि वह रोगी से मिलने या बात करने की कोशिश न करें और अगर मिलने की आज्ञा भी दी हो तो उसके पास अधिक देर तक न ठहरें।

मिलने आने वालों को यह भी उचित है कि जब रोगी किसी वैद्य आदि का इलाज करा रहा हो तो दवा व परहेज आदि के संबंध में रोगी व उसके परिचारकों पर अपनी राय न थोपें।

रोगी के सामने, विशेषकर रोगी बालक के सामने, मिठाई आदि या चटपटी चीजें नहीं खानी चाहिए और न मेले, तमाशे आदि में जाना चाहिए क्योंकि इससे उसकी तबियत ऐसी चीज़ें खाने या देखने को चाहेगी और वह उसके लिए ज़िद करेगा।

रोगी को केवल चिकित्सक का बताया हुआ हल्का भोजन ही देना चाहिए। संभलती हुई हालत में, जबकि रोगी का जी हर प्रकार के पदार्थ खाने को करता है, इस बात का विशेष ध्यान रखने की ज़रूरत है।

थर्मामीटर मुंह या बगल में लगाने के बाद धो डालना चाहिए। बच्चों का टेम्परेचर (तापमान) बगल में ही थर्मामीटर लगाकर देखना अच्छा होता है क्योंकि मुंह में थर्मामीटर लगाने से आशंका रहती है कि कदाचित् बच्चा दांतों से उसको जकड़ ले या चबा डाले।

जिस प्रकार चिकित्सक ने कहा हो, ठीक उसी प्रकार रोगी को दवा देना और उसकी अन्य परिचर्या करनी चाहिए। दवा देने में समय का विशेष ध्यान रखना ज़रूरी है। दवा पिलाने से पहले शीशी हिला देना उचित है और दवा निकालने के बाद शीशी की कार्क बंद करना न भूलना चाहिए।

पीने वाली दवा से लेप, मालिश अथवा लगाने वाली दवा अलग अर्थात् दूसरी जगह रखनी चाहिए क्योंकि लगाने वाली दवा में बहुधा बिष मिला रहता है। यदि भूल से लगाने वाली दवा पिला दी जाय तो क्या फल होगा, इसका अनुमान

लगाया जा सकता है। जिस शीशी में कुछ भी विष हो, उसके ऊपर 'विष' शब्द एक कागज़ पर लिखकर चिपका देना चाहिए।

दवा देने से पहले यह देख लेना चाहिए कि गिलास या प्याला साफ है या नहीं; अगर साफ न हो तो साफ कर लेना चाहिए। कांच के प्याले में दवा पिलाना सबसे अच्छा है क्योंकि इस पर तेज़ाब और ज़हर का असर साधारणयता नहीं होता। अगर कांच का बर्तन न मिले तो मिट्टी के पात्र में भी दवा पिला सकते हैं परंतु यथासंभव चीनी मिट्टी का बर्तन हो। यदि साधारण मिट्टी का हो तो उसे एक बार से अधिक इस्तेमाल न करना चाहिए।

अगर आप किसी चिकित्सक के इलाज से संतुष्ट नहीं हैं तो आप उसको बदल सकते हैं। परंतु दूसरे वैद्य या डाक्टर को रोगी का इलाज करने के लिए उस समय तक लाना उचित नहीं है, जब तक कि आपने पहले चिकित्सक को स्पष्ट तौर पर न कह दिया हो कि अब उसकी ज़िम्मेदारी नहीं रही और रोगी को दूसरे के सुपुर्द कर देने का विचार है।

अगर किसी अन्य वैद्य या डाक्टर का मशवरा लेना चाहते हों तो भी चिकित्सक की अनुमति के बिना किसी अन्य को न बुलाना चाहिए वरना वह बुरा मानेगा और इलाज छोड़ देगा।

तीसरा भाग

नीति और शिष्टाचार

[illegible]

अगर कोई किसी चिकित्सक के इलाज से संतुष्ट नहीं है तो [illegible] बदल सकते हैं। परन्तु दूसरे वैद्य या डाक्टर को रोगी का इलाज करने के लिए तब तक [illegible] नहीं है, जब तक कि उसने पहले चिकित्सक को स्पष्ट तौर पर न कह दिया हो कि अब उसकी जिम्मेदारी नहीं रही और रोगी को दूसरे [illegible] कर देने का अधिकार है।

अगर किसी अन्य वैद्य या डाक्टर का परामर्श लेना चाहते हों तो भी चिकित्सक की अनुमति के बिना किसी अन्य को न बुलाना चाहिए। यह बुरा व्यवहार और [illegible] देना।

२८

व्यावहारिक नीति

बच्चों के साथ बर्ताव

माता के समान बालक का संसार में दूसरा गुरु नहीं है। इसलिए माता को चाहिए कि अगर वह अपने बच्चे को अच्छा बनाना चाहती है तो वह स्वयं नियमित व पवित्र जीवन व्यतीत करे, बच्चे को सदैव सद्-शिक्षा देती रहे और उसको कोई कुटेव न पड़ने दे।

माता को यथासंभव अपना दूध ही बच्चे को पिलाना चाहिए, क्योंकि माता के दूध से बढ़कर अन्य किसी स्त्री, पशु या डिब्बे आदि का दूध बच्चे के लिए लाभदायक नहीं हो सकता। दूध के साथ-साथ माता का प्रेम, कुल की सभ्यता, जातीय आचार-विचार और पूर्वजों के विशेष गुण बच्चे में आते रहते हैं। बच्चों को चूसनी चुसाने का रिवाज भी अच्छा नहीं है।

बच्चे का स्वास्थ्य कायम रखने के लिए यह आवश्यक है कि नियमित समय पर ही दूध पिलाया जाये। बहुत-सी औरतें, बच्चा रोया कि उसे दूध पिलाने दौड़ पड़ती हैं। जल्दी-जल्दी दूध पिलाने से बच्चे की पाचन-शक्ति बिगड़ जाती है और वह पेट के दर्द से रोया करता है। जब बालक बारह मास का हो जाय तब उसका दूध छुड़ा देना चाहिए। एक वर्ष के बाद गाय का दूध और अन्य हल्का भोजन देना ठीक है।

माता के स्वास्थ्य का बच्चे पर तुरंत असर पड़ता है। अतएव माता को अपने भोजन अथवा स्वस्थ्य पर विशेष ध्यान देना चाहिए।

जब बालक की मां के सिर पर क्रोध का भूत चढ़ा हो, तब वह बालक को दूध न पिलाये। क्रोध के समय स्त्री का दूध जहर की तासीर रखता है। ऐसे समय दूध पिलाने से बच्चे भयानक रोगों में फंस जाते हैं जिनसे मृत्यु तक हो जाती है। माता को चाहिए कि वह रोटी करती-करती या कहीं बाहर से आकर गर्म देह में भी बच्चे को दूध न पिलाये।

बालकों को जो चीज़ें नापसंद हों, वे उन्हें जबर्दस्ती न खिलायें। इसका फल अच्छा नहीं होता।

बच्चों के साथ शुद्ध उच्चारण से बोलना चाहिए। उनकी ही भाषा में अशुद्ध या तुतलाकर बोलना ठीक नहीं है। अगर बड़े-बूढ़े उनमें अशुद्ध भाषा में बोलेंगे तो बच्चे बहुत दिनों के अनंतर ही शुद्ध शब्द बोलने के योग्य हो सकेंगे।

बहुत-से घरों में बच्चे माता को 'बहू', 'भाभी' या 'चाची' आदि और पिता को 'भाई' या 'चाचा', 'लाला' आदि कहना सीख जाते हैं या उनको ऐसा सिखाया जाता है। बहुधा यह आदत बड़े होने तक बनी रहती है। यह ठीक नहीं है। बच्चों को शुद्ध शब्द अर्थात् 'माताजी', 'पिताजी' आदि ही सिखलाना चाहिए।

बच्चों को सर्वदा गोद में न रखना चाहिए, इस प्रकार से उनका शरीर दुर्बल हो जाता है। उनको अपने बल पर खड़े होने और घूमने दें। बच्चों को भोजन नियत समय पर देना चाहिए और उनको यह टेव डालनी चाहिए कि वे नियुक्त स्थान पर बैठकर खायें। यह बुरा है कि बच्चे हर समय हाथ में टुकड़ा लिये घर में जगह-जगह खाते और गंदगी करते फिरें।

पिता और अन्य गुरुजनों को चाहिए कि अपने काम से कुछ समय प्रत्येक दिन बच्चों से खेलने व बातचीत करने के लिए निकालें।

छोटे बच्चों के खेलने के लिए ऐसी चीज न दें जो, अगर वह मुंह में रख लें तो, उसके गले के नीचे उतर जाये। बच्चों के मुंह में अपनी अंगुली भी मत डालें। यदि खिलौने रंगीन हों तो यह ध्यान रखना चाहिए कि उनका रंग छूटने वाला न हो क्योंकि रंग बहुधा विषैले होते हैं। खिलौनों को, जो धोने योग्य हों, रोज धोयें।

माता-पिता को इस प्रकार से संतान का पालन करना चाहिए कि पुत्र-पुत्री में कुछ भेद न हो और एक बच्चे की अपेक्षा दूसरे के लाड़-प्यार में कुछ अतिरिक्त राग न हो।

अपने बच्चों को नौकर के अधीन कभी न छोड़ें, जब तक कि दृढ़ निश्चय न हो जाय कि नौकर सच्चरित्र, स्वस्थ और ईमानदार है। बालकों में अच्छी या बुरी आदतों का होना अधिकतर उनके साथियों पर निर्भर है।

अपने बालकों को गली या मोहल्ले के दुश्चरित्र बालकों में न खेलने दें। ऐसी कुसंगत में वे बुरी आदत सीख जाते हैं।

बालकों को सदैव अच्छी आदतें सिखानी चाहिए। बहुत-सी स्त्रियां बच्चों को गाली देना, बड़ों का नाम लेना व मारना सिखा देती हैं, यह बड़ी भूल है। इससे बालक बिगड़ जाते हैं। उनको शुरू से ही सत्य बोलना, बड़ों का आदर करना, आज्ञा-पालन इत्यादि गुण सिखाने चाहिए। बुरी आदतें होने पर मुश्किल से छूटती

बच्चों से कभी झूठ नहीं बोलना चाहिए और न उनसे झूठे वायदे करने चाहिए। ऐसा करने से बच्चे झूठ बोलना सीख जाते हैं और उनके हृदय में बड़ों के प्रति आदर भी नहीं रह जाता।

बच्चों को झूठी व काल्पनिक कहानियों के बजाय धार्मिक, नैतिक व ऐतिहासिक दृष्टांत सुनायें।

बालकों से कभी उनकी सगाई, विवाह आदि की बातें न करें और न उनको अबोध समझकर उनके सामने गंदी बातें और गंदी चेष्टा करें। इससे बच्चों के मन में अप्रकट और अस्वाभाविक रूप से विषयभोग के संस्कार पड़ जाते हैं।

बच्चों को स्वावलंबन व आत्मविश्वास सिखलायें। अगर घर में नौकर हों तो भी बच्चों को अपने काम स्वयं करने की आदत डालें। अगर बालक हर बात में नौकर पर निर्भर रहेगा तो वह आलसी बन जाएगा और अपने जीवन में सफल-मनोरथ न हो सकेगा।

हमारा कर्तव्य है कि बच्चे पर हुकूमत जताने की अपेक्षा उसके साथ स्नेहपूर्ण बर्ताव करें। हर समय बच्चे को झिड़कते रहना और उसका कसूर निकालते रहना उचित नहीं है। इससे बच्चे भी वही आदत सीख जाते हैं और बदमिज़ाज हो जाते हैं। जब बच्चा नादानी से कोई काम खराब कर दे तो उसे झिड़कने की बजाय उसकी गलती समझायें। बच्चों को पीटना बिल्कुल वर्जित है, क्योंकि पीटने से बच्चों के आत्म-सम्मान को ठेस पहुंचती है। कान पर तो किसी सूरत में भी थप्पड़ मारना ठीक नहीं, ऐसा करने से बहुधा बालक बहरे तक हो गए हैं। बच्चों को डराना भी अनुचित है, इससे बच्चे डरपोक और कायर बन जाते हैं। बच्चों को चिढ़ाना भी ठीक नहीं है।

बच्चों को किसी भी सूरत में 'भूत', 'हव्वा' आदि से नहीं डराना चाहिए। 'भूत', 'प्रेत' आदि तो वास्तव में कोई चीज़ है ही नहीं।

अगर कोई बड़ा, बच्चे को उसकी गलती पर समझा रहा हो तो बच्चे को सहारा मत दें, नहीं तो वह अच्छी आदत न सीखेगा।

अगर बच्चे ने कोई अच्छा काम किया हो तो उसकी सराहना करें। ऐसा करने से बच्चे की भविष्य में अच्छे काम करने की हिम्मत बढ़ेगी। बच्चों को साफ रहना सिखलायें। बच्चे बहुधा अपनी नाक अपने कुरते आदि की आस्तीन से पोंछ लेते हैं, इसलिए उनको भी छोटा-सा रूमाल रखने की आदत डालें।

बच्चों को ज़ेवर न पहनाने चाहिए, इससे बहुत-से बच्चों की जान तक चली जाती है। बच्चों की शोभा अच्छे गुण हैं, न कि उन पर लादे गए ज़ेवर।

बच्चों को कठले, गंडे, तावीज, मंत्र आदि कभी न पहनाने चाहिए। यह भ्रम है कि उनके पहनने से बच्चा 'भूत', 'मसान' या किसी रोग से बचा रहेगा।

संकट के समय बच्चे की सबसे पहले सहायता करें।

बच्चे को किसी शोक की महफिल में न ले जाएं। किसी रोगी को विशेषकर छूत के रोगी को देखने जाएं, तब भी बच्चे को साथ न ले जाएं।

जिनको छूत का रोग या दांत का रोग हो, उन्हें बच्चों का मुंह नहीं चूमना चाहिए, इससे बच्चों को रोग लग जाने की आशंका रहती है।

बच्चों को शिक्षा देनी चाहिए कि वे कि अन्य व्यक्ति से बिना माता-पिता के पूछे पैसा, रुपया, मिठाई, फल आदि न लें।

क्रोध

कभी शीघ्र क्रोध में न आयें। काम के बाद क्रोध मनुष्य का सबसे भयानक बैरी है। इसका वेग मनुष्य को पशु से भी पतित बना देता है। क्रोध में बुद्धि नष्ट हो जाती है, धर्म-अधर्म, हित-अहित का कुछ भी ज्ञान नहीं रह जाता और इसके कारण बड़ी-बड़ी दुर्घटनाएं हो जाती हैं।

जिस प्रकार तूफान अपने वेग से वृक्षों को उखाड़कर फेंक देता है और प्रकृति देवी के चेहरे को कुरूप बना देता है, अथवा जिस प्रकार भूकंप अपने क्षोभ से नगर के नगर भूतलशायी कर देता है, उसी प्रकार क्रोधित मनुष्य का क्रोध अपने चारों ओर उपद्रव मचाये रहता है। इसलिए अपनी कमज़ोरी पर विचार करें, उसको स्मरण रखें। ऐसा करने से आप दूसरों के अपराधों को क्षमा कर सकेंगे।

दूसरों का क्रोध देखकर शिक्षा ग्रहण करें और क्रोध को अपने पास न फटकने दें। क्रोध का आक्रमण होने के बाद उसका शमन करना बड़ा कठिन है, अतएव उसे पहले ही न आने देना बुद्धिमत्ता है। उसे अपने पास आने देना मानो स्वयं अपने हृदय को बेधने अथवा अपने बंधु व मित्र को मारने के लिए तलवार देना है। कठोर भाषण से मूर्ख मनुष्य चिढ़ता परंतु बुद्धिमान मनुष्य हंसकर उसका तिरस्कार करता है। यदि आपने किसीकी छोटी-मोटी बात सह ली तो लोग आपको बुद्धिमान कहेंगे और यदि आपने उसे भुला दिया तो आपका चित्त प्रसन्न रहेगा।

अगर मनुष्य विचारे तो क्रोध करने योग्य बहुत थोड़ी बातें मिलेंगी, तब उसे आश्चर्य होगा कि मूर्खों को छोड़कर दूसरों को क्रोध किस प्रकार आता है। मूर्ख और अशक्त मनुष्य ही क्रोध अधिक करते हैं। परंतु उसका परिणाम सिवाय पश्चात्ताप के और दूसरा कुछ शायद ही होता है।

जिस प्रकार पानी डालने से आग बुझ जाती है, उसी प्रकार मृदु भाषण से क्रोधित मनुष्य का क्रोध शांत हो सकता है और वह इस तरह शत्रु से मित्र बन सकता है।

इसके अतिरिक्त क्रोधी और चिड़चिड़े स्वभाव के मनुष्यों की न तो पाचन-

शक्ति ठीक रहती है और न उनके शरीर में रक्त का संचार ठीक होता है। यही कारण है कि ऐसे स्वभाव के आदमियों का स्वास्थ्य अच्छा नहीं रहता।

जिसमें क्रोधरूप शत्रु विद्यमान है उसको दूसरे दुश्मन की क्या जरूरत है? अर्थात् उसके लिए एक शत्रु क्रोध ही काफी है।

संयम

ईश्वरप्रदत्त बुद्धि और आरोग्य का ठीक-ठीक उपभोग करना ही इस मृत्युलोक के सुख को करीब-करीब प्राप्त कर लेना है। जिनको ये बरकतें मिली हैं और जो उन्हें अंत तक स्थिर रखना चाहते हैं, उन्हें उचित है कि वे विषयों के प्रलोभन से बचते रहें।

जब विषय अथवा कामदेव अपने स्वादिष्ट पदार्थों को आपके सामने मेज़ पर रखे, जब उसकी मदिरा प्याले में चमकने लगे, जब हंसकर आपको वह आनंद और सुख की तरफ खींचने लगे, तभी धोखे की बेला समझें और उसी समय अपनी बुद्धि से काम लें। ऐसे समय यदि आप उसकी सम्मति के अनुसार चलें तो समझ लें कि आपने धोखा खाया। जिस झूठे आनंद को आप देखते हैं वस्तुतः वह दुःख है। कबीर साहब कहते हैं :

मन के मते न चालिये, मन के मते अनेक।
जो मन पर असवार है, सो साधु कोई एक॥

मनुष्य की आत्मा मन की गुलाम नहीं है परंतु यह मन की स्वामी है। पतंग रूप देखकर हाथी विषयेंद्रिय के वश होकर, हिरन कर्णेंद्रिय के वश होकर, भौंरा नासिका के वश होकर और मछली जीभ के वश होकर जाल में फंसकर नष्ट हो जाती है। जिस मनुष्य की पांचों इंद्रियां पांचों विषयों में लिप्त हैं, वह नष्ट होने से किस प्रकार बच सकता है?

मनुष्य भावनामय ही है अर्थात् अपने हृदय में जो जैसे विचार रखता है वैसा ही बन जाता है। जिसका मन कलुषित विचारों से शून्य हो, जिसके हृदय में कभी बुरी वासना प्रवेश नहीं करती, जो गंदे विचारों से ऐसे बचता है जैसे विषैले नाग से और जिसकी वाणी उसके मन का प्रतिबिंब बनकर सदा शुद्ध और निर्मल भावों से सनी रहती है, वह मनुष्य धन्य है क्योंकि ऐसा मनुष्य ही ब्रह्मचारी अर्थात् सच्चरित्र बनकर संसार में कुछ कर सकेगा।

चरित्र की पवित्रता से बढ़कर कोई कोष नहीं है। अच्छे आचरण का प्रभाव इतना प्रबल है कि एक सच्चरित्र पुरुष की देखादेखी समस्त जाति की उन्नति हो सकती है। इसी अमोघ शक्ति के बल से महापुरुषों ने संसार में विजय पाई है। कबीर साहब कहते हैं :

शील रतन सब से बड़ा, सब रतनन की खान।
तीन लोक की संपदा, बसी शील में आन ॥

जिसने अपना धन खोया, उसने कुछ नहीं खोया, जिसने स्वास्थ्य खोया, उसने कुछ खोया परंतु जिसने अपना चरित्र खो दिया उसने सर्वस्व खो दिया।

महाराज भर्तृहरि कहते हैं :

"यह शरीर बड़े पर्वत की ऊंची चोटी पर से कड़ी चट्टानों पर गिर कर टुकड़े-टुकड़े हो जाय तो भला है, इस हाथ को तीव्र डंसने वाले सर्पराज के मुख में देना भला है तथा अग्नि में गिरकर प्राण देना भी भला है परंतु शील को भ्रष्ट करना मनुष्य के लिए भला नहीं है।"

वरं शृंगोत्संगाद्गुरुशिखरिणः क्वापि विषये
पतित्वाऽयं कायः कठिनविषदन्ते विगलितः।
वरं न्यस्तो हस्तः फणिपतिमुखे तीक्ष्णदशते
वरं वह्नौ पातस्तदपि न कृतः शील विलयः ॥

सत्संग और सद्ग्रंथ

मनुष्य को सदैव सत्संग और सद्ग्रंथों का पाठ करना चाहिए। सज्जनों की संगति मनुष्य को क्या नहीं बना सकती ?

तात ! स्वर्ग अपवर्ग सुख, धरिये तुला इक अंग।
तुले न ताहि सकल मिलि, जो सुख लव सत्संग ॥

संग का प्रभाव बड़ा गहरा होता है। जैसा संग होता है, वैसा ही भला-बुरा उसका प्रभाव भी होता हैं। एक प्रसिद्ध कहावत है कि—"अगर किसी के चरित्र का पता लगाना हो, तो उसके मित्रों के चरित्र का पता लगाओ।" बड़े-बड़े पापी और कुविचारी लोग सत्संग के प्रभाव से महात्मा और मुक्त हो गए है और अच्छे से अच्छे पुरुष भी खलों की मंडली में घुसकर अपने धर्म से डिग गए हैं सत्संग की बातें सुनने से जो प्रभाव पड़ता है, वह कुसंगति में कुछ मिनटों में ही नष्ट हो जाता है। अतएव कुसंग से सर्वदा दूर और सावधान रहना चाहिए। विद्वान भी यदि दुर्जन हो तो उसका साथ छोड़ देना चाहिए। क्योंकि मणि वाला सर्प भी विषैला होता है।* कबीर साहब ने कितना अच्छा कहा है :

---

* दुर्जनः परिहर्तव्यो विद्ययाऽलंकृतोऽपि सः।
मणिना भूषितः सर्पः किमसौ न भयंकरः ॥

कबीर संगत साध की, जौ की भूसी खाय।
खीर खांड भोजन मिलै, साकट संग न जाय॥
कबीर संगत साध की, ज्यौं गंधी की बास।
जो कछु गंधी दे नहीं, तो भी बास सुबास॥
कबीर खाई कोट का, पानी पियै न कोय।
जाय मिलै जब गंग से, सब गंगोदक होय॥

सद्ग्रंथ मनुष्य के सबसे श्रेष्ठ मित्र हैं। ये ऐसे मित्र हैं कि प्रत्येक समय में हृदय को शांति प्रदान करते हैं। आज तक जितने महात्मा हुए हैं, प्रायः सब पर इनका प्रभाव पड़ा है। इन्हीं के कारण ज्ञान के कोष संसार में सुरक्षित हैं। जिसने इनकी आराधना की, उसे कुछ न कुछ अवश्य मिला।

वरं पर्वतदुर्गेषु भ्रान्तं वनचरैः सह।
न मूर्खजनसम्पर्कः सुरेन्द्रभवनेष्वपि॥ —भर्तृहरि

पर्वतों में और सघन वनों में शेर या भील आदि वनचरों के साथ रहकर जीवन बिताना अच्छा है परंतु मूर्ख आदमियों के साथ इंद्र-भवन में भी रहने से। सदा दुःख ही मिलता है।

जिस मनुष्य के साथ सदा बुरे आदमी रहते हैं, उसकी सांप आदि भयावने जंतु और अधिक क्या हानि कर सकते हैं! अर्थात् उन बुरे आदमियों से ही उसकी बहुत बड़ी हानि है।

अच्छे मनुष्यों का साथ बुद्धि की जड़ता को दूर करता है। भर्तृहरि ने कहा है :

जाड्यं धियो हरति सिञ्चति वाचि सत्यं
मानोन्नतिं दिशति पापमपाकरोति।
चेतः प्रसादयति दिक्षु तनोति कीर्ति
सत्संगतिः कथय किं न करोति पुंसाम्॥

सत्संगति ही प्रतिष्ठा को बढ़ाती है और बुरे कामों से अलग करती है, मन को सदा खुश रखती है और चारों ओर कीर्ति फैलाती है। बतलाओ, ऐसी कौन-सी भलाई है जो अच्छी संगति, अच्छी सोहबत से प्राप्त नहीं हो जाती? अर्थात् सब भलाइयों की जड़ अच्छी संगति ही है। अतएव अपनी भलाई चाहने वाले मनुष्य को अच्छी संगति अवश्य करनी चाहिए।

पानी की बूंद गर्म लोहे पर गिरते ही नष्ट हो जाती है। वही बूंद कमल के

पत्ते पर गिरकर मोती के समान शोभायमान होती है, फिर वही बूंद स्वाति नक्षत्र में समुद्र की सीप में पड़कर मोती बन जाती है। इस पानी की बूंद के उदाहरण से मालूम हुआ कि अधम, मध्यम और उत्तम गुण प्रायः संगति से ही होते हैं :

संतप्तायसि संस्थितस्य पयसो नामापि न श्रूयते
मुक्ताकारतया तदवे नलिनीपत्रस्थितं दृश्यते।
अन्तः सागरशुक्तिमध्यपतितं तन्मौक्तिकं जायते
प्रायेणाधममध्यमोत्तमजुषामेवंविधा वृत्तयः॥ —भंर्तृहरि

सत्संगति के विषय में वाल्मीकि का कथन है :

चंदन संसार में शीतल होता है। चंद्रमा चंदन से भी शीतल होता हैं। चंद्र और चंदन के मध्य में साधुसंगति उनसे भी शीतल होती है।

चन्दनं शीतलं लोके चन्दनादपि चन्द्रमाः।
चन्द्रचन्दनयोर्मध्ये शीतला साधुसंगतिः॥

सत्य

मन, वचन और कर्म से सच्चाई का पालन करें अर्थात् सत्यमानी, सत्यवादी और सत्यकारी बनें। संकट, निर्धनता और हीनता में भी कभी असत्य से लाभ न उठाएं। सच्चा अर्थात् ईमानदार होना उतना ही सुलभ है जितना ईमानदार होने का बहाना करना। "मनः सत्येन शुद्धति"—सच बोलने से मन शुद्ध होता हैं। जो लोग सत्यभाषी हैं, उनके मन में शांति, हृदय में साहस, बोली में स्पष्टता 'और दृष्टि में तेज भरा रहता है। किसी आदमी के संबंध में यह कहना कि वह सच्चा है, उसका बड़ा भारी सम्मान करना है। सच्चे आदमी का सब विश्वास और आदर करते हैं। कवि ने कहा है :

झूठ कबहु नहि बोलिये, झूठ पाप को मूल।
झूठे की कोउ जगत में, करे प्रतीति न भूल॥
मिथ्या-भाषी सांचहू, कहे न माने कोय।
भांड पुकारै पीरवश, मिस समझें न कोय॥

'नहि सत्यात्परो धर्मः"—सत्य से बढ़कर और कोई धर्म नहीं है। कबीर साहब कहते हैं :

सांच बराबर तप नहीं, झूठ बराबर पाप।
जाके हिरदे सांच है, ताके हिरदे आप॥

मनु महाराज उपदेश करते हैं :

"सत्यं ब्रयात, प्रियं ब्रयात्, मा ब्रयात् सत्यमप्रियम्"—अर्थात् सत्य बोलो, पर मीठा बोलो। ऐसा सत्य भी न बोलो जो कड़वा लगे। सच्ची बात यदि कड़वी है तो उसके लिए भी मीठे शब्द ढूंढ़ो और यह कोई कठिन काम नहीं। "प्रियं च नानृतं ब्रू यादेष धर्मः सनातनः।" दूसरे को प्रसन्न करने के अर्थ हेतु झूठ न बोलें परंतु सत्य की खोज में अथवा सार्वजनिक हित की उच्चतम प्रेरणा से जो वाद-विवाद अथवा आंदोलन होता है, ऐसे अवसरों पर इस नियम का व्यतिक्रम हो सकता है अर्थात् कटु सत्य भी बोला जा सकता है, वरन् सत्यज्ञान का प्रचार असंभव हो जाय।

एक सत्य का आश्रय ग्रहण करने ही से और जितने गुण हैं, वे आपसे-आप आकर मनुष्य का हाथ पकड़ते है। अतएव सर्वदा सत्यपालन करने का दृढ़ संकल्प करें।

दया और न्याय

दया धर्म हिरदे बसै, बोलै अमृत बैन।
तेई ऊंचे जानिये, जिनके नीचे नैन॥

जो दूसरों पर दया करता है, वह दूसरों से दया के लिए अपनी सिफारिश करता है।

जब अनाथ आपके पास सहायता के लिए आवें और वे आंखों में आंसू भर कर आपकी मदद मांगें, तो उनके दुःखों पर ध्यान दें और निराश्रितों की यथाशक्ति सहायता करें। रास्ते में भटकते हुए, वस्त्रहीन निराधार मनुष्य को शीत से कांपते हुए देखें तो उस समय अपनी उदारता का परिचय दें। दया की छाया उसके ऊपर करके उसके प्राणों की रक्षा करें। ऐसा करने से आपकी आत्मा को शांति मिलेगी।

जबकि गरीब रोगी बिस्तरे पर पड़ा कराह रहा हो अथवा पके बाल वाला एक वृद्ध पुरुष आपसे दया की इच्छा रखता हो, उस समय भला बताइए तो सही, उनके दुःखों की ओर कुछ भी ध्यान न देकर क्या आप अपने ऐश व आराम में निमग्न रहेंगे?

दूसरे का दुःख दूर करने की ओर जिसके चित्त की प्रवृत्ति नहीं, दूसरे की आंखों में आंसू देख जिसकी आंखों में आंसू न भर आएं, दूसरे की विपद देख जिसका हृदय दुःख से व्याकुल न हो उठे, ऐसे कठोर हृदय मनुष्य, ऐसे स्वार्थ-परायण, ऐसे समाज के कांटे जन-मंडली से जितनी ही दूर रहें, उतना ही अच्छा है।

परंतु किसी अपराधी को क्षमा करना अथवा कम दंड देना दया नहीं है बल्कि

समाज के साथ निर्दयता है। जिसने जितना बुरा किया हो उसको उतना वैसा ही दंड देना अपराधी के प्रति न्याय है और समाज के सहस्रों मनुष्यों के साथ दया है।

"मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे"—हम सबको मित्र की दृष्टि से देखें। दूसरों के साथ पक्षपातरहित और न्याय का बर्ताव करें अथवा वैसा ही बर्ताव करें जैसाकि आप अपने साथ चाहते हैं, न कि ऐसा जो आप कदापि दूसरों से अपने प्रति नहीं कराना चाहते। इसलिए यदि आप दूसरों से सम्मान, सत्कार, उपकार, दया, सेवा और सहायता की अभिलाषा रखते हैं तो पहले दूसरों के प्रति ऐसा व्यवहार करें। आप किसी से मीठी बात सुनना चाहते हैं तो आप मीठी वाणी बोलें और किसी से गाली नहीं सुनना चाहते हैं तो किसी को गाली मत दें। मनुष्य वही है जो मननशील होकर स्वात्मवत् अन्यों के सुख-दुःख और हानि-लाभ को समझें। "आत्मवत् सर्वभूतेषु यः पश्यति स पंडितः"—जो अपने सदृश सबको देखता है, वही विद्वान है।

अन्यस्माद्यादृशं स्वस्मै व्यवहारमपेक्षसे।
अन्यस्मै तादृशं कर्त्तुमुत्सहस्व त्वमप्यहो।
आत्मनः प्रतिकूलानि परेशां न समाचरेत्॥

हम लोगों के परस्पर जितने व्यवहार हैं, आइने में मुंह देखने के बराबर है। जैसे अपने को सामने रखकर हंसोगे तो प्रतिबिंब हंसेगा और रोओगे तो प्रतिबिंब रोवेगा, वैसे ही तुम किसी का उपकार करोगे तो तुम्हारा भी कोई उपकार करेगा और तुम किसी की हानि करोगे तो बदले में हानि भुगतनी पड़ेगी। प्रेम करने पर प्रेम, शत्रुता करने पर शत्रुता प्राप्त होगी। हृदय दोगे तो हृदय पाओगे। कपट के बदले कपट मिलेगा। तुम हंसकर बोलोगे तो तुम्हारे साथ संसार के लोग हंसकर बोलेंगे। तुम मुंह छिपाओगे तो संसार के लोग तुमसे मुंह छिपायेंगे। दूसरे को सुखी करोगे तो तुम सुखी होओगे और दूसरे को दुःख दोगे तो खुद दुःख पाओगे। दूसरे का सम्मान करोगे तो तुम्हारा सम्मान भी लोग करेंगे। दूसरे का अपमान करोगे तो तुम्हें अपमानित होना पड़ेगा। सारांश यह कि जैसा काम करोगे वैसा ही फल मिलेगा। इस संसार में कर्म-बीज कभी विफल नहीं होता।

यदन्यैर्विहितं नेच्छेदात्मनः कर्म पुरुषः।
न तत्परेषु कर्तव्यं जानन्नप्रियमात्मन॥—महाभारत, अनुशासन पर्व

अर्थात् "जो पुरुष दूसरे के किसी कर्म को अपने लिए अच्छा नहीं समझता तो उसे उचित है कि वह भी ऐसा कर्म, जो उसकी अपनी आत्मा के लिए अप्रिय हैं, दूसरे के प्रति न करे।"

संसार में रहकर कोई यह समझे कि हम सदा हर एक काम मीठी बातों से या विनय से ही संपन्न कर लेंगे, यह हो नहीं सकता। भिन्न-भिन्न प्रकृति के मनुष्यों के साथ आचार-व्यवहार करना होता है। अतएव मनुष्य एकदम क्रोधहीन, शांत, विजयी और कोमल हृदय होकर नहीं रह सकता। उसको समय के अनुसार कोमलता या कठोरता का व्यवहार करना पड़ेगा। मान लें, आप कहीं जा रहे हैं। रास्ते में आपने देखा कि एक बलवान पुरुष के द्वारा एक दुर्बल मनुष्य सताया जा रहा है अथवा कोई असहाय अबला डाकू से अभिभूत होकर आधी रात में सहायता के लिए रो-रोकर पुकार रही है। ऐसे समय में यदि आप क्षमाशील होकर उस बलवान के अत्याचार पर कुछ न बोलें, उस अनाथ अबला को संकटग्रस्त देख उसकी कातर-प्रार्थना पर ध्यान न देकर अपनी शांतशीलता प्रकट करें, तो जान लें कि आप निस्संदेह कायर हैं, आपकी वह क्षमाशीलता और शांत स्वभाव ही आपके चरित्र को कलंकित कर रहे हैं। किंतु उस हृदयद्रावक, दुर्नीति व्यवहार को देखकर यदि आपका रक्त गर्म हो उठे, क्षमा की जगह क्रोध उत्पन्न हो और उपेक्षा की बात न सोचकर उस असहाय की सहायता के लिए उद्यत हो जायं तो आप यथार्थ में सत्पुरुष कहलाएंगे।

परोपकार

मनुष्य का सुख और दुःख जहां अपने कर्म के फल से प्राप्त हुआ करते हैं, वहां दूसरों के कर्मों से भी प्राप्त हुआ करते हैं। इसलिए मनुष्य को जहां अपने को अच्छा बनाने का प्रयत्न करना चाहिए वहां अपने पड़ोसी, नगर और देशवासियों को भी अच्छा बनाने के लिए यत्नवान् होना चाहिए जिससे उनके बुरे कर्मों से उसे दुःख न उठाना पड़े। मनुष्य सामाजिक प्राणी है, किसी भी व्यक्ति की जीवन-यात्रा समाज से पृथक् होकर नहीं चल सकती। अगर वह समाज, जिसके हम अंग हैं, उन्नतशील और सुखी है तो हम और हमारी संतति भी उन्नत और सुखी रह सकेगी, वरन् नहीं। इसीलिए ऋषि दयानंद ने कहा है :

"प्रत्येक को अपनी ही उन्नति से संतुष्ट न रहना चाहिए किंतु सबकी उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिए।"

महाराज भर्तृहरि ने कहा है कि "स्वार्थो यस्य परार्थ एव स पुमान् एकः सतां अग्रणीः"—परार्थ ही को जिस मनुष्य ने अपना स्वार्थ बना लिया है, वही सब सत्पुरुषों में श्रेष्ठ है।

परोपकारी मनुष्य की इच्छा सदैव दूसरों की भलाई करने की ओर रहती है और उसके लिए वह अवसर ढूंढ़ता फिरता है। जिस प्रकार गुलाब से मधुर सुगंध आपसे-आप निकलती है, उसी प्रकार उसका हृदय अच्छे काम की ओर आपसे-आप लगा रहता है, किसी के कहने अथवा प्रेरणा की आवश्यकता नहीं होती। समाज

उत्कर्ष के लिए वह पागल की नाईं दौड़-धूप करता है।

दूसरों के दुःख और चिंताओं को देखकर परोपकारी मनुष्य का हृदय पसीज उठता है और उसके हृदय-सरोवर से भलाई की नदियां बह निकलती हैं। वह दुःखी और चिंतित लोगों की आपत्तियों को दूर करने का प्रयत्न करता है और यदि सफलता हो गई तो उससे जो शांति और आनंद मिलता है, उसे वह अपने लिए पुरस्कार समझता है।

वह अपने पड़ोसियों की निंदा नहीं करता, डाह और मत्सरता की बातों पर विश्वास नहीं करता और किसी की चुगली नहीं करता। वह दूसरों के अपराधों को क्षमा करके उन्हें भूल जाता है। बदला और द्वेष को उसके हृदय में जगह नहीं मिलती। बुराई के बदले में वह बुराई नहीं करता। वह अपने शत्रुओं से घृणा नहीं करता बल्कि प्रेम-भाव से उनको जीतने की कोशिश करता है। जिस प्रकार सूर्य बिना ही प्रार्थना किए कमल खिलाता है—विकसित करता हैं, चांद भी कुमुदिनियों के समूह को अपने-आप ही प्रफुल्लित कर देता हैं और जिस प्रकार बादल भी बिना ही मांगे जल बरसाते हैं, उसी प्रकार अच्छे मनुष्य भी बिना ही प्रार्थना के दूसरों की भलाई करने हेतु सदा तत्पर रहते हैं।

पद्माकरं दिनकरो विकचं करोति
चन्द्रो विकासयति कैरवचक्रवालम्।
नाभ्यर्थितो जलधरोऽपि जलं ददाति
सन्तः स्वयं परहितेषु कृताभियोगाः।

—भर्तृहरि

यह सोचकर किसी का उपकार करना कि मैं उपकार करता हूं, तो वह भी मेरा उपकार करेगा, स्वार्थ से खाली नहीं कहा जा सकता। ऐसे उपकार को वणिक्वृत्ति कहना अनुचित न होगा। सत्कर्म करने से जो हृदय में एक प्रकार का अलौकिक आनंद उत्पन्न होता है, उस आनंद का उपभोग ऐसे मतलबी उपकारी लोग नहीं कर सकते।

विद्या विवादाय धनं मदाय शक्तिः परेषां परिपीडनाय।
खलस्य साधोर्विपरीतमेतद् ज्ञानाय दानाय च रक्षणाय॥

दुष्ट जनों की विद्या विवाद के लिए, धन गर्व के लिए और शक्ति दूसरों को पीड़ा पहुंचाने के लिए होती है। इसके विपरीत साधु पुरुष की विद्या ज्ञान-प्राप्ति के लिए, धन दूसरों को दान देने के लिए तथा शक्ति दूसरों के त्राण के लिए होती है।

अतएव यदि परमात्मा ने विद्या, शक्ति और धन दिया है तो अज्ञानी, निर्मल

और दीन के लिए लगा दें और सेवा या परोपकार के बदले तत्काल ही या भविष्य में कुछ पाने की इच्छा अथवा आशा भूलकर भी न करें। नेकी कर, कुएं में डाल, वरन् वह दुकानदारी हो जायगी।

यदि आपने किसी का उपकार किया है तो मौन रहें और लोगों पर प्रकट न करते फिरें, बेहतर यह है कि उसको बिल्कुल भूल जायें। जब आप किसी की भलाई कर रहे हों तो यह खयाल करके करें कि भलाई करना उत्तम है। यह खयाल करके न करें कि लोग आपकी प्रशंसा करेंगे। संकट में फंसे हुए अपने शत्रु की भी सहायता करें।

घमंडी मनुष्य का तो कभी उपकार ग्रहण न करें, क्योंकि उसका घमंड आपको किसी अवसर पर लज्जित करेगा।

किसी रिश्तेदार और घनिष्ठ मित्र का भी जहां तक हो सके, आश्रय अथवा अहसान मत लें। परंतु सार्वजनिक कार्यों में किसी से सहायता लेना और अहसान भी सहना बुरा नहीं है।

यदि आपत्ति के समय आपको किसी की सहायता लेनी पड़े अथवा आप पर कोई उपकार करे तो उसे पत्थर पर लिखें अर्थात् जीवन-भर उसको याद रखें और यथासंभव अवसर मिलते ही शीघ्र उसका बदला चुका दें।

अपने कल्याणकर्ता से डाह न करें और न उसके किए हुए उपकार को छिपाने का प्रयत्न करें। क्योंकि यद्यपि उपकारबद्ध होने की अपेक्षा उपकार करना अच्छा है, यद्यपि उपकार से हमारी प्रशंसा होती है तथापि कृतज्ञ पुरुष की नम्रता हृदय को द्रवीभूत करती है और ईश्वर व मनुष्य दोनों को भली मालूम होती होती है।

अगर किसी ने किसी के साथ एक उपकार किया है तो इसका यह अर्थ नहीं है कि उपकृत सदैव के लिए उपकारी का दास हो गया, न ही यह कि वह उपकारी से अन्य उपकारों की कामना करे।

धन

जैसी आपकी स्थिति हो, उसी के अनुसार सामग्री एकत्रित करें। कहा है: "आयाधिकं वयं मा कुरु—आपदर्थे धनं रक्षेत्" अर्थात् आय से अधिक व्यय न करें और मुसीबत के समय के लिए धन की रक्षा करें। यदि युवावस्था में कुछ धन संचित कर लें तो बुढ़ापे में आपको आराम मिलेगा। विपत्ति के समय जितना काम धन से निकलता है उतना और किसी से नहीं निकलता। द्रव्य की तृष्णा बुराइयों की जड़ है किंतु मितव्ययिता हमारे गुणों का रक्षक है।

केवल अधिक कमाने से नहीं, किंतु कमाये हुए धन की रक्षा करने से मनुष्य धनी होता है। अगर किसी की आय १० रुपये रोज की है और वह ११ रुपये

रोज़ व्यय कर देता है तो चाहे उसके पास कितनी भी संपत्ति जमा क्यों न हो, वह गरीबहो जा यगा परंतु जिसकी आय ५ रुपये रोज़ की है और वह ४ रुपये रोज़ खर्च करता है, तो वह बावजूद कम आय होने के कुछ दिन में अवश्य धनी हो जायगा।

कन कन जोरे मन जुरै, खाते निबरै सोय।
बूंद बूंद से घट भरै, टपकत रीते होय॥

परंतु जहां बहुव्ययी होना अर्थात् आय से अधिक व्यय करना बुरा है, वहां सीमा से अधिक मितव्ययिता भी अच्छी नहीं है। वह मनुष्य, जो धन के पीछे मन की शांति से हाथ धो बैठता है, इस उद्देश्य से कि भविष्य में उसके उपयोग करने में मुझे बड़ा आनंद मिलेगा, उस मनुष्य के समान है जो घर सजाने का सामान खरीदने के लिए अपने घर ही को बेच डालता है।

धन संचित करना बुरा नहीं है। परंतु केवल धन की प्रचुरता से ही कोई मनुष्य धनी नहीं कहा जा सकता। सच्चा धनी तो वही है जो संपत्ति का ठीक-ठीक उपयोग करना जानता है। संपत्ति का उपयोग अगर अच्छा हुआ तो इससे अनेक पुरुषार्थ सिद्ध हो सकते हैं। धन के मद से यदि न्याय, संयम, नियम, परहित बुद्धि अथवा विनय को तिलांजलि न दी गई है तो सुख होगा। संपत्ति स्वतः बुरी नहीं है, किंतु उससे उत्पन्न होने वाला मद बुरा है। इस मद को जीतने वाले बिरले ही होते हैं।

घुड़-दौड़, लाटरी, सट्टे वगैरह में रुपया लगाना अपव्ययिता है, इन व्यसनों से सदैव दूर रहें और यथासंभव मुकदमेबाजी से भी बचें। चाहे कितना ही कष्ट हो, ऋण मत लें, विशेषकर पुत्री से ऋण लेने वाला पिता शत्रु होता है। यदि ऋण लेना ही पड़े तो उसे जल्दी चुकाने की चिंता करें। मित्र से तो यथासंभव कभी कर्ज़ मत लें, क्योंकि इससे मित्रता भंग हो जाने की आशंका रहती है। मनुष्य ऋण लेते समय मित्रता के और वापस मांगे जाने पर साधारणतया शत्रुता के भाव प्रकट करता है। इसलिए बिना लिखा-पढ़ी कभी भी किसी को ऋण न दें। कहावत भी है कि यदि तू बैरी चाहता है तो किसी को धन दे दे और फिर उससे मांग।

न विषं विषमित्याहुर्ब्रह्मस्वं विषमुच्येत।
विषमेकाकिन हन्ति ब्रह्मस्वं पुत्रपौत्रकम्॥
पापं कर्तुं मृणं कर्तुं मन्यन्ते मानवाः सुखम्।
परिणामोऽतिगहनो महतामपि नाशकृत्॥ —व्यास

नश्यति विपुलमतेरपि बुद्धिः पुरुषस्य मन्दविभवस्य।
घृतलवणतैलतण्डुलवस्त्रेन्धनचिन्तया सततम् ॥

अति बुद्धिमान और विद्वान पुरुष भी बेचारा निर्धन हो, तो उसकी अक्ल घी, नमक, तेल, चावल, वस्त्र और ईंधन की चिंता में घुलती रहती है।

दान

गृहस्थ को चाहिए कि जितना देने से उसके कुटुंब को कष्ट न हो, उतना अथवा यथाशक्ति योग्य पात्रों को अवश्य दे। परंतु दुखियों का दुःख देखकर आप उत्तेजना-वश तत्काल दान करके पीछे पछताने लगें तो ऐसे दान से दान न करना ही अच्छा है। धन वालों के लिए संत तुलसी साहब ने कहा है :

पानी बाढ़ो नाव में, घर में बाढ़ो दाम।
दोनों हाथ उलीचिये, यही सयानो काम ॥

दान के पात्र अपाहिज, अनाथ, निर्धन विद्यार्थी, रोगी व वृद्ध, समाज व देश के सेवक और विद्वान संन्यासी हैं। इनके अतिरिक्त जो पाखंडी लोग भीख मांगते हैं या अनधिकारी होते हुए संन्यास ले लेते हैं, वे समाज के चोर हैं और जो लोग ऐसों को भीख देते हैं, वे लोगों को आलसी बनाने में मदद करते हैं।

किसी को दान (अथवा इनाम) दूर से, घृणा से मत दें, मुस्कराते हुए दें। दाहिने हाथ से दान देते समय बायें हाथ में लाठी नहीं होनी चाहिए अर्थात् याचकों की प्रार्थना पूरी करते समय भौंहें टेढ़ी करके कठोर वचन न बोलें। मधुर वचन के साथ दान करने से दाता का पुण्य बढ़ता है और दान लेने वाले का भी मन प्रसन्न होता है।

दान को गुप्त रखें, उसकी प्रसिद्धि करते मत फिरें। अंग्रेजी की एक कहावत है, जिसका अर्थ है "तेरे बायें हाथ को न मालूम होना चाहिए कि तेरे दायें हाथ ने क्या (दान) दिया है।"

घर पर आये हुए भिक्षुक को यदि आप कुछ देना उचित नहीं समझते तो उसे कटु शब्दों से संबोधित न करें। अपने कुछ न देने की बात उसे नम्र शब्दों में कह दें।

स्वयं न खादन्ति फलानि वृक्षाः
पिबन्ति नाम्भः स्वयमेव नद्यः।
धाराधरो वर्षति नात्महेतोः
परोपकाराय सतां विभूतयः ॥

वृक्षों के फल, नदियों का जल, मेघ की वृष्टि—जैसे ये चीज़ें स्वार्थ-सुख के लिए नहीं होतीं, वैसे ही सज्जनों का धन अपने सुख-भोग के लिए न होकर दूसरों के उपकार के लिए होता है। जो दिन बीत गए वे लौटने वाले नहीं और जो आगे आने वाले हैं उन पर कोई भरोसा नहीं, इसलिए हे मनुष्य, तुझे उचित है कि न भूतकाल के लिए पश्चात्ताप कर और न भविष्य पर अधिक विश्वास रख, केवल वर्तमान काल का उपयोग करना अपना लक्ष्य बना। यह समय अपना है और आगे चलकर क्या होगा, यह कोई जानता नहीं। अतएव जो कुछ करना है उसे शीघ्र ही कर डाल। जो काम प्रातःकाल हो सकता हैं, उसे सायंकाल पर मत छोड़। आज का काम कल पर छोड़ने वाला व्यक्ति कभी सफल मनोरथ नहीं हो सकता, वह धीरे-धीरे कर्तव्य-विमूढ़ हो जाता है।

कबीर साहब कहते हैं :

रात गंवाई सोय करि, दिवस गंवायो खाय।
हीरा जन्म अमोल था, कौड़ी बदले जाय॥

भर्तृहरि ने कहा हैं :

देवता और विधाता से क्या काम है ? इस धारणा से कर्म ही को नमस्कार है क्योंकि विधाता का भी सामर्थ्य जिस पर नहीं चलता। देवताओं को हम नमस्कार करते हैं परंतु उनको विधाता के वश में देखते हैं, इसलिए विधाता को नमस्कार करते है। पर विधाता भी हमारे पूर्व निमित्त कर्म के अनुसार फल देता है। फिर जब फल और विधाता दोनों ही कर्म के अधीन हैं तो :

काल करै सो आज कर, आज करै सो अब्ब।
पल में परलै होयगी, बहुरि करैगो कब्ब॥
नाम भजो तो अब भजो, बहुरि भजोगे कब्ब।
हरियर हरियर रूखड़े, ईंधन हो गये सब्ब॥

आलस्य करने से आवश्यक वस्तुएं भी प्राप्त नहीं होतीं, जिससे मनुष्य को बहुत दुःख होता है; परंतु परिश्रम करने से आनंद ही आनंद मिलता है। उद्योगी को किसी बात की कमी नहीं रहती क्योंकि उन्नति और विजय उसके पीछे-पीछे चलते हैं।

श्रम ही सौं सब मिलत है, बिन श्रम मिलै न काहि।
सीधी अंगुली घी जम्यौ, क्यौं हूं निकरै ताहि॥

जो कभी खाली नहीं बैठता, जो पुरुषार्थ को मित्र और आलस्य को शत्रु समझता है, वही धनवान है, वही अधिकार-संपन्न है और वही आदरणीय है।

आलसी लोग ही पाप-वासनाओं के शिकार हुआ करते हैं। अंग्रेजी में नीति का एक वाक्य है जिसका भावार्थ यह है कि "जिन्हें अपना कर्तव्य कर्म नहीं सूझता, पिशाच उन्हें कर्म ढूंढ़ देता है।" बुरी भावना और बुरे कामों से उद्धार पाने का प्रधान उपाय यह है कि सर्वदा अच्छे कामों में लगे रहना और अच्छी बातें सोचना। अतएव एक कर्तव्यशील मूढ़ भी अकर्तव्यशील विज्ञान से श्रेष्ठ है।

सोना देने पर भी जीवन नहीं खरीदा जा सकता और न ढेर के ढेर हीरे खर्च करने पर गया हुआ समय फिर वापस मिल सकता है। इसलिए प्रत्येक क्षण को पुरुषार्थ करने अर्थात् सद्गुण संपादन व भला काम करने में ही लगाना बुद्धिमानी है।

जिस प्रकार एक ही सूर्य सब जगत् में प्रकाश करता है, उसी प्रकार पराक्रमी पुरुष अकेला ही अपने बड़े पराक्रम से समस्त पृथ्वी को वश में कर सकता है।

एकेनापि हि शूरेण पादाक्रान्तं महीतलम्।
क्रियते भास्करेणेव परिस्फुरिततेजसा॥ —भर्तृहरि

आलसी किसान खेत को अच्छी तरह जोत-जात कर यदि समय पर उसमें बीज न बोये तो एक दिन वह अपने सूने खेत में बैठकर परिश्रमी किसानों को धान का संचय करते देखकर जरूर पछतायेगा।

हमारी सब प्रकार की उन्नति के मार्ग मे आलस्य ही भारी कंटक है। हम लोगों की समस्त दुर्बलताओं का कारण आलस्य ही है। आलसी लोग ही अकसर दूसरों की निंदा किया करते हैं। जो लोग आलस्यरहित हैं, कर्मवीर हैं, उन्हें ऐसी खोटी बात बोलने का समय कहां? जो लोग अकर्मण्य हैं, आलसी हैं, वे दूसरे की निंदा करने के साथ ही साथ आत्मश्लाघा-रूपी घोर अपराध के अपराधी भी हैं।

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छत समाः।
—यजुर्वेद, अध्याय ४०

उद्योगिनं पुरुषसिंहमुपैति लक्ष्मी-
र्दैवेन देयमिति कापुरुषा वदन्ति।
दैवं निहत्य कुरु पौरुषमात्मशक्त्या
यत्ने कृते यदि न सिध्यति कोऽत्र दोषः॥ —हितोपदेश

आलस्यं हि मनुष्याणां शरीरस्थो महारिपुः।
नास्त्युद्यमसमो बन्धुर्यं कृत्वा नावसीदति॥ —भर्तृहरि

आलस्य मनुष्यों के शरीर में महाशत्रु है। उद्योग समान दूसरा बंधु नहीं कि जिसके करने से दुःख नहीं आता।

प्रकृति की प्रेरणा मनुष्यों के प्रति यही है कि परिश्रम का मूल्य आप पायें न पायें, पर कर्म बराबर करते जायें। आप जो कर्म करेंगे उसका पुरस्कार कभी न कभी आपके हाथ जरूर आयेगा। "नहि किंचित्कृतं कर्म लोके भवति निष्फलम्।" आप हल्का काम करें या भारी काम करें, खेती करें या महाकाव्य लिखें—कोई काम क्यों न हो, योग्यता के साथ संपन्न करें। किसी अच्छे काम को भली भांति संपादन कर सकेंगे तो वही आपके लिए पुरस्कार होगा।

उद्यमं साहसं धैर्यं बुद्धिः शक्तिः पराक्रमः।
षडेते यत्र वर्तन्ते तत्र देवः सहायकृत्॥
उद्यमेन हि सिध्यन्ति कार्याणि न मनोरथैः।
नहि सुप्तस्य सिंहस्य प्रविशन्ति मुखे मृगाः॥ —माघ

पूर्वजन्मकृतं कर्म तद्दैवमिति कथ्यते।
तस्मात्पुरुषकारेण बिना दैवं न सिध्यति॥ —व्यास

उद्योगिनं पुरुषसिंहमुपैति लक्ष्मीर्दैवं हि दैवमिति कापुरुषा बदन्ति।
दैवं निहत्य कुरु पौरुषमात्मशक्त्या यत्ने कृते यदि न सिध्यति कोऽत्र दोषः॥
—कृष्णमिश्र

उत्कर्ष होने पर मर्यादा से अधिक हर्ष में न आयें अथवा डींग न मारें और विपत्काल आने पर अपनी आत्मा को शोक अथवा निराशा के गड्ढे में न ढकेलें। संपत्काल का सुख स्थायी नहीं है, इसलिए उस पर भरोसा न करें और विपत्काल की दृष्टि हमेशा वक्र नहीं रहती, इसलिए घबराना छोड़कर धैर्य के साथ आशा को स्थिर रखें। महाकवि कालिदास ने कहा है :

कास्यैकान्तसुखमुपगतं दुःखमेकान्ततो वा।
नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण॥

अर्थात् न सदैव किसी को सुख ही रहता है और न सर्वदा किसी को दुःख ही रहता है। यह सुख-दुःख का चक्र रथ के पहिये की तरह नीचे-ऊपर बारी-बारी से घूमा करता है।

विपत्तिकाल में धैर्य रखना जितना कठिन है, संपत्काल में संयमी बनना उतनी ही बुद्धिमानी है। संपत्काल और विपत्काल तुम्हारी आत्मिक दृढ़ता परखने की कसौटियां हैं। इनको छोड़कर अन्य किसी प्रकार तुम्हारी आत्मा की

परीक्षा नहीं हो सकती। इसलिए जब इनका आगमन हो तब बड़ी सावधानी से काम लें।

किसी भी प्रकार के संकट में तथा इच्छित वस्तु के प्राप्त न होने पर धैर्य न छोड़ना चाहिए। जो धैर्य धारण करता है उसी का धर्म बचता है और वही लौकिक तथा पारलौकिक सुख और सफलता प्राप्त करता है।

जो-जो इस संसार में जन्म लेते हैं उनमें से प्रत्येक के भाग्य में कुछ-न-कुछ संकट, आपत्ति, क्लेश और हानि अवश्य लिखा रहता हैं। इसलिए मनुष्य को चाहिए कि वह पहले ही से अपने मन को साहस और धैर्य से सुदृढ़ बनाये ताकि भावी आपत्तियां उसे मालूम न पड़ें, संकट को बुलाये तो नहीं परंतु उसके आने पर मुंह भी न छिपाता फिरे। कबीर साहब फरमाते हैं :

देह धरण का दण्ड है, सब काहू को होय।
ज्ञानी भुगतै ज्ञान से, मूरख भुगतै रोय॥

स एव धन्यो विपदि स्वरूपं यो न मुञ्चति।
त्यजत्यर्कक रैस्तप्तं हिमं देहं न शीतताम्॥ —वशिष्ठ

चलन्ति गिरयः कामं युगान्तपवनाहताः।
कृच्छ्रेऽपि न चलत्येव धीराणां निश्चलं मनः॥ —अमरुक

निन्दन्तु नीतिनिपुणा यदि वा स्तुवन्तु।
लक्ष्मीः समाविशतु गच्छतु वा यथेच्छम्॥
अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा।
न्याय्यात्पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः॥ —भर्तृहरि

नीति जानने वाले चाहे निंदा करें चाहे स्तुति, और लक्ष्मी चाहे घर में बहुत-सी आवे, चाहे चली जाय, प्राण चाहे अभी जायें चाहे कल्पान्त में, धीर लोग न्याय का मार्ग छोड़कर एक पग भी उससे बाहर नहीं चलते।

तेजस्वी पुरुष भाग्य की वक्र दृष्टि से नहीं डरता। उसकी आत्मा अपने गौरव को नहीं छोड़ती। वह अपने सुख को भाग्य पर अवलंबित नहीं रहने देता। उसके मुख से—"जो देव करेगा, होगा" यह कातरोक्ति कभी नहीं निकलती। वह जानता है कि पुरुषार्थ प्रारब्ध से बड़ा है और इसीलिए वह निरुत्साही नहीं होता। समुद्र के किनारे की चट्टान की तरह अपने कर्तव्य पर जमा रहता है और दुःख की खारी लहरें उसका कुछ बिगाड़ नहीं सकतीं।

शोक के वशीभूत मत होओ, शोक करने से कुछ लाभ नहीं होता। शोक आदि वेग व विकार मूर्खों पर ही अपना अधिकार जमाते हैं। बुद्धिमान लोग मरे हुए का, नाश हुई वस्तु का और बीती हुई बात का शोक नहीं करते। जो कुछ

बीत गया उसको विचार कर दुःखी होते रहने की अपेक्षा वे वर्तमान और भविष्य की सुध लेते हैं। शोक को दूर करने के लिए काम में लगे रहने से उत्तम कोई दूसरा उपाय नहीं।

अपने कर्तव्य का पालन तो करें परंतु चिंता न करें और अपने दिल को दुःखी न होने दें। चिंता करने से स्वास्थ्य का नाश हो जाता है। चिंता से बल, वीर्य और रूप आदि नाश हो जाते है। चिंता बलिष्ठ से बलिष्ठ शरीर को घुन की तरह खोखला कर देती है। चिंता भी राज-यक्ष्मा रोग का एक कारण है। अन्य सब रोगों का इलाज है, किन्तु चिंता-रूपी रोग का इलाज नहीं है। चिता मरे हुए को जलाती है और चिंता जीते जी को जलाकर खाक कर देती है। यदि सुख से बहुत दिन तक जीना चाहते हों तो चिंता को त्यागें।

काम करने के लिए कुछ नियम बना लें और (अनुभव से) देखें कि वे ठीक है अथवा नहीं। यदि ठीक जान पड़े तो स्थिरचित्त होकर उन्हीं के अनुसार काम करना आरंभ कर दें और अपने मार्ग से विचलित न हों। इस प्रकार मनोविकार आपको तंग न करेंगे चित्त की दृढ़ता सद्गुणों को स्थिर करके कठिनाइयों को दूर करेगी और चिंता तथा निराशा को आपके पास तक आने का साहस नहीं होगा।

पुरुष जैसा होने की इच्छा करता है वैसा ही हो जाता है। वह स्वयं ही अपने भाग्य का विधाता है, इसलिए "तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु" अर्थात् मेरा मन अच्छे संकल्प वाला हो—ऐसी इच्छा और प्रार्थना करें। अपनी इच्छाशक्ति को बढ़ायें और दृढ़ संकल्पी बनें। विचार करने के बाद जिस अच्छे काम के करने का इरादा एक बार कर लें तो अवश्य आरंभ कर दें। अगर आपने एक बार भी ढील छोड़ दी तो इरादे को कार्य रूप में परिणत न कर सकेंगे।

मन के हारे हार है, मन के जीते जीत।

जो संकल्प किया है उसको पूरा करके ही दम लें। विद्युत् की तरह क्षण-स्थायी उद्यमशीलता या उत्साह का प्रदर्शन, एक काम पूरा होते न होते दूसरा काम ठान लेना, एक साधारण काम में प्रवृत्त होकर साधारण-से विघ्न उपस्थित होने पर 'हम नहीं कर सकेंगे' कहकर परिश्रम और प्रतिज्ञा से हट जाना—कायरता है और मनुष्य को शोभा नहीं देता।

विघ्न आते हैं, परंतु दृढ़निश्चयी मनुष्य उनकी परवाह नहीं करता। दैविक और मानसिक शक्तियां उसे रोकती है, परंतु वह आगे ही को पैर रखता जाता है। पहाड़ उसका मार्ग नहीं रोक सकता और समुद्र उसके चरण-स्पर्श से सूख जाता है।

ईर्ष्या व मत्सर

आप जो कोई व्यवसाय करते हैं उसमें सर्वोच्च होने का प्रयत्न कर, अच्छे काम में किसी को भी अपने से आगे न बढ़ने दें। दूसरों के गुणों से डाह न कर, अपने गुणों की वृद्धि करने की ओर ध्यान दें।

अपने प्रतिद्वंदी को निंदनीय साधनों का अवलंबन लेकर दबाने की चेष्टा न करें। हृदय में पवित्र भाव रखते हुए उससे आगे निकल जाने का प्रयत्न करें। यदि सफल मनोरथ न हुए तो कम-से-कम आपका सम्मान तो अवश्य होगा।

मत्सरी मनुष्य का अंत:करण चिरायते की तरह कड़वा होता है, उसके मुख से शब्दों के साथ विष बाहर निकलता है और पड़ोसियों की बढ़ती देखकर उसे बेचैनी रहा करती है। वह पश्चात्ताप करता हुआ अपने झोंपड़े में पड़ा रहता है और दूसरों की भलाई देख व सुनकर बुरा मानता है, घृणा और द्वेष उसके हृदय को छेदते हैं और उसके मन को शांति बिल्कुल नहीं मिलती। अपने से श्रेष्ठ पुरुषों का अपमान करने का वह सदैव प्रयत्न करता है और उनके कामों की बुरी-बुरी आलोचानाएं किया करता है।

"दूसरों ने इस उत्तम काम को किसी बुरी इच्छा से किया"—ऐसा न कहें, क्योंकि आपको दूसरों के दिल का हाल क्या मालूम ? दुनिया आपको अवश्य थूकेगी और कहेगी कि तुम्हारा हृदय ईर्ष्या से भरा हुआ है।

अच्छी तरह परीक्षा किये बिना किसी का भी विश्वास न करें और उसे किसी बड़े काम का भार न सौंपें। देखा गया है कि जल्दी, चाहे जिसका विश्वास करने वाले बरबाद हो गये हैं। किंतु साथ-ही-साथ प्रत्येक व्यक्ति को भला समझें और बिना कारण किसी पर अविश्वास अथवा जिस-तिसमें झूठा भ्रम भी न करें। ऐसा करना अनुदारता का लक्षण है। जब आपने किसी की परीक्षा पूर्ण रूप से कर ली तो उसे द्रव्य की तरह संदूक-रूपी अपने हृदय में बंद कर लें और उसे एक अमूल्य रत्न समझें।

जो आपका विश्वास करे उसका साथ दें, जो आप पर निर्भर रहे उसे धोखा न दें। स्मरण रहे, परमात्मा की दृष्टि में चोरी करना इतना बड़ा पाप नहीं है जितना बड़ा पाप विश्वासघात करना है।

बदला

किसी अपराध के लिए बदला लेने से बढ़कर कोई सुगम वस्तु नहीं, परंतु साथ ही उसे क्षमा करने से बढ़कर कोई दूसरा उत्तम काम नहीं।

अपने मन को जीतने से बढ़कर कोई दूसरी जीत नहीं है। अपराध की अवहेलना करना ही अपराध का बदला लेना है।

जब आप बदला लेने का विचार करते हैं तो आप स्वीकार करते है कि आपकी हानि हुई। जब आप शिकायत करते हैं तब आप कबूल करते है कि शत्रु ने आपको हानि पहुंचाई। ऐसा करके क्या आप शत्रु के बल की प्रशंसा करना चाहते हैं ?

जो मालूम न हो वह हानि कैसी ? जिसे हानि की कल्पना ही नहीं उसका बदला कैसा ? हानि के सह लेने में अपमान न समझें। इससे बढ़कर शत्रु पर विजय प्राप्त करने का कोई दूसरा साधन नहीं है।

हानि पहुंचाने का विचार आते ही बदला लेने की इच्छा होती है। सज्जनों के हृदय में दूसरों को पीड़ा पहुंचाने के विचार कभी नहीं आते और इसी कारण वे बदला लेने का खयाल तक नहीं करते।

बदला लेने की इच्छा वे ही करते हैं जिनकी आत्मा क्षुद्र है और जिनकी आत्मा महान है वे अपने साथ की हुई बुराई को बालू पर लिखते हैं अर्थात् भूल जाते हैं और बुराई करने वाले की भलाई करते हैं। कबीर साहब ने कहा है :

जो तो को कांटा बुवै, ताहि बोय तू फूल।
तो को फूल के फूल हैं, वा को है तिरशूल॥

जिसके हृदय में बदला लेने की इच्छा उत्पन्न होती है, उसी के दिल को वह इच्छा पहले पीड़ित कर डालती है और उसके उत्तमोत्तम भावों को मिट्टी में मिला देती है और जिससे बदला लिया जाता है उसका दिल शांत रहता है। जो बदला लेने की घात में रहता है वह एक प्रकार से अपने लिए आपत्ति के बीज बो रहा है।

बदला लेने का विचार बड़ा क्लेशकारक होता है और जब उसे कार्य में परिणत करते हैं तब वह बड़ा भयंकर हो जाता है। कुल्हाड़ी फेंकने वाला जहां उसे फेंकना चाहता है, वह प्रायः नहीं गिरती। यह भी संभव है कि चटककर उसी का प्राणांत कर दे।

जिस प्रकार तूफान और बिजली का प्रभाव सूर्य और तारों पर नहीं पड़ता, बल्कि वे स्वयं पत्थरों और वृक्षों पर टकराकर शांत होते हैं, उसी प्रकार हानि का प्रभाव महात्माओं के हृदय पर नहीं पड़ता, उलटकर वह उन्हीं लोगों पर पड़ता है जो हानि पहुंचाना चाहते हैं।

जिस पुरुष में क्षमा होती है उसको शस्त्रों से बचने के लिए कवच आदि की आवश्यकता नहीं होती।

विनय और अहंकार

अपने को अज्ञानी जानना ही ज्ञानी होने की पहली सीढ़ी है, और यदि तू चाहता है कि दूसरे तूझे मूर्ख न समझें तो भी अपने को बुद्धिमान समझना छोड़ दे।

विद्या विनयोपेता हरति न चेतांसि कस्य मनुजस्य ।
काञ्चनमणिसंयोगो न जनयति कस्य लोचनानन्दम् ॥

विनय-युक्त विद्या किसके मन को हरण नहीं करती ? मणि-कांचन का मेल किसके नेत्रों को नहीं लुभाता ?

मानव-जीवन सीखने के लिए है। मनुष्य को ऐसा स्वभाव बनाना चाहिए कि जिससे जो सीखा जा सके, सीख ले। जो व्यक्ति अपने को भरा-पूरा अर्थात् सर्वगुणसंपन्न समझता है, वह न तो अपनी उन्नति ही कर सकता है और न उसे अधिक कुछ करने का साहस होता है।

शीलवान मनुष्य के विनययुक्त भाषण से सत्य में और भी अधिक तेजस्विता आती है।

केवल अपनी ही बुद्धिमानी पर भरोसा न करें। अपने मित्रों की बातों पर भी ध्यान दें और उनसे लाभ उठायें। अगर अपने मन की ही करें तो भी मित्रों की बात अवश्य सुन लें और उसपर विचार करें। जब कोई आपकी प्रशंसा कर रहा हो तो उसकी ओर से अपने कानों को फेर लें और उसपर विश्वास न करें, क्योंकि वह मदिरा से भी अधिक हानिप्रद है। परमेश्वर को छोड़कर अन्य कोई भी निर्दोष नहीं है, इसलिए सबसे पीछे ही अपने को निर्दोष समझें।

भले आदमी कभी अहंकार नहीं करते। अहंकार मूर्खता का चिह्न है। ईश्वर ने सब मनुष्यों को बुद्धि और शरीर दिया है। जो आदमी आज नीचे पद पर है, कल को वह भी उन्नति करके घमंड करने वाले से ऊंचे पद पर पहुंच सकता है। अतः अहंकार न करें परंतु स्वाभिमान को हाथ से न जाने दें।

कीर्ति परछाईं की तरह अपना पीछा करने वाले से दूर भागती है परंतु जो उसकी ओर से मुंह फेर लेता है उसके पीछे-पीछे लगी रहती है। यदि आप बिना सद्‌गुण के कीर्ति पाने की इच्छा करेंगे तो वह न मिलेगी, परंतु यदि आपमें सद्‌गुण विद्यमान है तो चाहे आप पदवियों से विभूषित न हों और चाहे आप एक कोने में छिपे रहें तब भी वहां वह आपका साथ नहीं छोड़ेगी।

यथार्थ में जितनी अधिक मात्रा सद्‌गुणों की मनुष्य में होती है, उतनी ही कम भूख उसे प्रशंसा की होती है। अतएव अपने मन को सद्‌गुणों की ओर प्रवृत्त करें और—"सर्वथा व्यवहर्तव्यं कुतो ह्यवचनीयता" अर्थात् जो उचित और न्यायपूर्ण हो, उसीको करें, कारण, पूर्णतया अनिंदा तो असंभव है। सारे जीवन अपना कर्तव्यपालन करते रहें। लोग यदि उसके विषय में कुछ भला-बुरा कहें तो उसपर ध्यान न दें। जनता अस्थिर और कृतघ्न है, इसलिए बुद्धिमान इसकी विशेष परवाह नहीं करते। कर्तव्यपालन से अंतःकरण को संतोष होगा और योग्यतानुसार स्थायी मान व सत्कार, प्रशंसा व कीर्ति भी मिलेगी। इससे जो हर्ष प्राप्त होगा वह

उस हर्ष से कहीं बढ़कर होगा जो आपकी अस्थायी कीर्ति—अर्थात् आपकी वास्तविक योग्यता न जानने वाले लाखों मनुष्यों द्वारा झूठी प्रशंसा—सुनने से हो सकती है।

राजा भर्तृहरि कहते हैं कि "जब मैं कुछ-कुछ समझता था तब मस्त हाथी की नाईं घमंड से मदांध हो रहा था लेकिन जब मैंने विद्वानों का साथ किया और जब मुझको कुछ-कुछ ज्ञान होने लगा तब मैंने अपने को निपट मूर्ख पाया। तब मेरा घमंड ज्वर की नाईं जाता रहा।"

अहंकार शत्रुता उत्पन करता है, ईर्ष्या को बढ़ाता है और संसार अच्छे रास्तों को कंटकाकीर्ण करता है। किंतु विनय शत्रु को मित्र बनाता है, ईर्ष्या-सर्पिणी के विषैले दांतों को तोड़ता है और संसार के कठिन से कठिन मार्गों को भी पुण्य-शय्या की तरह कोमल बना डालता है।

जाड्यं ह्रीमति गण्यते व्रतशुचौ दम्भः शुचौ कैतवं
शूरे निर्गुणता मुनौ बिमतिता दैन्यं प्रियालापिनि।
तेजस्विन्यवलिप्तता मुखरता वक्तव्यशक्तिः स्थिरे
तत्को नाम गुणो भवेन्स गुणिनां यो दुर्जनैर्नाङ्कितः ॥—भर्तृहरि

लज्जावान पुरुष को शिथिल, व्रतधारी को दंभी, पवित्र को कपटी, शूर को निर्दय, सीधे को मूर्ख, प्रिय कहने वाले को दीन, तेजस्वी को गर्वीला, वक्ता को बकवादी और स्थिरचित्त वाले को आलसी कहते हैं। इससे यह जान पड़ता हैं कि गुणियों में कौन ऐसा गुण है कि जिसमें दुर्जनों ने कलंक नहीं लगाया।

प्रसन्नता

पति, पत्नी, माता, पिता, भाई, बहन, लड़के, लड़कियां, पड़ोसी आदि—ये सब मधुर संबंध हैं। इनसे अधिक से अधिक आनंद प्राप्त करें। अगर विशाल दृष्टि से देखेंगे तो सारे विश्व के प्राणी अपने कुटुंबी ही हैं। इसलिए संसार से यथासंभव अधिक-से-अधिक प्रसन्नता हासिल करें। जिसका चेहरा सदा खिला हुआ रहता है, जो हमेशा प्रसन्नचित्त रहता है और जिसके चेहरे पर विषाद की छाया नहीं पड़ती, वह सर्वदा स्वस्थ रहता है—उससे रोग कोसों दूर भागते हैं। ऐसा मनुष्य सबका प्यारा भी बना रहता है। सब कुछ आप पर निर्भर है। जब आप प्रसन्नता से मुस्करायेंगे और हंसेंगे तो सारा संसार आपके साथ मुस्करायेगा और हंसेगा। इसलिए सबके साथ सहिष्णुता बरतें। खुश रहें और खुश करें। यह खुशी आपके स्वास्थ्य के लिए अमूल्य पूंजी है। हंसाना बदहज्मी का जानी दुश्मन है। मानसिक और शरीरिक स्वास्थ्य के लिए ही पुराने जमाने में राजा-महाराजा लोग मसखरे दरबारी रखा करते थे।

संतोष

मनुष्य को समझना चाहिए कि अपनी-अपनी योग्यता के अनुरूप सबको इस संसार में स्थान मिलता है, अपनी अवस्था से प्रसन्नचित्त रहना ही संतोष कहलाता है। जिन कठिनाइयों को मनुष्य दूर नहीं कर सकता, उनको प्रसन्नता से सहन करना चाहिए। इसका यह अर्थ नहीं है कि जिन कष्टों अथवा कठिनाइयों को वह परिश्रम से दूर कर सकता है, उन्हें भी सहन करता रहे या भाग्य के नाम पर हाथ पर हाथ रखे बैठा रहे। पुरुषार्थ तो करता रहे, परंतु हर समय कुढ़ता न रहे—यही संतोष है। संतोष से मनुष्य को सुख और असंतोष से दुःख प्राप्त होता है।

कार्याकार्य-विचार

परमेश्वर ने मनुष्य को सर्वश्रेष्ठ बनाया है। उसे विचारशक्ति दी है। उसका कर्तव्य है कि वह इस विचारशक्ति से काम ले अर्थात् प्रत्येक कार्य को पहले खूब विचारकर, पीछे करे जिससे बाद में पछताना और दुखित होना न पड़े। यदि वह विचारे बिना काम करता है, तो उसमें और साधारण पशु में कोई अंतर नहीं है। गिरधर ने कितना अच्छा कहा है :

बिना विचारे जो करै सो पाछे पछताय।
काम बिगारै आपनो जग में होत हंसाय।
जग में होत हंसाय चित्त में चैन न आवै।
खानपान सम्मान राग रंग मन हि न भावै।
कह गिरधर कविराय दुःख कछु टरत न टारे।
खटकत है जिय मांहि कियो जो बिना विचारे॥

'हां, या ना'—कुछ स्थिर हो जाने पर जान लें कि आधा काम संपन्न हुआ।

कर्मायत्तं फलं पुंसा बुद्धिः कर्मानुसारिणी।
तथापि सुधिया भाव्यं सुविचार्यैव कुर्वता। —भर्तृहरि

यद्यपि फल कर्म के अनुसार मिलता है और बुद्धि भी कर्म के अनुसार हो जाती है, तो भी पंडितों को विचारकर ही काम करना चाहिए।

गुणवदगुणवद्वा कुर्वता कार्यजातं
परिणतिरवधार्या, यत्नतः पण्डितेन।
अतिरभसकृतानां कर्मणामाविपत्ते-
र्भवति हृदयदाही शल्यतुल्यो विपाकः॥ —भर्तृहरि

कोई कार्य योग्य हो अथवा अयोग्य हो परंतु करने वाले पंडित को उसका परिणाम

पहले से विचार लेना चाहिए। बिना विचारे अति शीघ्रता से किये कर्मों का फल मरण-पर्यंत हृदय को कंटक के समान दाहता है।

आशा और निराशा

प्रत्येक कार्य में समुचित विश्वास द्वारा अपने प्रयत्नों को उत्तेजित करते रहें। सफलता अथवा निष्फलता अपने ही विश्वास और दृढ़ता पर अवलंबित रहती है। जहां तुमने विजय में संदेह किया, वहीं तुम्हारी पराजय हुयी।

आशाशून्य होने के कारण ही तो आप कहते हैं कि हम इस काम को नहीं कर सकते। किंतु यदि दृढ़तापूर्वक उसमें लगे रहें तो आप जय अवश्य प्राप्त कर सकते हैं।

मन में कोई भी इच्छा करने से पूर्व खूब सोच-विचार लें और अपनी आशा को मर्यादा के बाहर न ले जायें, अर्थात् जो वस्तु मिल सकती है, आशा उसी की करें। यदि ऐसा करेंगे तो प्रत्येक काम में आपको सफलता मिलेगी और निराशाओं से व्याकुल होने का समय नहीं आयेगा। कहा है :

अपनी पहुंच विचारि कै, करतब करिये दौर।
तेते पांव पसारिये, जेती लांबी सौर ॥

समय-पालन

अपना प्रत्येक कार्य ठीक, नियत समय पर करने की आदत डालें। जो आदमी समय का सदुपयोग करना जानता है उसके पास समय की कमी नहीं रहती। मनुष्य-जीवन को सुखी और शांतिमय बनाने में नियमबद्धता का बहुत बड़ा हाथ होता है। नियमबद्धता से मनुष्य अपनी सब प्रकार उन्नति कर सकता है—अपने अंगीकृत कामों को पूरा कर सकता है, विद्या व धन का संग्रह किया जा सकता है और विषय-भोगों की ओर चित्त नहीं दौड़ता। जो लोग नियम से अपना काम नहीं करते उन्हें पछताना पड़ता है, उनपर काम का बोझ बढ़ जाता है और वे कभी उच्च और आदर्श पुरुष नहीं बन सकते।

किसी को अधिकार नहीं है कि वह दूसरों के समय को अपने झूठे वायदों से खराब करे। इसलिए जिस किसी से मिलने-जुलने का जो समय निश्चित हो, उससे ठीक उसी समय मिलें। आवश्यक कार्यों को छोड़कर भी समय की पाबंदी करें। यदि किसी अत्यावश्यक कार्यवश अवकाश न मिले, तो ठीक सयय पर न आने या मिलने की सूचना, अपनी विवशता प्रकट करते हुए, क्षमा-प्रार्थनापूर्वक दूसरे के पास भिजवा दें।

रेलवे-स्टेशन, पाठशाला, कचहरी, सभा, खेल आदि में समय से पांच-सात मिनट पहले जायें।

क्या आपपर विश्वास किया जा सकता है कि आप जो प्रण करेंगे या वचन देंगे, उसे पूरा करके दिखा देंगे ? अगर यह बात है तो आप सभ्य कहे जा सकते हैं, वरन् नहीं। इसलिए जब किसी से वादा करें तो उसके पालन करने के बारे में खूब सोच-विचार लें। ऐसी प्रतिज्ञा जिसे पूरा न कर सकें, न करें।

दादू कथणी और कुछ, करणी करँ कुछ और।
तिन थँ मेरा जिय डरँ, जिन के ठीक न ठौर॥

शक्तिमत्ता

अत्याचार सहना पाप है। अत्याचार सहने से अत्याचार करने वाले पैदा होते हैं। अत्याचार करने वाले की अपेक्षा अत्याचार सहने वाला अधिक पापी होता है।

अतएव बलवान, वीर और साहसी बनें। संसार हतोत्साही मनुष्यों के लिए नहीं है, "वीरभोग्या वसुन्धरा"—अर्थात् वीर ही पृथ्वी को भोगते हैं। दुर्बल शरीर या कायर पुरुष तो जीकर भी मृतक समान हैं और इस पृथ्वी पर भार-रूप हैं। सिर्फ बलवान मनुष्य ही दुनिया में जिंदा रहने का अधिकारी है, कमजोर नहीं। निर्बलता पाप है और कायरता की मां है। निर्बल मनुष्य स्वयं तो लुटता-पिटता ही है और कायरता का जीवन व्यतीत करता है, मगर साथ ही वह अपने आस-पास के लोगों में भी कायरता फैलाता है। इसलिए बलवान बनें।

सत्ता प्राप्त कर अथवा शक्तिशाली बनकर अपनी शक्ति अथवा अधिकारों का दुरुपयोग मत करें, दीन-दुखियों पर कभी अत्याचार मत करें। मनुष्य तो वही है जो प्रभुता पाकर भी मद नहीं करता, निर्बल का पक्ष लेता है, अन्यायी का मान-मर्दन करता है और अपने-आपको जनता का क्षुद्र सेवक समझता है।

जीवन और मृत्यु

जीवन का निश्चित उद्देश्य बनाना चाहिए। बिना उद्देश्य के जीवन व्यर्थ हो जाता है। लक्ष्यहीन पुरुष संसार में ऐसा ही है जैसे कि समुद्र में पड़ा हुआ वह जहाज जो लहरों के थपेड़ों से इधर-उधर डोलता हो, जिसका कोई चलाने वाला न हो और जिसका मुख किसी बंदरगाह की ओर न हो।

दीर्घ जीवन सुखमय नहीं है। सुखमय जीवन वह है जिसका अच्छा उपयोग किया गया हो। मनुष्य कुछ काल जिये, पर उतने में महान कार्य करे। "मुहूर्त-ज्वलितं श्रेयो न च धूमायितं चिरम्।" आग देर तक रहे, पर केवल धुआं छोड़े, तो उसका कुछ महत्त्व नहीं। उसका जीवन मुहूर्त-भर (अल्पकालिक) हो, किंतु ज्वालायुक्त हो, वही प्रशस्त है। जिस मनुष्य ने अपने जीवन का उचित उपयोग

किया हो उसी को प्रतिष्ठा मिलती है और मरने के अनन्तर उसी की आत्मा को सच्ची शांति मिलती हैं।

जो यह जानता है कि, मरना किस प्रकार चाहिए; उसने अपने जीवन का अपव्यय नहीं किया। यदि आपको किसी के जीवन की परीक्षा करनी है तो अंतिम काल से करें। इसी से आपको मालूम हो जाएगा कि उसने अपना जीवन किस प्रकार व्यतीत किया। जहां कपट का व्यवहार नहीं है, वही सत्य प्रकाशमान होता है।

मालिक और नौकर

१. जहां तक बन पड़े, किसी मालिक की नौकरी न करें और ऐसे मालिक की नौकरी भी न करें जहां आप अपने स्वाभिमान की रक्षा न कर सकें।

२. मनुष्य को चाहिए कि यथाशक्ति अपना काम अपने हाथ से करे और घर का काम-काज करने में संकोच न करे। यदि कारणवश स्वयं न कर सके तो इतना अवश्य देख ले कि नौकर उसकी इच्छा के अनुसार काम कर रहा है या नहीं। नौकर केवल आपकी सहायता के लिए है : वह पूर्णरूपेण आपका स्थान नहीं ले सकता।

३. नौकर पर झट विश्वास मत करें। कम से कम पांच-सात महीने उसकी परीक्षा करें और फिर अगर उसकी कोई शिकायत सुनें तो जब तक पता न लगा लें, नौकर पर संदेह न करें।

४. नौकर स्वस्थ, विश्वासपात्र, चाल-चलन का अच्छा और परिश्रमी हो। जवाब देने वाला व बहस करने वाला न हो, झूठ बोलने वाला, जुआरी और यहां की बात वहां कहनेवाला न हो।

५. घर के नौकरों से यथाशक्ति अच्छा व्यवहार करना चाहिए। उनको साफ कपड़े पहनायें और आराम करने के लिए अवकाश दें। उनको वेतन समय पर बिना हील-हुज्जत के दिया करें।

६. घर का नौकर कभी बीमार पड़ जाय तो उपेक्षा बिल्कुल नहीं करनी चाहिए; बीमार नौकर की ठीक अपने पुत्र की भांति सेवा करनी चाहिए। परदेश में तो आप ही उसके माता-पिता हैं। उसकी दवाई और पथ्य-पानी के लिए यथाशक्ति अपनी ओर से खर्च करें।

७. नौकरों को न गाली दें और न मारें-पीटें। न उनसे बहस करें। उन्हें प्रत्येक समय झिड़कते रहना या उनपर बड़बड़ाते व झुंझलाते रहना अत्यंत अनुचित है। अगर नौकर ने कोई गलती की हो तो उसको एकांत में समझा दें। दूसरों के सामने न डांटें।

८. जिस आदमी पर आपका बस या अख्तियार हो, उससे सख्ती से पेश आना

बुद्धिमानी का काम नहीं है। अगर नौकरों के साथ आपका बर्ताव अच्छा नहीं है तो आप सभ्य नहीं कहे जा सकते। याद रखें कि जो काम प्रेम से हो सकता है, हकूमत से कठिन है। नौकरों के दिलों में प्रेम पैदा करने का यत्न करें। केवल इस कारण कि वह आपके अधीन है, उसको तुच्छ न समझें। आप जितना उनका सम्मान करेंगे, वह उतनी ही अधिक आपकी सेवा करेंगे।

९. बहुत-सी स्त्रियां समझती हैं कि नौकर बासी रूखी-सूखी रोटी का ही अधिकारी है। घर में खीर, हलवा आदि बने या बाजार से फल व मिठाई आदि आए तो नौकर को अधिकारी नहीं समझा जाता। यह मनुष्यता से गिरी हुई बात है। ऐसे मालिकों के नौकर चोरी करने पर विवश हो जाते हैं।

१०. सार्वजनिक संस्थाओं के सेवकों से यथासम्भव अपना कोई निजी काम मत लें।

११. नौकर को ऐसा भेद न बतायें और न उससे ऐसा काम करायें जिससे उसके नौकरी छोड़ने पर या उससे पूर्व ही प्रकट कर देने पर आपको हानि पहुंचने की संभावना हो।

मौनान्मूकः प्रवचनपटुर्वाचको जल्पको वा।
धृष्टः पार्श्वे भवति च वसन् दूरतोऽप्यप्रगल्भः।
क्षान्त्या भीरुर्यदि न सहते प्रायशो नाभिजातः।
सेवाधर्मः परमगहना योगिनामप्यगम्यः।

चुप रहने से नौकर को मालिक गूंगा कहने लगते हैं। होशियारी के साथ बातचीत करने से बातून, पास रहने से ढीठ, गुस्ताख, दूर रहने से मूर्ख, क्षमापूर्वक व्यवहार करने से डरपोक और बात को न सहने से नीच कुल में पैदा हुआ समझने लगते हैं। दूसरों की सेवा करना ऐसा कठिन काम है कि वह योगियों से भी निभना मुश्किल है।

जब तक कि पहले स्पष्टतया तय न कर लिया हो, किसी मालिक को उचित नहीं है कि नौकर से किसी चीज़ के टूट जाने या खराब हो जाने पर, वह उसका मूल्य या हर्जा नौकर के वेतन में से काटे।

नौकर का कर्तव्य है कि वह जिस काम के लिए रखा गया है, उसके अंतर्गत अपने मालिक की समस्त आज्ञाओं को माने और अपने काम को अत्यंत सावधानी व चतुराई से अंजाम दे।

किसी ऐसे मनुष्य को जो पहले किसी अन्य की नौकरी में था, यथासंभव अपने यहां उस समय तक नौकर न रखें, जब तक कि उसके पहले मालिक से उसकी बाबत पूछ-ताछ न कर ली गई हो, विशेषतया जब कि वह पहला मालिक अपना परिचित या मित्र हो।

नौकरों के साथ न बहुत नर्मी बरतना अच्छा है, न अनुचित सख्ती। नौकर की गुस्ताखी या उसके काम की खराबी को सहन न करना चाहिए, साथ ही उस पर हर समय झुंझलाते रहना या उसके प्रति अशिष्ट व्यवहार करना अक्षम्य अपराध है। अगर आपको क्रोध आ रहा है या आपका स्वभाव चिड़चिड़ा है, तो आपको नौकर को झिड़कने का कोई अधिकार नहीं है। साथ ही अगर किसी समय आप प्रसन्न हों तो नौकर की बड़ी गलतियों को भी नजर-अंदाज कर देना बुद्धिमानी नहीं है।

जो नौकर आपके यहां से काम छोड़े, उसके लिए सिफारिश का अथवा आचरण का पत्र लिखने का काम बड़ा टेढ़ा है। अगर आप उसकी बाबत अच्छा मत नहीं रखते और सब बातें स्पष्ट-स्पष्ट लिखते हैं तो उसके भविष्य खराब हो जाने का डर है, अगर प्रशंसात्मक पत्र लिखते हैं तो उसके भावी मालिकों को धोखा देना और स्वयं झूठ बोलना है। इसलिए नीति यही है कि जो उसके गुण हों उनका वर्णन कर दें और अवगुणों का ज़िक्र न करें। अगर अच्छा नौकर है जिसकी बाबत आपकी राय नेक है तो उसके जितने भी गुण हैं, उनको याद करके सब लिख दें, वरन् जिस पहलू का भी आप जिक्र न करेंगे, दूसरा व्यक्ति उसको आपकी त्रुटि मानेगा। सिफारिशी पत्रों में नौकर की ईमानदारी, मेहनत और बुद्धिमानी का उल्लेख ज़रूरी है।

शांतिपर्व में भी लिखा है—"हे युधिष्ठिर, नौकर से कभी परिहास नहीं करना चाहिए, इसमें बहुत दोष हैं। परिहास करने से नौकर के दिल में मालिक के लिए मान नहीं रहता, नौकर अपने कर्तव्य पर स्थिर नहीं रहता और मालिक की आज्ञा का पालन नहीं करता।"

मित्रता

बालक व बूढ़े—अर्थात् अपने से आयु में बहुत छोटे व बहुत बड़े लोभी, मूर्ख, क्रोधी, अतिवर्गी, नपुंसक और अगर पहले आपका सहधर्मी रहा ही हो तो धर्म त्यागने वाले मनुष्य से मित्रता न करें। "बराबर से ही कीजिए प्रीत, ब्याह और बैर"—इस कहावत में बहुत कुछ सार है।

जिससे शत्रुता हो चुकी हो, उससे फिर मित्रता नहीं हो सकती, क्योंकि मनुष्य प्रायः अपने दोष सुधारने का प्रयत्न नहीं करता।

जिसने तुमको हानि पहुंचाई हो, उससे मित्रता की आशा न रखो। जिसको हानि पहुंचाई गई है वह चाहे क्षमा भी कर दे परंतु जिसने हानि पहुंचायी है, वह कभी नहीं चूकेगा।

सभी बातों में और हर कहीं अपने मित्र का अंध-पक्षपात करके दूसरे लोगों को मित्रता की घनिष्ठता न बताई जाय। अपने मित्र की भलाई के लिए सब कुछ

किया जाय, परंतु उसके लिए आत्मगौरव न खोया जाय और दूसरों का अपकार न किया जाय।

संकट के समय मित्र की सेवा तन-मन-धन से की जाय। यथार्थ में सहानुभूति ही मित्रता का प्रधान लक्षण है और मित्रता में यदि इसी गुण का प्रयोग न किया जायगा तो वह मित्रता कैसे रहेगी?

निज दुख गिरि सम रज करि जाना,
मित्र के दुख रज मेरु समाना।

मित्र वही है जो इस उक्ति के अनुसार कार्य करता है। तथापि आपको चाहिए कि यद्यपि आपके मित्र की सहानुभूति व सहायता आपके लिए प्रत्येक समय उपस्थित है, आप हर साधारण अवसर पर अपने मित्र को कष्ट न दें।

जिन्हें आप अपना सच्चा मित्र समझें, उनका विश्वास करें और मित्रता रखने में सदैव शांति व बुद्धि से काम लें। अगर मित्र की कुछ शिकायत सुनें तो शीघ्र विश्वास न कर लें। बहुधा केवल जरा-सी गलतफहमी से मित्रों के दिलों में भेद आ जाता है। बेहतर यह है कि जो शिकायत आपको हो अथवा मित्र की ओर से कोई संदेह हो, बिना संकोच के बयान कर दें और सफाई कर लें। मन में बात छिपाए रखना अच्छा नहीं है।

दोपहर से पहले की छाया आरंभ में बड़ी होती है और फिर धीरे-धीरे घटती जाती है। बुरे आदमी की मित्रता भी इसी प्रकार समझनी चाहिए और अच्छे मनुष्यों की मित्रता को दोपहर के बाद की छाया की तरह समझना चाहिए, जो पहले तो कम होती है और फिर धीरे-धीरे बढ़ती जाती है। भर्तृहरि ने ऐसा कहा है :

आरम्भगुर्वी क्षयिणी क्रमेण लघ्वी पुरा वृद्धिमुपैति पश्चात्।
दिनस्य पूर्वार्द्धपरार्द्धभिन्ना छायेव मैत्री खलसज्जनानाम्॥

याचते कार्यकाले यः स किंभृत्यः स किंसुहृत्।
अकार्यकार्यकर्ता यस्त्वनादिष्टोऽप्यसौ सुहृत॥ —भारवि

तदेवास्य परं मित्रं यत्र संक्रामति द्वयम्।
दृष्टि सुखं च दुःखं च प्रतिच्छायेव दर्पणे॥ —संकुल

व्याधितस्यार्थहीनस्य देशान्तरगतस्य च।
नरस्य शोकदग्धस्य सुहृद्दर्शनमौषधम्। —भर्तृहरि

दर्शने स्पर्शने वापि श्रवणे भाषणेऽपि वा ।
यत्र द्रवत्यन्तरंगः स स्नेह इति कथ्यते ॥ —कालिदास

न मातरि न दारेषु न सोदर्ये न चात्मनि ।
विश्वासस्तादृशः पुंसां यादृङ् मित्रे स्वभावजे ॥ —व्यास

शोकारातिभयत्राणं प्रीतिविश्रम्भभाजनम् ।
केन रत्नमिदं सृष्टं मित्रमित्यक्षरद्वयम् ॥ —व्यास

मित्रं प्रीतिरसायनं नयनयोरानन्दनं चेतसः
पात्रं यत्सुखदुःखयोः सहभवेन्मित्रेण तद्दुर्लभम् ॥
तत्त्वनिकषग्रावा तु तेषां विपत् ॥ —व्यास

यदि मित्र में ऐसे दोष हों जिनसे मित्रता की स्थिरता अथवा वृद्धि में बाधा पहुंचती हो, तो मनुष्य का कर्तव्य है कि वह अपने मित्र के इन दोषों को धीरज और बुद्धिमानी से दूर करने का प्रयत्न करे। अगर किसी उपाय से भी मित्र के दोष दूर न हो सकें और उनसे बड़ी भारी हानि होने की संभावना हो, तब अंत में इस बात का विचार करना आवश्यक कि ऐसे मनुष्य से मित्रता स्थिर रखी जाय या नहीं।

जिससे एक बार प्रेम किया हो—घनिष्ठ मित्रता रही हो, उससे वैर न करें और धीरे-धीरे चतुराई के साथ संबंध शिथिल कर दें, ताकि वह प्रत्यक्ष रूप में आपका शत्रु न बन सके। यदि कारणवश मनोमालिन्य का अवसर आ ही जाय तो उसे अपने मन में छिपा रखें, दूसरे लोगों से अकारण न कहते फिरें। संबंध-विच्छेद हो जाने के बाद भी यथासंभव उसकी बुराई न करें और उसकी गोपनीय बातें, जो आपका मालूम हों, दूसरों पर प्रकट न करें।

भुङ्क्ते भोजयते गुह्यं वक्ति गुह्यं शृणोति च ।
ददाति प्रतिगृह्णाति-षडेते मित्रस्य लक्षणम् ॥

खाता है, खिलाता है—गुप्त बात कहता है और गुप्त बात सुनता है—देता है व लेता है—मित्र के ये छः लक्षण हैं। —भर्तृहरि

भले मनुष्यों ने अच्छे मित्रों के ये छह चिह्न बतलाये हैं—(१) जो मित्र को पाप करने से रोकता है, (२) उसके हित का उपदेश करता है, (३) उसकी छिपाने योग्य बातों को छिपाता है, (४) गुणों को प्रकट करता है, (५) आपत्ति के समय में उससे मुंह नहीं मोड़ता और (६) मौका पड़ने पर अपनी शक्ति के अनुसार धन देता है।

पापान्निवारयति योजयते हिताय ।
गुह्यं निगूहति, गुणान् प्रकटीकरोति ॥

आपद्गतं च न जहाति ददाति काले।
सन्मित्रलक्षणमिदं प्रवदन्ति सन्तः॥ —भर्तृहरि

मित्रता कोई आकस्मिक घटना नहीं है, मित्र बनने व बनाने अर्थात् मित्रता स्थिर करने के लिए समय और सब्र की आवश्यकता है। क्योंकि एक व्यक्ति सौजन्य-प्रकाश करता है अथवा उससे कार्यवश भेंट करने पर वह आपका आदर-सत्कार करता है तो यह नतीजा न निकालें कि आज से आप दोनों गाढ़े मित्र हो गए। यह आवश्यक है कि मनुष्य समाज में अपनी स्थिति को पहचाने और उसके अनुकूल ही मित्र बनाए।

मित्रता को एकतरफा सौदा समझकर उसके लिए उतावले न हो जायं। मित्रता के जहां बहुत-से लाभ हैं, वहां मित्र के बहुत-से कर्तव्य और जिम्मेदारियां भी हैं। अतएव मित्रता स्थिर करने से पूर्व खूब विचार करें और बुद्धिमानी से काम लें।

अतएव मित्र के साथ हर समय शिष्टाचार के पालन की आवश्यकता नहीं। जहां परस्पर निःसंकोच-भाव होता है वहां नियमों के लिए स्थान नहीं रहता। परंतु इसका यह अर्थ नहीं है कि मित्र के साथ उद्दंडता का व्यवहार अथवा जान-बूझकर शिष्टता की सीमा का उल्लंघन किया जाय।

इस प्रकार नीति में कुशल व्यक्ति अपने शिष्टाचार से सबका मन जीत लेता है। वह समाज में अत्यंत सम्मानजनक स्थान प्राप्त कर सकता है। अपने तो क्या, पराये भी उसका लोहा मान जावें तो कोई आश्चर्य नहीं।

चौधरी चरण सिंह : एक परिचय

चौधरी चरण सिंह का जन्म 23 दिसम्बर 1902को उत्तर प्रदेश के गाजियाबाद जिले के नूरपुर ग्राम में हुआ था। चौधरी साहब देश के उन प्रमुख राजनेताओं में थे, जो आजादी के पूर्व पैदा हुए थे। आजादी के बाद से 1970 के मध्य तक, वह उत्तर प्रदेश के बेहद प्रख्यात नेता रहे। इस दौरान उन्होंने उत्तर प्रदेश विधान सभा में संसदीय सचिव, राजस्व मंत्री, सूचना, विधि एवं न्याय, कृषि, वन, सिचाई एवं गृह जैसे महत्त्वपूर्ण मंत्रालयों का दायित्व संभाला और दो बार वह प्रदेश के मुख्य मंत्री रहे। 1977 में केन्द्र में आने से पूर्व वह उत्तर प्रदेश विधान सभा में विरोधी दल के नेता थे।

चौधरी चरण सिंह ने उत्तरी भारत की पिछड़ी जातियों में राजनीतिक चेतना पैदा की और उन्हें सत्ता के नये शक्ति-केन्द्र के रूप में उभारा। इसके परिणाम-स्वरूप हिन्दी भाषी क्षेत्रों में विपक्ष को सबल आधार मिला और छठे दशक के उत्तरार्द्ध में उत्तर-प्रदेश, मध्य-प्रदेश, हरियाणा, राजस्थान आदि राज्यों में संविद सरकारें अस्तित्व में आईं।

आपातकाल के बाद वह राष्ट्रीय राजनीति के फलक पर आये और देश के गृहमंत्री, वित्त मंत्री, उप-प्रधानमंत्री तथा प्रधानमंत्री बने। जीवन के अंतिम 16 वर्षों में वह राष्ट्रीय स्तर पर किसानों, पिछड़ों और दलितों के निर्विवाद नेता रहे।

क्योंकि वह एक साधारण किसान परिवार से आए थे, अतः अभिजात्य वर्ग के लोगों ने, जिनका आर्थिक-सामाजिक रूप से आधिपत्य कायम है, उनका लगातार विरोध किया तथा उनके विरुद्ध प्रचार किया।

देश की बुनियादी समस्याओं पर चौधरी साहब की पकड़ थी। इन समस्याओं के बुनियादी चरित्र को दृष्टिगत रखते हुए ही उन्होंने अपने आर्थिक दर्शन की रचना की और उसका विकास किया। युवावस्था से ही चौधरी साहब ने देश की सामाजिक-आर्थिक समस्याओं पर लेख लिखने शुरू कर दिए थे। आर्थिक विचार-धारा पर लिखी उनकी पुस्तकें काफी लोकप्रिय हुई हैं, जिसमें 'इकोनॉमिक

नाइटमेयर ऑफ इंडिया : इट्स कॉजिज एण्ड क्योर' (भारत की भयावह आर्थिक स्थिति : कारण एवं निदान) मील का पत्थर मानी जाती है। उल्लेखनीय हैं कि यह पुस्तक अमेरिका के हार्वर्ड विश्वविद्यालय में अर्थशास्त्र के पाठ्यक्रम में शामिल है।

दरअसल चौधरी साहब केवल राजनीतिज्ञ ही नहीं, एक चिंतक भी थे। किसान ट्रस्ट द्वारा प्रकाशित 'चौधरी चरण सिंह : विशिष्ट रचनाएं' नामक पुस्तक इस बात का जीवंत प्रमाण है, जिसमें 50 वर्षों के दौरान सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक मुद्दों पर लिखे उनके लेखों को संकलित किया गया है। इस पुस्तक में लिखे लेख इस तथ्य की पुष्टि करते हैं कि सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक मुद्दों पर उनके विचार कितने गम्भीर और व्यापक थे।

चौधरी चरण सिंह द्वारा रचित अन्य कृतियां

एबोलिशन ऑफ जमींदारी (1947)
जमींदारी उन्मूलन (अनुदित)
हाउ टू एबोलिश जमींदारी : ह्विच एल्टरनेटिव
सिस्टम टू एडॉप्ट (1958)
एग्रेरियन रिवोल्यूशन इन यू० पी० (1958)
उत्तर-प्रदेश की भूमि व्यवस्था में क्रांति (1958)
हमारी गरीबी कैसे मिटे ? (1961)
इंडियाज पॉवर्टी एण्ड इट्स सोल्यूशन (1964)
इण्डियाज इकोनॉमिक पॉलिसी : दि गांधियन ब्ल्यूप्रिंट (1978)
भारत की अर्थनीति : गांधीवादी रूपरेखा (अनुदित)
इकोनॉमिक नाइटमेयर ऑफ इंडिया : इट्स कॉजिज एण्ड क्योर,
प्रथम संस्करण (1981), द्वितीय संस्करण (1984)
भारत की भयावह आर्थिक स्थिति : कारण एवं निदान (अनुदित)
भारत का आर्थिक पतन : कारण एवं समाधान (1984)
राष्ट्र की दशा
प्रथम संस्करण (1985), द्वितीय संस्करण (1986)
आर्थिक विकास के सवाल और बौद्धिक दिवालियापन (1986)
लैण्ड रिफॉर्म्स इन यू० पी० एण्ड दि कुलक्स (1986)
उत्तर प्रदेश में भूमि सुधार और कुलक वर्ग (अनुदित) 1994

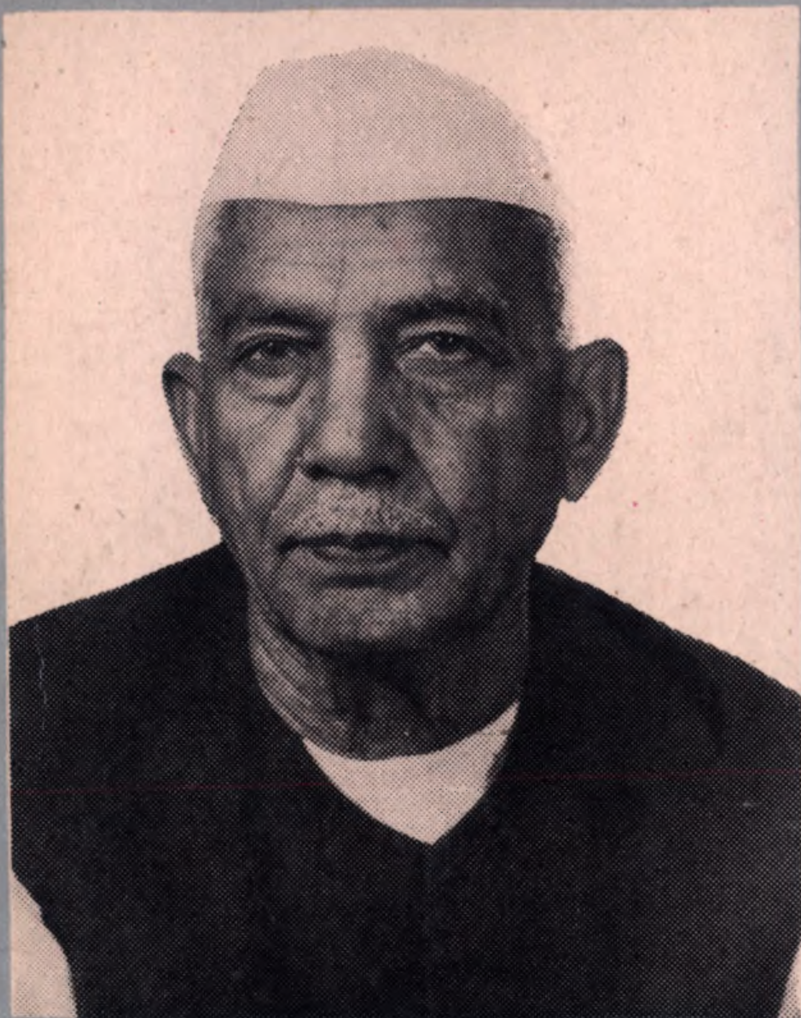

(23 दिसम्बर 1902–29 मई 1987)

किसान ट्रस्ट, दिल्ली